प्रवचन-क्रम

1. सदा गोविन्द को भजो.....2
2. क्षणभंगुर का आकर्षण.....23
3. सत्संग से निस्संगता.....43
4. कदम कदम पर मंजिल.....60
5. आशा का बंधन.....77
6. तर्क का सम्यक प्रयोग.....91
7. परम-गीत की एक कड़ी.....108
8. संसार--एक पाठशाला.....122
9. दुख का दर्पण.....140
10. एक क्षण पर्याप्त है.....156

पहला प्रवचन

सदा गोविन्द को भजो

सूत्र

भज गोविन्दम भज गोविन्दम भज गोविन्दम मूढ़मते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृंकरणे।।
मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्।।
नारीस्तनभरनाभीदेशं दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचिन्तय वारं वारम्।।
नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्।।
यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे।।
यावत्पवनो निवसति देहे तावत्पृच्छति कुशलं गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये।।
बालस्तावक्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीसक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तः परे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः।।

सत्य मिलता है शून्य में और खो जाता है शब्दों में।

सत्य मिलता है मौन में, बिछुड़ जाता है मुखरता में।

सत्य की कोई भाषा नहीं है। सारी भाषा असत्य है। भाषा मात्र मनुष्य का निर्माण है। सत्य मनुष्य का निर्माण नहीं, आविष्कार है। सत्य तो है ही, उसे बनाना नहीं है, न उसे प्रमाणित करना है, सिर्फ उघाड़ना है। और उघाड़ने की घटना, जब मनुष्य के भीतर सारी भाषा का ऊहापोह शांत हो जाता है, तभी घटती है। क्योंकि भाषा के ही परदे हैं, विचार से ही बाधा है।

यह बहुत बुनियादी और प्राथमिक सूत्र है समझ लेने का।

बच्चा पैदा होता है; कोई भाषा उसके पास नहीं होती। न कोई शास्त्र लेकर आता है, न कोई धर्म; न कोई जाति, न कोई राष्ट्र। उतरता है शून्य की भांति। शून्य की पवित्रता अनूठी है। शून्य एकमात्र कुंआरापन है, बाकी तो सभी विकृत है। उतरता है एक ताजे फूल की भांति। चेतना पर एक लकीर भी नहीं होती। जानता कुछ भी नहीं। लेकिन बच्चे की जानने की क्षमता शुद्ध होती है। दर्पण है; अभी कोई प्रतिबिंब भी नहीं बना। लेकिन दर्पण की क्षमता पूरी है, शुद्ध है। बाद में प्रतिबिंब तो बहुत बन जाएंगे, जानना तो बढ़ जाएगा, जानने की क्षमता कम होती जाएगी; क्योंकि वह जोशून्य था, वह शब्दों से भर जाएगा; उसकी रिक्तता समाप्त हो जाएगी। जैसे दर्पण पर प्रतिबिंब बनें और चिपकते चले जाएं, अलग न हों, तो दर्पण की झलकाने की क्षमता कम हो जाएगी।

बच्चा पैदा होता है, जानता कुछ भी नहीं, लेकिन जानने की क्षमता उसकी परिशुद्ध होती है। इसीलिए तो बच्चे जल्दी सीख लेते हैं, बूढ़े मुश्किल से सीख पाते हैं; क्योंकि सीखने की क्षमता ही बूढ़े की कम हो गई--मन भर गया; स्लेट पर बहुत कुछ लिखा जा चुका; कागज अब कोरा नहीं है। पहले कागज को कोरा करना पड़े, तभी कुछ नया लिखा जा सके।

बच्चा जैसा पैदा होता है, यदि तुम पुनः वैसे ही हो जाओ, तो ही सत्य को पा सकोगे।

तो एक जन्म तो बच्चे का है और एक जन्म संतत्व का। जिसके जीवन में दूसरा जन्म घट गया, जो द्विज हो गया, वही ब्राह्मण है।

शास्त्र कहते हैंः पैदा सभी शूद्र की भांति होते हैं, कभी कोई विरला ब्राह्मण हो पाता है; शेष सब शूद्र की भांति ही पैदा होते हैं, शूद्र की भांति ही मर जाते हैं।

ब्राह्मण कौन है? वह नहीं जो वेद को जानता है; क्योंकि वेद को तो कोई भी जान ले सकता है। वह नहीं जिसे शास्त्र कंठस्थ है; शास्त्र तो कंठस्थ कोई भी कर ले सकता है; शास्त्र की जानकारी तो स्मृति है, ज्ञान नहीं। ब्राह्मण वह है जिसने ब्रह्म को जाना।

यहां तुम आ गए हो, तुम्हें शायद पता भी न हो, यह खोज ब्राह्मण होने की खोज है--ब्रह्म को जानने की खोज है।

इस मधुर गीत का पहला पद शंकर ने तब लिखा, जब वे एक गांव से गुजरते थे, और उन्होंने एक बूढ़े आदमी को व्याकरण के सूत्र रटते देखा। उन्हें बड़ी दया आई, मरते वक्त व्याकरण के सूत्र रट रहा है यह आदमी! पूरा जीवन भी गंवा दिया, अब आखिरी क्षण भी गंवा रहा है! पूरे जीवन तो परमात्मा को स्मरण नहीं किया, अब भी व्याकरण में उलझा है! व्याकरण के सूत्र रटने से क्या होगा?

स्वामी राम अमेरिका से वापस लौटे। अमेरिका में उनका गहरा प्रभाव पड़ा। आदमी अनूठे थे। अत्यंत जीवंत वेदांत था उनमें। नगद था परमात्मा, उधार नहीं। एक ज्योतिर्मय पुंज थे। अमेरिका के सरल हृदय पर उनकी बड़ी छाप पड़ी। अमेरिका का हृदय बहुत सरल है। सरल होने का कारण है, क्योंकि अमेरिका का कोई अतीत नहीं, कोई परंपरा नहीं, कोई इतिहास नहीं। कुल तीन सौ वर्ष पुराना देश है। बच्चे जैसा सरल चित्त है। बहुत पर्तें समझ की, ज्ञान की, शास्त्र की नहीं हैं। राम को लोगों ने पूजा। उनके वचनों को ऐसे सुना, जैसे वे अमृत का संदेश लाए हों। लोग उनके साथ नाचे और गाए।

राम भारत वापस लौटे, तो उन्होंने सोचा कि अमरीका जैसे देश में, जहां धर्म की कोई परंपरा नहीं है, जहां लोग बिल्कुल ही भौतिकवादी हैं--जब वहां मेरे वचनों का ऐसा प्रभाव हुआ और मेरे व्यक्तित्व ने ऐसी लहर पैदा की, तो भारत में तो न मालूम क्या हो जाएगा! लौटता हूं अपने घर, जहां की परंपरा हजारों साल पुरानी है। कब प्रारंभ हुआ जहां का इतिहास--सब अंधकार में खो गया है--इतना लंबा है। जहां वेद लिखे गए, उपनिषद रचे गए, गीता निर्मित हुई; जहां बुद्ध, महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा हुए, वहां मेरी बात तो ऐसी पकड़ी जाएगी जैसे मैं हीरे बांटता होऊं। जब अमरीका में--जहां लोग पदार्थवादी हैं, जो ईश्वर को समझ ही नहीं पाते, जिनके ईश्वर से सारे संबंध टूट गए हैं--जब वहां ऐसा चमत्कार हुआ, तो भारत में क्या न होगा!

लेकिन भारत में जो हुआ, वह राम ने सोचा भी न था। यह सोच कर कि उचित होगा कि भारत में प्रवेश मैं काशी से करूं--क्योंकि वही नगरी है; भारत के सारे सौभाग्य का इतिहास काशी के कण-कण में छिपा है; बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन वहां दिया; शंकर ने अपनी विश्वविजय की घोषणा वहां की; वहां जैन तीर्थंकर हुए। काशी से पुराना कोई नगर सारे संसार में नहीं है। जेरुसलम भी नया है। मक्का और मदीना भी बहुत नये हैं।

काशी प्राचीनतम तीर्थ है--पृथ्वी पर सबसे पहला सभ्य हुआ नगर है। तो राम पहले काशी पहुंचे। और उन्होंने पहला प्रवचन काशी में दिया।

लेकिन बीच प्रवचन में एक पंडित खड़ा हो गया और उसने कहा कि रुकें! संस्कृत आती है?

राम कुछ समझ न पाए। वे एक मस्त आदमी थे। उन्हें संस्कृत आती भी नहीं थी; उर्दू-फारसी जानते थे। यह उन्होंने सोचा भी न था कि संस्कृत का और वेद से, और ब्रह्म से, और ज्ञान से कोई संबंध है।

कोई भी भाषा न आती हो तो भी आदमी परमात्मा को जान सकता है। कबीर भी जान लेते हैं बिना पढ़े-लिखे; मोहम्मद भी जान लेते हैं बिना पढ़े-लिखे; बढ़ई के बेटे जीसस के जीवन में भी वे फूल खिल जाते हैं। कुछ पंडित होना शर्त तो नहीं है।

राम चौंके! कहा, नहीं, संस्कृत तो नहीं आती।

वह पंडित हंसने लगा। और लोग भी उठ गए। उन्होंने कहा, जब संस्कृत ही नहीं आती, तो वेदांत कैसे आएगा! पहले संस्कृत सीखो, फिर सिखाने आना।

राम उसके बाद हिमालय चले गए। और एक बड़ी उदास घटना है कि राम ने संन्यासी का वेश छोड़ दिया। जब वे मरे तो गैरिक वस्त्रों में नहीं थे। क्योंकि उन्होंने कहा, जो धर्म शब्दों में अटक गया हो, और जिसका संन्यास केवल पांडित्य हो गया हो, और संस्कृत जानने से जहां वेदांत जाना जाता हो, उस समूह का क्या अपने को अंग मानना! जब वे मरे, तब वे गैरिक वस्त्रों में न थे। उन्होंने संन्यास का भी त्याग कर दिया।

परंपरा ने संन्यास तक को दूषित कर दिया है।

अमेरिका समझ सका, भारत न समझ पाया। अमेरिका नासमझ है इसलिए समझ सका। भारत बहुत समझदार है--जरूरत से ज्यादा समझदार है--बिना जाने बहुत कुछ जान लेने की भ्रांति भारत को पैदा हो गई है; पंडित तो हो गया है मन, प्रज्ञावान नहीं हो पाया है; शब्द तो भर गए हैं, निःशब्द के लिए जगह नहीं बची है। और धर्म का कोई संबंध शब्दों से नहीं है।

इसलिए मैं जो तुमसे कहूं, उससे भी ज्यादा ध्यान उस पर देना जो मैं तुमसे न कहूं। बोलूं--शब्द पर बहुत ध्यान मत देना; दोशब्दों के बीच में जो खाली जगह होती है, उस पर ध्यान देना। जो बोलूं, वह छूट जाए, हर्जा नहीं है; लेकिन जो अनबोला है, वह न छूट पाए।

पंक्तियों के बीच पढ़ना पड़ता है ब्रह्म को। शब्दों के बीच खोजना पड़ता है ब्रह्म को। अंतराल में घटता है। जब मैं चुप रह जाऊं क्षण भर को, तब तुम जागना; तब तुम गौर से मुझे देखना; तब तुम मुझे मौका देना कि मैं तुम्हारे करीब आ जाऊं और तुम्हारे हृदय को सहला सकूं।

धर्म व्याकरण के सूत्रों में नहीं है, वह तो परमात्मा के भजन में है। और भजन, जो तुम करते हो, उसमें नहीं है। जब भजन भी खो जाता है, जब तुम ही बचते हो; कोई शब्द आस-पास नहीं रह जाते, एक शून्य तुम्हें घेर लेता है। तुम कुछ बोलते भी नहीं, क्योंकि परमात्मा से क्या बोलना है! तुम्हारे बिना कहे वह जानता है। तुम्हारे कहने से उसके जानने में कुछ बढ़ती न हो जाएगी। तुम कहोगे भी क्या? तुम जो कहोगे वह रोना ही होगा। और रोना ही अगर कहना है तो रोकर ही कहना उचित है, क्योंकि जो तुम्हारे आंसू कह देंगे, वह तुम्हारी वाणी न कह पाएगी। अगर अपना अहोभाव प्रकट करना हो, तो बोल कर कैसे प्रकट करोगे? शब्द छोटे पड़ जाते हैं। अहोभाव बड़ा विराट है, शब्दों में समाता नहीं, उसे तो नाच कर ही कहना उचित होगा। अगर कुछ कहने को न हो, तो अच्छा है चुप रह जाना, ताकि वह बोले और तुम सुन सको।

भजन--कीर्तन, गीत और नाच है। वे भाव को प्रकट करने के उपाय हैं।

बिना कहे तुम भजन हो जाओ, तुम गीत हो जाओ, इस तरफ शंकर का इशारा है। ये पद बड़े सरल हैं, सूत्र बड़े सीधे हैं--और शंकर जैसे मेधावी पुरुष ने लिखे हैं। शंकर की सारी वाणी में "भज गोविन्दम्" से मूल्यवान कुछ भी नहीं है। क्योंकि शंकर मूलतः दार्शनिक हैं। उन्होंने जो लिखा है, वह बहुत जटिल है; वह शब्द, शास्त्र, तर्क, ऊहापोह, विचार है। लेकिन शंकर जानते हैं कि तर्क, ऊहापोह और विचार से परमात्मा पाया नहीं जा सकता; उसे पाने का ढंग तो नाचना है, गीत गाना है; उसे पाने का ढंग भाव है, विचार नहीं; उसे पाने का मार्ग हृदय से जाता है, मस्तिष्क से नहीं। इसलिए शंकर ने ब्रह्म-सूत्र के भाष्य लिखे, उपनिषदों पर भाष्य लिखे, गीता पर भाष्य लिखा, लेकिन शंकर का अंतरतम तुम इन छोटे-छोटे पदों में पाओगे। यहां उन्होंने अपने हृदय को खोल दिया है। यहां शंकर एक पंडित और एक विचारक की तरह प्रकट नहीं होते, एक भक्त की तरह प्रकट होते हैं।

"हे मूढ़, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी।"

"हे मूढ़, गोविन्द को भजो।"

मूढ़ता क्या है? शंकर तुम्हें मूढ़ कह कर कोई गाली नहीं दे रहे हैं। अत्यंत प्रेमपूर्ण वचन है उनका यह।

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

"हे मूढ़, भगवान को भज, गोविन्द को भज।"

मूढ़ता का क्या अर्थ है? मूढ़ता का अर्थ समझो।

मूढ़ता का अर्थ अज्ञानी नहीं है; मूढ़ता का अर्थ हैः अज्ञानी होते हुए अपने को ज्ञानी समझना। मूढ़ता पंडित के पास होती है, अज्ञानी के पास नहीं। अज्ञानी को क्या मूढ़ कहना! अज्ञानी सिर्फ अज्ञानी है--नहीं जानता, बात सीधी-साफ है। और कई बार ऐसा हुआ है कि नहीं जानने वाले ने जान लिया और जानने वाले पिछड़ गए; क्योंकि जो नहीं जानता है, उसका अहंकार भी नहीं होता; जो नहीं जानता है, वह विनम्र होता है; जो नहीं जानता है, नहीं जानने के कारण ही उसका कोई दावा नहीं होता।

लेकिन, पंडित बिना जाने जानता है कि जानता है। शब्द सीख लिए हैं उसने; ग्रंथों का बोझ उसके सिर पर है। वह दोहरा सकता है व्याकरण के नियम। उन्हीं में डूब जाता है।

सूफियों की एक कथा है।

एक सूफी फकीर अपनी रोटी कमाने के लिए एक नदी पर लोगों को नाव से पार करवाता था। एक दिन गांव का पंडित उस पार जाना चाहता था। तो उस सूफी फकीर ने कहा, आपसे क्या पैसे लेने! पैसे भी वह एक-दो पैसे लेता था। आपको ऐसे ही पार करा देंगे। पंडित नाव में बैठा; वे दोनों चले। दोनों ही थे नाव में, पंडित ने पूछा--कुछ पढ़ना-लिखना आता है?

पंडित और पूछ भी क्या सकता है! जोवह जानता है, वही सोचता है, दूसरों को भी जना दे। हम वही दूसरों को दे सकते हैं, जो हमारे पास है।

सूफी फकीर का तेज उसे दिखाई न पड़ा। पंडित अपने ज्ञान में अंधा होता है। उसने तो समझा एक साधारण मांझी है। वह एक असाधारण पुरुष था। पंडित जिस परमात्मा की बात सोचता रहा है, सुनता रहा है, वह परमात्मा उस असाधारण पुरुष में मौजूद था; जिसकी पंडित ने अब तक चर्चा की थी, वह उस फकीर में से

झांक रहा था। अगर आंख होती तो फकीर में वह सब मिल जाता, जिसके सपने देखे हैं, जिसके शास्त्र पढ़े हैं। प्रत्यक्ष था वहां कोई।

लेकिन पंडित ने पूछा, पढ़ना-लिखना आता है?

पंडित को अगर परमात्मा भी मिल जाए तो वह पूछेगा--सर्टिफिकेट? कहां तक पढ़े-लिखे हो? उसकी अपनी दुनिया है; वह अपने ही शब्दों में, अपने ही शास्त्र में जीता है।

उस फकीर ने कहा कि नहीं, पढ़ना-लिखना तो बिल्कुल नहीं आता; मैं बिल्कुल गंवार हूं, नासमझ हूं।

उसने जब ये शब्द कहे, तब अगर पंडित के पास जरा भी होश होता तो देख लेता कि कितनी गहरी विनम्रता है। अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेना, ज्ञान की तरफ पहला कदम है। और अगर कोई समग्रता से अपने अज्ञान को स्वीकार कर ले, तो वही अंतिम कदम भी हो सकता है। क्योंकि जब तुम पूरे भाव से जानते हो कि कुछ भी नहीं जानता हूं, तब तुम्हारा अहंकार कहां टिकेगा? कहां खड़ा रहेगा? भूमि खो जाएगी पैर के तले से, गिर जाएगा भवन अहंकार का, तुम निरहंकार में उतर जाओगे। वही द्वार है; वहीं से कोई परमात्मा से जुड़ता है।

फकीर ने कहा, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, बिल्कुल बेपढ़ा-लिखा हूं।

पंडित ने कहा, तो फिर तुम्हारी चार आना जिंदगी बेकार गई।

नाव थोड़ी आगे बढ़ी। पंडित ने पूछा, और गणित तो आता ही होगा कम से कम? हिसाब-किताब के लिए जरूरी है।

फकीर ने कहा, अपने पास कुछ है ही नहीं, हिसाब-किताब क्या करना! खाली हाथ हैं; जो दिन में मिल जाता है, वह सांझ तक समाप्त हो जाता है, क्योंकि रोटी से ज्यादा कमाना नहीं है कुछ। रात तो हम फिर फकीर हो जाते हैं, सुबह उठ कर फिर कमा लेते हैं। और परमात्मा अब तक देता रहा है तो कल का हिसाब क्या रखना! और किसी ने दे दिया तो ठीक है और किसी ने न दिया तो भी ठीक है; क्योंकि अब तक जी लिए हैं, आगे भी जी लेंगे। न तो देने वाले से कुछ ऐसा मिल जाता है कि सदा काम आ जाए, और न न देने वाला कुछ छीन लेता है कि सदा के लिए कोई नुकसान हो जाए--सब खेल है।

पंडित ने कहा, तुम्हारी आठ आना जिंदगी बेकार गई।

और तभी अचानक तूफान आ गया; और नाव डगमगाने लगी; और नाव अब डूबी, तब डूबी होने लगी। फकीर हंसा, क्योंकि पंडित बहुत घबड़ा गया। मौत सामने देख कर कौन न घबड़ा जाएगा! ऐसे पंडित अमृत की बातें करते था--आत्मा अमर है--लेकिन जब मौत सामने आती है तब पांडित्य की आत्मा काम नहीं आती, न पांडित्य की अमरता काम आती है। घबड़ा गया; हाथ-पैर कंपने लगे।

फकीर ने पूछा, तैरना नहीं आता?

उसने कहा कि बिल्कुल नहीं आता।

फकीर ने कहा, तुम्हारी सोलह आना जिंदगी बेकार गई। अब मैं तो कूदता हूं; हम तो चले; ये नाव तो डूबेगी।

"हे मूढ़, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर... "

संभवतः, शंकर उस कहानी को जानते रहे हों जो मैंने तुमसे कही।

"क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी।"

जब डूबना आएगा सामने, जब मौत घेरेगी, तब अगर तैरना आता हो तो ही काम आ सकेगा। मौत में तैरना आता हो! और अगर मौत में तैरना नहीं आता तो मौत डुबा लेगी। बहुत बार पहले भी उसने डुबाया--तुम अभी तक भी सजग नहीं हुए हो; तुमने अब तक भी तैरना नहीं सीखा।

अंतकाल के आने पर, मृत्यु के आने पर, कितनी तुम भाषा जानते हो या कितनी भाषाएं जानते हो, कितना व्याकरण जानते हो--कुछ भी तो काम न पड़ेगा।

जो मौत में काम आ जाए, वह प्रज्ञा; और जो मौत में काम न आए, वह पांडित्य। मौत कसौटी है। तो जो भी तुम जानते हो, उसको इस कसौटी पर कसते रहना, कहीं भूल न हो। यह कसौटी सदा सामने रखना। जैसे सर्राफ कसता रहता है पत्थर पर सोने को, ऐसे इस कसौटी को रखे रहना सदाः जो मौत में काम आए, उसी को ज्ञान मानना; जो मौत में काम न आए, धोखा दे जाए, दगा दे जाए, उसे पांडित्य समझना।

और जो मौत में काम न आए, वह जीवन में क्या खाक काम आएगा! जो मौत तक में काम नहीं आता, वह जीवन में कैसे काम आ सकता है? क्योंकि मौत जीवन की पूर्णाहुति है; वह जीवन का चरम शिखर है; वह जीवन का समारोप है। जो मौत में काम आता है, वही जीवन में भी काम आता है। यद्यपि जीवन में धोखा देना आसान है, लेकिन मौत में धोखा देना असंभव है। मौत तो सब उघाड़ कर सामने रख देगी।

शंकर किसे मूढ़ कहते हैं? उसे मूढ़ कहते हैं, जो जानता तो नहीं है, लेकिन व्याकरण को रट लिया है; शब्द का ज्ञाता हो गया है; शास्त्र से जिसकी पहचान हो गई है; जोशास्त्र को दोहरा सकता है, पुनरुक्त कर सकता है; शास्त्र की व्याख्या कर सकता है।

पंडित को मूढ़ कह रहे हैं शंकर। अगर पंडित को मूढ़ न कहते होते, तो "हे मूढ़, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी", अचानक व्याकरण को याद करने की जरूरत नहीं थी। मूढ़ थोड़े ही--जिनको हम मूढ़ कहते हैं, अज्ञानी--वे थोड़े ही व्याकरण रट रहे हैं। पंडित रट रहा है। और भारत में यह बोझ काफी गहरा हो गया है। यह इतना गहरा हो गया है कि करीब-करीब हर आदमी को यह ख्याल है कि वह परमात्मा को जानता है, क्योंकि परमात्मा शब्द को जानता है।

ध्यान रखना, परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है, न पानी शब्द पानी है। और प्यास लगी हो तोशब्द काम न आएगा, पानी चाहिए। और मौत सामने खड़ी हो तो अमरत्व के सिद्धांत काम न आएंगे, अमृत का स्वाद चाहिए।

मैं एक यात्रा में था। गर्मी के दिन थे और उस वर्ष वर्षा नहीं हुई थी उस इलाके में। स्टेशन पर गाड़ी रुकी थी, एक आदमी दस-दस पैसे में एक गिलास पानी बेच रहा था। दस पैसे में एक गिलास ठंडा पानी, कहता हुआ वह बढ़ता जाता, पैसे इकट्ठे करता जाता। एक आदमी जो मेरे पास ही बैठा था डिब्बे में, उसने कहा, आठ पैसे में न दोगे? वह पानी बेचने वाला रुका ही नहीं, उसने कहा, फिर तुम्हें प्यास ही नहीं लगी।

जब प्यास लगी हो, तो कोई दस पैसे, आठ पैसे की बात करता है! यह तो प्यास न लगे हुए लोगों की बातें हैं। वह मुझे जंच गई बात; उसने ठीक कहा कि दो पैसे की फिक्र करोगे तुम, जब प्यास लगी हो? तब आदमी सब देने को तैयार हो सकता है। हिसाब-किताब तभी तक चलता है जब तक प्यास न लगी हो।

तुम कहते हो तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो--ये सब प्यास न लगे होने की बातें हैं। जब प्यास लगती है तो कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई? जब प्यास लगती है तो तुम परमात्मा को मांगते हो--मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे से कोई लेना-देना नहीं रह जाता। इनसे कहीं प्यास बुझी है? और जब प्यास लगती है तो तुम हिसाब-किताब नहीं लगाते।

त्याग का यही अर्थ है, संन्यास का यही अर्थ है कि तुम्हें प्यास लगी है और तुम सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार हो।

लोग कहते हैं--हां, परमात्मा को भी जानना है, लेकिन अभी और दूसरे काम करने को भी बाकी हैं; अभी और उलझनें हैं, उनको सुलझा लें। लोग परमात्मा को आखिर में टालते जाते हैं। वह तुम्हारी जरूरतों के क्यू में बिल्कुल अंत में खड़ा है। और जरूरतों का क्यू कभी पूरा नहीं होता, वह अंत में ही खड़ा रह जाता है। तुम समाप्त हो जाओगे, तुम उसके पास कभी पहुंच न पाओगे। एक जरूरत पूरी नहीं होती कि दस पैदा हो जाती हैं; एक आकांक्षा भर नहीं पाती कि हजार पैदा हो जाती हैं; वह हमेशा पीछे ही खड़ा रहता है; वह इंच भर नहीं सरक पाता।

तुम्हारे जो जीवन की फेहरिस्त है, उस पर परमात्मा अंतिम है या प्रथम है, इस पर सब कुछ निर्भर करेगा। जिसकी फेहरिस्त में वह अंतिम है, वह मूढ़ है; और जिसकी फेहरिस्त में वह प्रथम है, वह अमूढ़ है; वह जागने लगा; उसने एक बात ठीक से समझ ली है कि इस जीवन में मैं कुछ भी इकट्ठा कर लूं, मौत उसे छीन लेगी। और जो छिन ही जाना है, उसे इकट्ठा करने में समय गंवाना व्यर्थ है।

"हे मूढ़, गोविन्द को भजो।"

भजना--इसे भी समझ लेना जरूरी है। क्योंकि तुम्हें भजन करते लोग मिल जाएंगे, और भजन वे नहीं कर रहे हैं; उनका भजन भी ऊपर-ऊपर है। मनोरंजन होगा शायद; जीवन को दांव पर नहीं लगाया है। मजा ले रहे होंगे शायद। किसी और गीत से भी इतना मजा मिल सकता था। किसी और संगीत में भी इतनी ही खुशी हो सकती थी।

लेकिन भजन का अर्थ हैः तुम्हारे पूरे प्राण से कोई आह उठती है! तुम्हारे पूरे प्राण से कोई आवाज उठती है! तुम्हारे पूरे प्राण दांव पर लगे हैं--जैसे जीवन-मरण का सवाल हो!

गोविन्द को भजना हो तो खुद को गंवाना जरूरी है। खुद को बचाना चाहा और गोविन्द को भजना चाहा, तो तुम अपने को ही धोखा दोगे।

भजन की बड़ी आत्यंतिकता है, चरमता है।

रामकृष्ण को कोई राम का नाम भी ले देता--सिर्फ नाम! रास्ते पर चलते वक्त शिष्यों को ख्याल रखना पड़ता कि कोई जयरामजी न कर ले। कोई अजनबी आदमी जयरामजी कर ले, वे वहीं खड़े हो जाते--भावाविष्ट हो जाते; हर्षोन्माद हो जाता; नाचने लगते बीच सड़क पर। शिष्यों की बड़ी फजीहत हो जाती; पुलिसवाला आ जाता कि हटाओ यहां से! यह क्या मचाया हुआ है?

किसी के शादी-विवाह में कोई निमंत्रण कर लेता, तो दूल्हा-दुल्हन पीछे हो जाते। किसी ने ऐसे ही नाम ले दिया! एक मित्र के घर बुला लिया था लोगों ने; भक्त था उनका, बुला लिया कि शादी में आशीर्वाद दे देंगे। लड़की की शादी थी, समारोह था। शादी होने के ही करीब थी कि किसी आदमी का नाम गोविन्द था और किसी ने बुलाया गोविन्द को--कि गोविन्द कहां है? भीड़भाड़। तो उसने जोर से चिल्लाया--गोविन्द कहां है? रामकृष्ण नाचने लगे! गोविन्द का भजन शुरू हो गया! वह बरात बरात न रही, विवाह विवाह न रहा, एक दूसरा ही समां बंध गया।

भजन का अर्थ हैः चौबीस घंटे तुम्हारे भीतर एक सतत धारा प्रभु-स्मरण की बनी रहे। वह सतत धारा थी भीतर, इसलिए बाहर अगर कोई जरा भी राम का या कृष्ण का या गोविन्द का--परमात्मा का नाम ले देता--भीतर तो धारा मौजूद ही थी, भीतर तो नाच चलता ही था--बाहर की चोट पड़ जाती, भीतर का नाच बाहर

बिखर जाता; भीतर चोट पड़ती, वह जो भीतर चल रही थी धारा, वह बाहर आ जाती। जैसे जल तो भरा ही था कुएं में, किसी ने बालटी डाल दी और पानी भर के बाहर आ गया। किसी ने राम का नाम ले दिया--भजन तो चल ही रहा था। भजन कोई ऐसी चीज नहीं है कि तुम कभी कर लो। जब भजन शुरू होता है तो अंत नहीं होता, चलता ही रहता है; एक सतत स्मरण है भीतर।

"हे मूढ़, गोविन्द को भजो, क्योंकि अंतकाल के आने पर व्याकरण की रटन तुम्हारी रक्षा न करेगी।"

कितना तुम शास्त्र जानते हो--मौत यह न पूछेगी। कितना तुमने सत्य जाना? मौत तुम्हारे सामने प्रकट कर देगी--जो तुमने जाना है, वही बच रहेगा; जो दूसरे ने जाना है और दूसरे से तुमने उधार जाना था, वह सब खो जाएगा। शास्त्र अगर उधार है, तो व्यर्थ है; और शास्त्र अगर तुममें आविर्भूत हुआ है, तुम भी उसी स्रोत पर पहुंच गए जहां उपनिषद के ऋषि पहुंचे थे, तुमने भी उसी जलस्रोत से अपनी प्यास बुझा ली जिससे उपनिषद के ऋषियों ने बुझाई थी, तब उपनिषद शास्त्र नहीं है, तब तुम्हारे लिए उपनिषद तुम्हारे ही बोध की अभिव्यक्ति है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं क्यों शंकर पर बोलता हूं या बुद्ध पर या क्राइस्ट पर? मैं सीधा भी बोल सकता हूं।

मैं सीधा ही बोल रहा हूं--उनसे मैं कहता हूं--क्योंकि शंकर के इस गीत में शंकर ने वही कहा है जो मैं कहना चाहूंगा। और इतने सुंदर ढंग से कहा है कि अब उसे और सुधारा नहीं जा सकता। आखिरी बात कह दी है। कोई जरूरत नहीं है अब उसे दोहराने की। शंकर पर मैं इसलिए नहीं बोल रहा हूं कि मुझे लगता है शंकर जानते हैं। लगने का सवाल नहीं है। मेरा कोई विश्वास नहीं है शंकर में। उसी जलस्रोत से मैंने भी जल पीया है, जहां से पीकर यह गीत उनमें पैदा हुआ होगा।

"हे मूढ़, धन बटोरने की तृष्णा को छोड़ो; सदबुद्धि को जगाओ और मन को तृष्णा-शून्य करो; तथा उसी से संतुष्ट और प्रसन्न रहो, जो अपने श्रम से मिलता है। हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"धन बटोरने की तृष्णा को छोड़ो।"

धन से केवल अर्थ उस धन का नहीं है जिसे तुम धन कहते हो; धन से उस सब का अर्थ है जिसको तुम बटोरते हो। जिसको भी बटोरने की तुम्हारे भीतर तृष्णा है, वह सभी धन है--फिर वह ज्ञान ही क्यों न हो। जब तुम ज्ञान भी बटोरते हो, तुम धन ही बटोर रहे हो। एक आदमी रुपये गिनता जाता है, कितने उसकी तिजोरी में हो गए। एक आदमी ज्ञान गिनता जाता है कि कितना ज्ञान उसने बटोर लिया, कितनी सूचनाएं उसके पास हो गईं, कितने शास्त्र उसने पढ़ लिए। पर दोनों बटोर रहे हैं। तीसरा आदमी हो सकता है त्याग बटोर रहा हो--कि कितने उपवास उसने किए। चौथा आदमी हो सकता है यश बटोर रहा हो--कि कितने लोग उसे मानते हैं, कितने लोग उसे पूजते हैं, कितने लोग उसके पीछे चलते हैं। जहां भी तुम बटोरते हो, जो भी बटोरा जाता है, वह सब धन है। और धन बड़े धोखे का है; क्योंकि भीतर तो तुम निर्धन ही बने रहते हो, और बाहर तुम बटोरते चले जाते हो। जो बाहर इकट्ठा किया है, वह भीतर न ले जाया जा सकेगा। और जिसे तुम अपने भीतर न ले जा सके, मौत उसे छीन लेगी; क्योंकि तुम ही मौत से पार जा सकोगे, और कुछ भी नहीं। केवल तुम्हारा होना ही गुजरेगा, लपटें उसे जला न सकेंगी, शस्त्र उसे बेध न सकेंगे--नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। सिर्फ तुम गुजर पाओगे मौत के द्वार से--शुद्ध तुम, और कुछ भी नहीं।

अगर तुमने बाहर का ही धन बटोरा, तो तुम निर्धन गुजरोगे मौत के द्वार से। और जब मौत तुम्हें निर्धन बता देगी, तो जीवन में भी धन का सिर्फ धोखा ही हुआ। वह धन क्या जिसे हम साथ न ले जा सकें? संपत्ति

वही है जो साथ जा सके, अन्यथा शेष सब विपत्ति है। जिसे तुम बटोरते हो, वह संपत्ति लगती है, संपत्ति है नहीं; है तो विपत्ति। और तुम भी जानते हो। बटोर लेने के बाद पता चलता है कि और विपत्ति बढ़ गई। संपत्ति से तो संतोष आता, संपत्ति से तोशांति आती, संपत्ति से तो निर्भयता आती, संपत्ति से तो तुम्हारे जीवन में एक स्वर गूंजता--कि पा लिया, पहुंच गए, घर आ गया; एक विश्राम की सुगंध तुम्हारे जीवन में उठती। लेकिन वह तो उठती दिखाई नहीं पड़ती। संपत्ति बढ़ती है, वैसे तुम्हारे जीवन में और भी दुर्गंध उठती है, और भी तुम्हारे जीवन में भय उठता है। संपत्ति क्या इकट्ठी होती है, हजार चिंताएं इकट्ठी होती हैं। संपत्ति से शांति तो नहीं मिलती, अशांति के द्वार खुल जाते हैं।

"हे मूढ़, धन बटोरने की तृष्णा को छोड़ो।"

बटोरने की ही तृष्णा को छोड़ो। बटोरने का इतना पागलपन क्यों है?

मैं एक घर में रहता था। उस घर के जो मालिक थे, वे बटोरने के शुद्ध अवतार थे। कोई भी चीज, जो व्यर्थ भी हो गई, उसे भी सम्हाल कर रख लेते! उनका घर एक कबाड़खाना था। उसमें वे कैसे जीते थे, यही बड़ा मुश्किल; कैसे रहते थे, यही बड़ा मुश्किल। एक दिन मैं सामने बगीचे में खड़ा था। वे मुझसे बात कर रहे थे और उनका छोटा लड़का एक बुहारी--टूटी; किसी काम की नहीं; सिर्फ पिछली ठूंठ ही बची थी--उसे बाहर फेंक गया। तत्क्षण मैंने देखा कि वे बेचैन हो गए। मुझसे बात चलती रही, लेकिन नजर उनकी उस बुहारी पर लगी रही। मैंने सोचा कि मेरी मौजूदगी उनको बाधा बन रही है। तो मैंने कहा, मैं अभी आया।

मैं घर के भीतर गया। जब मैं लौटा, बुहारी नदारद थी, वे भी नदारद थे। वे ले गए उसे भीतर। मैं उनके पीछे ही गया। मैंने कहा कि अब बात जरा सीमा के बाहर हो गई। रंगे हाथ वे पकड़ गए; बुहारी लिए अंदर खड़े थे। मैंने पूछा कि यह किसलिए उठा लाए?

उन्होंने कहा, कुछ नहीं, कभी काम पड़ जाए!

यह कैसे? इसका कोई काम भी नहीं समझ में आता।

वे कहने लगे, नहीं, कभी क्या काम पड़ जाए क्या पता। फिर फेंकने से फायदा क्या? रखी रहेगी।

बटोरने की एक विक्षिप्तता है। किस कारण होगी? क्यों आदमी बटोरना चाहता है? भीतर एक बड़ा खालीपन है, उसे भरना है। किसी भी चीज से भरना है, नहीं तो आदमी बहुत खाली लगेगा। तुम थोड़ा सोचो, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, तो तुम्हें भीतर बड़ा खालीपन लगेगा।

यहां ध्यान में... रोज मेरे पास मित्र आते हैं; थोड़े दिन ध्यान करते हैं--महीने, डेढ़ महीने--तो भीतर खालीपन दिखाई पड़ने लगता है। वह है तो सदा, ध्यान नहीं किया तो दिखाई नहीं पड़ता। ध्यान करने से बोध थोड़ा जगता है, होश थोड़ा आता है, भीतर खालीपन दिखने लगता है। और एक अनूठी घटना घटती हैः जिस व्यक्ति को भी वह भीतर खालीपन दिखाई पड़ता है, वह अतिशय भोजन करना शुरू कर देता है। रोज एक-दो मामले मेरे पास आते हैं कि वे कहते हैं, हम क्या करें? यह क्या हुआ? इतना भोजन हम कभी भी नहीं करते थे! यह ध्यान ने तो हमें बड़ी मुश्किल में डाल दिया, बस भोजन की ही धुन सवार रहती है। तो मैं उनको कहता हूं, कारण है। कारण यह है कि ध्यान ने तुम्हें भीतर की रिक्तता दिखाई। अब रिक्तता को भरना है; रिक्तता काटती है--कुछ भी नहीं है भीतर? तो आदमी कुछ भरना चाहता है। धन से, पद से, प्रतिष्ठा से तुम अपने को भरते हो। चारों तरफ चीजें इकट्ठी कर लेते हो, उनके बीच बैठ जाते हो निश्चिंत होकर। लगता है--कुछ तुम्हारे पास है।

जिनके पास कुछ भी नहीं है, उन्हें बटोरने की आकांक्षा पैदा होती है; जिनके पास कुछ है, उन्हें बटोरने का कोई सवाल नहीं है, वे अपने में काफी हैं। खुद का होना ही इतना भराव है कि अब और कुछ बटोरने का

सवाल नहीं है। इसलिए तो हमने बुद्ध को पूजा, महावीर को पूजा, शंकर को पूजा; क्योंकि हमने देखा इनमें कि इनकी संपदा इनके भीतर है। कुछ है इनके भीतर कि उसके कारण खालीपन मिट गया है। कोई प्रकाश है भीतर, जिसके कारण अब भीतर की रिक्तता पूर्णता हो गई है; भीतर का शून्य सत्य हो गया है।

ध्यान शून्य लाता है। अगर तुमने जल्दबाजी की तोशून्य को भरने की तृष्णा पैदा होगी। अगर जल्दबाजी न की और तुम शून्य के साथ रहने को राजी हो गए, तुमने उसे स्वीकार कर लिया, तो तुम पाओगे धीरे-धीरे शून्य अपने आप भर दिया गया। क्योंकि प्रकृति शून्य को बरदाश्त नहीं करती; शून्य तुम करो, भर देती है प्रकृति। न परमात्मा शून्य को बरदाश्त करता है। तुम शून्य पैदा करो, परमात्मा भर देता है। शून्य भर चाहिए, पूर्ण तो उतर आता है। जैसे कहीं गड्ढा हो, वर्षा हो, तो सारा पानी चारों तरफ से दौड़ कर गड्ढे में भर जाता है। ऐसे ही तुम जब शून्य होते हो, परमात्मा चारों तरफ से तुम्हारी तरफ दौड़ने लगता है। तुमने गड्ढा बना दिया, अब भरना उसे है। आधा तुम करते हो, आधा परमात्मा करता है। और तुम्हारा करना कुछ खास नहीं, असली करना तो उसी का है। तुम्हारा करना इतना ही है कि तुम खाली होने को राजी हो जाओ। इसलिए सारे बुद्धपुरुष--भरने की तृष्णा से बचो, बटोरने की तृष्णा से बचो--इसका इतना आग्रह करते हैं। क्योंकि अगर तुमने स्वयं ही भर लिया, तो तुम परमात्मा को भरने का मौका ही नहीं देते हो।

मैंने एक कहानी सुनी है कि कृष्ण भोजन को बैठे, रुक्मिणी ने थाली लगाई। एक कौर लिया होगा मुश्किल से कि हड़बड़ा कर भागे। रुक्मिणी समझ न पाई। लेकिन द्वार तक गए, वापस लौट आए; फिर बैठ गए थाली पर। रुक्मिणी ने कहा, बेबूझ हो गई बात। किसलिए भागे? और फिर क्यों द्वार से वापस लौट आए? भागे तो ऐसे जैसे कहीं आग लग गई हो--कि अब भोजन कैसे किया जा सकता है, आग पहले बुझानी होगी। और लौट आए ऐसे जैसे कुछ भी न हुआ था। यह क्या किया?

कृष्ण ने कहा, जरूर आग लग गई थी; भागा। लेकिन द्वार तक पहुंचा कि आग बुझ गई, लौट आया। मेरा एक भक्त एक राजधानी की सड़क से गुजर रहा है, लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं, लहू बह रहा है उसके माथे से और वह गोविन्द-गोविन्द किए जा रहा है। वह न तो उत्तर दे रहा है, न बचाव कर रहा है; उसने अपने को बिल्कुल मेरे हाथों में छोड़ दिया। भागना एकदम अनिवार्य था।

जो इस भांति असहाय हो जाए, भगवान को उसकी तरफ भागना ही पड़ता है। जो इतना शून्य हो जाए कि पत्थर पड़ रहे हैं, उनसे बचाव भी न करे, भागे भी न, उत्तर भी न दे, तो सारा अस्तित्व उसकी रक्षा के लिए आ जाता है। गड्ढा हो गया; चारों तरफ से जलधार बहने लगती है--उसे भरने को, उसे झील बनाने को।

फिर, रुक्मिणी ने पूछा, लौट क्यों आए?

कृष्ण ने कहा, लेकिन जब तक मैं द्वार पर पहुंचा, उसने अपना चित्त ही बदल लिया; उसने खुद ही पत्थर हाथ में उठा लिया; अब वह खुद ही जवाब दे रहा है, मेरी कोई जरूरत न रही।

परमात्मा की जरूरत वहीं है, जहां तुम असहाय हो। और तुम्हारी असहाय अवस्था से गोविन्द-गोविन्द का नाम निकल जाए, भजन हो गया। कोई शब्द कहने की जरूरत नहीं कि तुम गोविन्द-गोविन्द चिल्लाओ। भीतर भाव--कि वे भाव भरी आंखें आकाश की तरफ उठ जाएं, कि तुम्हारा हृदय आकाश की तरफ खुल जाए--और तुम अपने तईं कुछ भी न करो; उसी क्षण परमात्मा तुम्हारी तरफ दौड़ पड़ता है। तुम गड्ढे बनो, परमात्मा भरने को सदा राजी है।

मोहम्मद कहा करते थेः तुम एक कदम चलो उसकी तरफ, वह हजार कदम चलता है।

पर तुम एक कदम ही नहीं चलते। और वह एक कदम अत्यंत जरूरी है। क्योंकि जब तक तुम्हारी तरफ से संकेत न मिले कि निमंत्रण है, तब तक परमात्मा कैसे आए? आना भी चाहे तो कैसे आए? जिसे तुमने निमंत्रण ही नहीं दिया है, जिसे तुमने बुलावा ही नहीं भेजा है, वह आ भी जाए तुम्हारे द्वार पर, तो तुम्हारे द्वार खुले न पाएगा। वह दस्तक भी दे, तो तुम समझोगे हवा का झोंका है। वह चिल्लाए, पुकारे भी, तो तुम अपने भीतर के शोरगुल के कारण उसकी आवाज न सुन पाओगे।

"हे मूढ़, धन बटोरने की तृष्णा को छोड़, सदबुद्धि को जगा।"

बुद्धि तुम्हारी चालाकी का नाम है; सदबुद्धि तुम्हारी समझदारी का। इसलिए दुनिया जितनी बुद्धिमान होती जाती है, उतनी चालाक होती जाती है। चकित होते हैं लोग यह देख कर कि लोग जितने शिक्षित हो जाते हैं, उतने चालाक हो जाते हैं। सोचा जाता था कि लोग शिक्षित हो जाएंगे तो सरल होंगे; लोग सुशिक्षित हो जाएंगे तो निर्दोष हो जाएंगे। लेकिन जितनी शिक्षा बढ़ती है, उतनी चालाकी बढ़ती है, उतना आदमी बेईमान होने लगता है; उतना पाखंडी हो जाता है; उतना दूसरे को कैसे चूसना, इसकी कला में पारंगत हो जाता है।

बुद्धि यानी संसार में कुशलता; सदबुद्धि यानी परमात्मा में कुशलता।

और ध्यान रखना, सदबुद्धि वाला आदमी, हो सकता है, सांसारिकों को बुद्धू मालूम पड़े। पड़ेगा ही। क्योंकि सांसारिक कहेगा, यह तुम क्या कर रहे हो?

बुद्ध ने घर छोड़ा, वह सदबुद्धि के अवतरण की घटना थी--महल छोड़ा, राज्य छोड़ा। जो सारथी उन्हें छोड़ने गया था राज्य की सीमा के पार, वह तो साधारण नौकर था, उससे भी न रहा गया। उसने कहा कि सुनो, यह छोटे मुंह बड़ी बात है, लेकिन कहे बिना नहीं रह सकता। तुम जो कर रहे हो, यह बिल्कुल बुद्धूपन है; नासमझी है। पागल हुए हो? सारी दुनिया राजमहल चाहती है, साम्राज्य चाहती है। सौभाग्य से तुम्हें मिला है, और अभागे तुम कि तुम छोड़ कर जा रहे हो! तुम्हारी जैसी सुंदर पत्नी कहां पाओगे? यह धन, सुख-सुविधा, यह राजमहल, यह परिवार, यह सम्मान कहां पाओगे? लौट चलो!

बूढ़ा सारथी, वह भी बुद्ध से ज्यादा समझदार है; वह भी सलाह दे रहा है!

बुद्ध ने कहा, तुम्हारी बात मैं समझता हूं। लेकिन तुम जहां महल देखते हो, वहां मैं सिवाय आग लगी लपटों के और कुछ भी नहीं देखता; और जहां तुम सौंदर्य देखते हो, वहां मैं मौत को छिपा देख लिया हूं; और जहां तुम धन देखते हो, वहां सिर्फ धन का धोखा है। मैं असली धन की खोज में जाता हूं। सुनो, मैं असली घर की खोज में जाता हूं। क्योंकि यह घर तो छीन लिया जाएगा। मैं उस घर की तलाश में हूं जो छीना न जा सके। और जब तक वह न मिल जाए, तलाश नहीं रुकेगी। उसके लिए मैं सब गंवाने को तैयार हूं। क्योंकि यह तो छिन ही जाएगा; इसको दांव पर लगाने में हर्ज क्या है? दिन, समय की बात है; आज है, कल छिन जाएगा। जो कल छिन ही जाएगा, अगर उसको दांव पर लगाने से कुछ ऐसा मिलता हो जो कभी न छिने, तो यह सौदा मंहगा नहीं है।

बुद्ध को सदबुद्धि पैदा हुई है; सारथी बुद्धिमान है।

बुद्ध लौटे घर बारह वर्ष बाद--सदबुद्धि का दीया पूरा जल चुका है; वे रौशन हो गए हैं; लेकिन बाप नाराज है। बाप ने कहा, नासमझी छोड़ो, घर वापस लौट आओ! तुमने मुझसे धोखा किया है; तुमने अपनी पत्नी से धोखा किया है; तुमने अपने नवजात बेटे से धोखा किया है; लेकिन फिर भी मैं तुम्हें माफ कर दूंगा, क्योंकि पिता का हृदय। मैं तुम्हें माफ कर दूंगा; तुम वापस लौट आओ! यह शोभा नहीं देता--यह भीख मांगना सड़कों

पर। किसके तुम बेटे हो? और तुम्हें भीख मांगने की जरूरत क्या है? तुम्हें अगर इसी तरह का शौक हो, तो हजारों लोगों को तुम रोज भीख बांट सकते हो, मांगने की क्या जरूरत है?

बुद्ध अभी भी, बुद्ध के पिता को बुद्धू ही मालूम पड़ रहे हैं।

सांसारिक बुद्धि को धार्मिक सदबुद्धि नासमझी मालूम पड़ती है। लोग समझते हैं कि यह तो पागलपन है, यह क्या कर रहे हो! लेकिन जिसको सदबुद्धि जगती है, उसे लगता है कि बुद्धि बिल्कुल नासमझी है। और तुम्हें निर्णय करना होगा; क्योंकि इस निर्णय के बिना कोई आदमी धर्म के जगत में प्रवेश नहीं कर सकता। जब तक तुम्हें सांसारिक बुद्धि मूढ़ता न मालूम पड़ने लगे, तब तक सदबुद्धि की किरण तुम्हें मिल न सकेगी। सांसारिक बुद्धि जब तुम्हें मूढ़ता मालूम होने लगे, सांसारिक चालाकी जब तुम्हें अपने को ही धोखा देना मालूम होने लगे; और सांसारिक यश, पद, प्रतिष्ठा जब तुम्हें असफलता दिखाई पड़ने लगें, तब तुम्हारे भीतर सदबुद्धि का अंकुरण होगा।

"सदबुद्धि को जगाओ और मन को तृष्णा-शून्य करो; तथा उसी से संतुष्ट और प्रसन्न रहो जो अपने श्रम से मिलता है।"

यह सभी धनों के संबंध में सच है। बाहर के धन में भी, जो अपने श्रम से मिल जाए, जो उससे तृप्त हो गया, उसके जीवन में नैतिकता होगी; और भीतर के जगत में भी, भीतर का जो धन अपने श्रम से मिले, उसके चित्त में धार्मिकता होगी। तुम शास्त्र को जब कंठस्थ कर लेते हो तो तुम चोरी कर रहे हो। वह जोशास्त्र में छिपा ज्ञान है, वह तुमने श्रम से नहीं पाया है; वह तुम सिर्फ चुरा रहे हो। वह उधार है, बासा है। तुम किसी दूसरे की बात पकड़ लिए हो। उस पर अपने भवन को मत बनाना, वह रेत पर खड़ा किया हुआ भवन है। हवा का एक छोटा सा झोंका उसे गिरा देगा।

अभी कुछ दिन पहले, मैं एक झेन कहानी कह रहा था। एक झेन आश्रम के द्वार पर एक संध्या एक भिक्षु ने दस्तक दी। जापान में झेन आश्रमों का यह नियम है कि अगर कोई भिक्षु, यात्री-भिक्षु, विश्राम करना चाहे, तो उसे कम से कम एक प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। जब तक वह एक प्रश्न का ठीक उत्तर न दे दे, तब तक वह अर्जित नहीं करता विश्राम के लिए। वह आश्रम में रुक नहीं सकता, उसे आगे जाना पड़ेगा। आश्रम का प्रमुख द्वार पर आया, द्वार खोला और उसने झेन फकीरों की एक बहुत पुरानी पहेली इस अतिथि के सामने रखी। पहेली है कि तुम्हारा असली चेहरा क्या है? मूल चेहरा कौन सा है? वैसा मूल चेहरा, जो तुम्हारे मां और बाप के पैदा होने के पहले भी तुम्हारा ही था।

यह आत्मा के संबंध में एक प्रश्न है; क्योंकि मां और बाप से जो मिला, वह शरीर है; शरीर का चेहरा भी उनसे मिला। तुम्हारी ओरिजिनल, मौलिक मुखाकृति क्या है? तुम्हारा स्वभाव क्या है? और झेन फकीर कहते हैं, इसका उत्तर शब्दों से नहीं दिया जा सकता; इसका उत्तर तो जीवंत अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

जैसे ही यह सवाल पूछा गया, उस अतिथि फकीर ने अपने पैर से जूता निकाला और पूछने वाले के चेहरे पर जूता मारा। पूछने वाला पीछे हट गया, झुक कर उसने सलाम की, नमस्कार किया, और कहाः स्वागत है; भीतर आओ।

दोनों ने भोजन किया, फिर जलती हुई अंगीठी के पास बैठ कर दोनों रात बात करने लगे। मेजबान ने मेहमान से कहा, तुम्हारा उत्तर अदभुत था।

मेहमान ने पूछा, तुम्हें स्वयं इस उत्तर का अनुभव है?

मेजबान ने कहा, नहीं, मुझे तो अनुभव नहीं है, लेकिन बहुत मैंने शास्त्र पढ़े हैं। और शास्त्रों से यह पाया है कि ठीक उत्तर देने वाला डगमगाता नहीं, झिझकता नहीं। तुम बिना झिझके उत्तर दिए। और तुम्हारे उत्तर में बात छिपी थी। शास्त्रों के आधार से मैं जानता हूं, मैं पहचान गया कि तुम्हें उत्तर मिल गया है। क्योंकि तुमने जो उत्तर दिया, वह उत्तर यह था कि नासमझ, शब्द में प्रश्न पूछता है, निःशब्द में उत्तर चाहता है! नासमझ, मूल चेहरे की बात पूछता है, और मूल चेहरा तो तेरे पास भी है! इसलिए मैं जूते मार कर तेरे चेहरे को उत्तर दे रहा हूं कि यह चेहरा मूल नहीं है, जूता मारने योग्य है।

मेजबान ने कहा कि मैं समझ गया तेरा उत्तर, शास्त्र मैंने पढ़े हैं और उसमें ऐसे उत्तर लिखे हैं।

मेहमान कुछ बोला न, चुपचाप चाय की चुस्की लेता रहा। तब जरा मेजबान कोशक हुआ, उसने गौर से इसके चेहरे को देखा, इसके चेहरे में उसे कुछ प्रतीत हुआ जो बड़ा असंतोषदायी था। उसने फिर से पूछा कि मित्र, मैं एक बार फिर पूछता हूं, तुझे भी वस्तुतः उत्तर मिल चुका है या नहीं?

मेहमान ने कहा, मैंने भी बहुत शास्त्र पढ़े हैं। और जहां से तुमने मुझे पहचाना कि उत्तर मिल गया, वहीं से मैंने यह उत्तर पढ़ा है; उत्तर तो मुझे भी नहीं मिला है।

शास्त्र भयंकर धोखा हो सकता है, क्योंकि शास्त्र में उत्तर लिखे हैं। लेकिन शास्त्र के उत्तर को दोहराना वैसे ही है, जैसे गणित की किताब के पीछे उत्तर दिए होते हैं। तुम गणित पढ़ो, उलटा कर किताब के पीछे उत्तर देख लो। तो उत्तर तो तुम सही दे दोगे, लेकिन उस प्रश्न से उत्तर तक पहुंचने का जो मार्ग है, जो विधि है, वह तुम्हारे पास न होगी। उत्तर कितना ही सही हो, तुम गलत ही रहोगे; क्योंकि तुम तो विधि से गुजरते, तभी निखरते।

उत्तर दूसरे का काम नहीं आ सकता; उत्तर अपना ही चाहिए। और परमात्मा तुम्हारी शास्त्रीय परीक्षा न लेगा--अस्तित्वगत परीक्षा है। क्या तुमने सुना, क्या तुमने पढ़ा, यह न पूछेगा--क्या तुमने जीया? अगर तुम्हारे जीवन में ही तुम्हें उत्तर मिला हो, तो तुम्हारे श्रम से मिला है।

तो चाहे धन बाहर का हो; अगर बाहर के धन को तुम श्रम से कमाओ, तो तुम्हारे जीवन में नैतिकता होगी; और अगर भीतर के धन को तुम श्रम से कमाओ, तो तुम्हारे जीवन में धार्मिकता होगी--प्रामाणिक धर्म होगा। इसी को स्वामी राम ने नगद धर्म कहा है। उधार धर्म; नगद धर्म।

उधार धर्म ऐसा हैः उत्तर तो सब सही, लेकिन नपुंसक, कोरे, खाली; चली हुई कारतूस जैसे। उसको बंदूक में रख कर चलाने की कोशिश मत करना, हंसी होगी जगत में। वह चली हुई कारतूस है।

लेकिन अधिकतर लोग यही कर रहे हैं--दूसरों के उत्तर दोहरा रहे हैं। यंत्रवत दोहराए चले जा रहे हैं। अपना प्रश्न भी उन्होंने अब तक नहीं खोजा है, अपना उत्तर तो बहुत दूर। अभी उन्हें यह भी पता नहीं है कि हमारे अस्तित्व का प्रश्न क्या है जिसकी हम खोज कर रहे हैं। हम क्या जानना चाहते हैं, इसका भी अभी ठीक-ठीक पता नहीं है।

"हे मूढ़, धन बटोरने की तृष्णा छोड़, सदबुद्धि को जगा। उसी से संतुष्ट और प्रसन्न रह जो श्रम से मिलता है। हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"नारी के रूप, स्तन और नाभिप्रदेश को देख कर मोहाविष्ट मत हो जाओ। वे सब मांस के विकार मात्र हैं, ऐसा विचार मन में बार-बार करो। और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

पुरुष के मन में नारी का आकर्षण है, नारी के मन में पुरुष का आकर्षण है। विपरीत का आकर्षण होता है। और विपरीत के आकर्षण में एक सम्मोहित अवस्था हो जाती है।

इसे थोड़ा समझना जरूरी है।

जब बच्चा पैदा होता है, तो पहला संपर्क संसार से उसका मां का स्तन है। पहला संपर्क--पर से, दूसरे से मां का स्तन है। मां के स्तन से ही परिचित होकर वह संसार में यात्रा शुरू करता है। इसलिए स्त्री के स्तन में पुरुष की सदा ही वासना बनी रहती है; वह पहला संस्कार है मन पर, उससे गहरा कोई भी संस्कार नहीं है। इसलिए चित्र, मूर्तियां, फिल्में, कहानियां, सब स्त्री के स्तन के आस-पास घूमती हैं। और पुरुष के मन में स्त्री के शरीर में सबसे ज्यादा मोहाविष्ट होने की जो जगह है, वह स्तन है। स्त्रियां स्तनों को छिपाने में लगी रहती हैं, पुरुष उनको उघाड़ने में लगे रहते हैं। क्योंकि स्त्रियों को भी पता है कि पुरुष का आकर्षण कहां है; पुरुष को भी पता है कि स्त्री में उनका रस कहां है।

और जितनी सभ्यता विकसित होती है, उतनी ही यह कठिनता बढ़ती जाती है। असभ्य जातियों में स्तन के प्रति कोई आकर्षण नहीं है; क्योंकि स्त्रियां उघाड़ी हैं, स्तन उघड़ा ही हुआ है। और हर बच्चे को, जितनी देर तक उसे दूध पीना हो मां का, पीने की पूरी स्वतंत्रता है। वह दस साल का भी हो जाए और पीता रहे तो कोई अड़चन नहीं है।

सभ्य समाजों में जल्दी से जल्दी बच्चे से स्तन छुड़ाने की आकांक्षा है। और जितने जल्दी स्तन छुड़ा लिया जाए, उतना ही स्तन में रस शेष रह जाता है। फिर कविताएं करते हैं लोग स्तन की, चित्र बनाते हैं, मूर्ति गढ़ते हैं; हजार उपाय करते हैं। लेकिन उनका मन स्तन के आस-पास घूमता रहता है। बच्चा तृप्त नहीं हो पाया, अतृप्त रह गया है। वह अतृप्ति सपने बनाती है। अतृप्ति में भीतर का एक सम्मोहन पैदा होता है। और इसकी तृप्ति का अब कोई उपाय नहीं है, जब तक कि सदबुद्धि न जगे।

इसे सतत स्मरण करना जरूरी है--शंकर कहते हैं। बार-बार इसका स्मरण होता रहे, तो ही वह जो पहला संस्कार पड़ा है, वह टूट सकता है।

वैज्ञानिकों ने कुछ खोजें की हैं। उनकी एक खोज बड़ी महत्वपूर्ण है। एक वैज्ञानिक मुर्गियों पर प्रयोग कर रहा था। मुर्गी के अंडे से बच्चा पैदा हुआ, तो उसने उस बच्चे को मुर्गी को न देखने दिया, एक बतख को पास रख दिया। बच्चे ने जब आंख खोली अंडे के बाहर आकर, तो उसने बतख को देखा। यह पहला संस्कार हुआ।

फिर एक बड़ी मजेदार घटना घटीः वह बतख के पीछे दौड़े, मुर्गी से उसकी कोई पहचान ही न रही। बतख उसे मारे भी--क्योंकि बतख को बरदाश्त नहीं यह कि मुर्गी का बच्चा नाहक उसके पीछे भागे--उसे मारे भी, तो भी वह उसी के साथ जाए! मुर्गी उसे फुसलाए भी, तो वह उसके पास न आए, दूर खड़ा डरे। बतखों का जो कठघरा था, उसमें वह सोना चाहे रात को, और बतखें उसे मार-मार कर बाहर निकाल दें। और मुर्गी उसे फुसला कर अपने कठघरे में ले जाना चाहे, जहां सभी मुर्गियां उसका स्वागत करने को तैयार हैं, लेकिन वह वहां जाने को तैयार नहीं।

पहला इम्प्रिंट, पहला संस्कार बड़ा बहुमूल्य है। वह जीवन भर पीछा करता है। मनुष्य के जीवन में जो भी पहली घटना घटती है, वह सदा पीछा करती है। और फिर जीवन भर चित्त उसके आस-पास सपने गूंथता है।

स्त्री के शरीर में या पुरुष के शरीर में ऐसा क्या है जिसमें इतना आकर्षण है?

निश्चित कुछ है, क्योंकि तुम्हारा शरीर भी स्त्री और पुरुष के शरीर के मिलन से बना है; आधा स्त्री ने दान किया है, आधा पुरुष ने दान किया है। हर व्यक्ति आधा पुरुष है, आधा स्त्री है; दोनों का मेल है। तुम्हारा रोआं-रोआं आधा स्त्री है, आधा पुरुष है; अधूरा-अधूरा है। वह जो तुम्हारे भीतर स्त्री का हिस्सा है, वह पुरुष की आकांक्षा करता रहता है; वह जो तुम्हारे भीतर पुरुष का हिस्सा है, वह स्त्री की आकांक्षा करता रहता है।

मनोविज्ञान की नवीनतम खोजें ये कहती हैं कि हर पुरुष के भीतर अचेतन में छिपी स्त्री है और हर स्त्री के भीतर अचेतन में छिपा पुरुष है। जब तक तुम्हारे भीतर की स्त्री तुम्हारे भीतर के पुरुष से न मिल जाए, तब तक तुम बाहर खोजते रहोगे। जब तक तुम्हारे भीतर का पुरुष तुम्हारे भीतर की स्त्री के साथ एक न हो जाए, जब तक तुम्हारा चेतन मन अचेतन मन संयुक्त होकर एक न हो जाएं, तब तक तुम्हारे जीवन में विजातीय का--स्त्री का पुरुष के लिए, पुरुष का स्त्री के लिए--आकर्षण शेष रहेगा।

तुमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा देखी--जिसमें शंकर आधे हैं स्त्री और आधे पुरुष? जब तक तुम्हारे भीतर भी आधे पुरुष और आधी स्त्री की अर्धनारीश्वर प्रतिमा निर्मित न हो जाए, जब तक तुम अपने भीतर ही पूरे न हो जाओ, तब तक तुम्हारी तलाश बाहर जारी रहेगी। तुम चाहोगे, स्त्री से मिल कर शायद पूर्णता हो जाए। कुछ खोया-खोया लगता है। स्त्री तुम्हारे भीतर ही तुम्हारे अचेतन में पड़ी है।

इसलिए समस्त योग, तंत्र, मौलिक रूप से तुम्हारे भीतर की शक्तियों को मिलाने की प्रक्रिया है। जब तुम भीतर जुड़ कर एक हो जाते हो, तब तुम्हारे भीतर बाहर की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। लेकिन बाहर की आकांक्षा समाप्त हो, तो ही तुम अपने भीतर मिल कर एक हो सकते हो। ये दोनों बातें एक-दूसरे पर निर्भर हैं, अन्योन्याश्रित हैं।

इसलिए शंकर कहते हैंः "नारी के रूप, स्तन और नाभिप्रदेश को देख कर मोहाविष्ट मत होओ।"

शंकर पुरुषों से बोल रहे हैं, क्योंकि उन दिनों--विशेषकर इस देश में--धर्म मूलतः पुरुष का एकाधिपत्य था। लेकिन यही बात स्त्रियों के लिए भी कह देनी जरूरी है कि पुरुष के शरीर में भी कुछ नहीं है जिसमें मोहाविष्ट होने की जरूरत हो।

शंकर के ये वचन या इस तरह के और संतों के वचन एक बड़ी भ्रांति का कारण बन गए हैं। ऐसा लगता है कि स्त्री के शरीर में कुछ नहीं है और तुम्हारे शरीर में बहुत कुछ है। शरीर में ही कुछ नहीं है, यह ख्याल रखना। नहीं तो पुरुष सोचने लगते हैं कि स्त्री के शरीर में कुछ नहीं है, सब हड्डी-मांस-मज्जा है। और तुम्हारे शरीर में सोना-हीरा-चांदी है? जब तक तुम अपने ही शरीर में हड्डी-मांस-मज्जा न देख पाओगे, तब तक तुम स्त्री के शरीर में भी न देख पाओगे। इससे स्त्री की निंदा करने की एक परंपरा बन गई। पुरुष सोचने लगे कि जैसे स्त्री ने उन्हें बंधन में डाला है। तो फिर स्त्री को किसने बंधन में डाला है? पुरुष सोचने लगे कि स्त्री ही मोक्ष में बाधा है। अगर स्त्री मोक्ष में बाधा है, तोस्त्री के लिए मोक्ष में कौन बाधा है? स्त्रियां तो फिर बिना ही बाधा के मोक्ष पहुंच जाएंगी। थोड़ा सोचो तो! जब उनके जीवन में कोई बाधा ही नहीं है, तो मोक्ष में कोई अड़चन नहीं, वे तो ऐसे ही पहुंच जाएंगी!

नहीं, स्त्री और पुरुष का सवाल ही नहीं है। विपरीत में जो आकर्षण है, वह व्यर्थ है।

"वे सब मांस के विकार मात्र हैं, ऐसा विचार मन में बार-बार करो।"

क्योंकि संस्कार जो पड़ चुका है, उसको तोड़ने के लिए बार-बार विचार की जरूरत है। सतत स्मरण रहे, तो जैसे जलधार पत्थर को तोड़ देती है--बड़े मजबूत पत्थर को। जब पहली दफा जलधार गिरती है, कौन सोचेगा कि जलधार पत्थर को तोड़ पाएगी! लेकिन एक वक्त आता है कि जलधार तो बनी रहती है, पत्थर रेत के कण-कण होकर बह जाता है।

संस्कार बड़ा कठोर है, बड़ा गहरा है, लेकिन अगर विचार की जलधार बूंद-बूंद भी टपकती रही, तो एक दिन तुम अचानक पाओगे कि पत्थर टूट गया और बह गया। और जिस दिन तुम्हारे संस्कार बह जाते हैं, तुम मुक्त हो जाते हो।

"और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

और गोविन्द के भजन को, शंकर कह रहे हैं, निरंतर साधे रहो। कुछ भी करो, लेकिन लौट-लौट कर गोविन्द के भजन को... गोविन्द के भजन का अर्थ हैः जो दिखाई पड़ रहा है, वह काफी नहीं है, पर्याप्त नहीं है, पूरा नहीं है; जो नहीं दिखाई पड़ रहा है, वह भी है--उसे याद रखो। कहीं ऐसा न हो कि दृश्य में अदृश्य खो जाए; अदृश्य को याद रखो।

तुम मुझे देख रहे हो, मैं तुम्हें देख रहा हूं। तुम मुझे जहां तक देख पाओगे, वह दृश्य है। लेकिन मेरे भीतर अगर तुम्हें अदृश्य की भी याद बनी रहे। रास्ते पर तुम चलो और जो आदमी तुम्हें मिले, जानवर मिले, वृक्ष मिले--तो जो दिखाई पड़ रहा है, वह तो ठीक है; जो दिखाई पड़ रहा है, वह संसार है; लेकिन हर दिखाई पड़ने वाले के भीतर जो अदृश्य छिपा है, वही गोविन्द है। गोविन्द को भजने का अर्थ हैः दृश्य तुम्हें भुला न पाए, दृश्य तुम्हें धोखा न दे पाए; तुम अदृश्य को याद रखते ही रहो।

एक संन्यासी को गलती से, भ्रांतिवश, एक सिपाही ने मार डाला। अठारह सौ सत्तावन की बात, क्रांति के दिन, एक मौन संन्यासी, नग्न संन्यासी गुजर रहा है अंग्रेजों की छावनी के पास से। सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया, उससे पूछा, कौन हो? लेकिन वह मौन है, इसलिए वह उत्तर नहीं दिया। उत्तर नहीं दिया तोशक बढ़ा, संदेह हुआ। तो एक अंग्रेज सिपाही ने भाला उठा कर उसकी छाती में भोंक दिया। उस संन्यासी ने व्रत लिया था कि सिर्फ मरते वक्त एक बार बोलेगा, उसके पहले नहीं। ऐसा तीस साल से वह मौन था। जब भाला उसकी छाती में छिदा, खून का फव्वारा फूट पड़ा, तब उसने सिर्फ एक वचन उपनिषद का कहाः तत्वमसि श्वेतकेतु! तू भी वही है श्वेतकेतु!

भीड़ इकट्ठी हो गई, लोगों ने पूछा, तुम्हारा क्या मतलब है?

उसने कहा कि मेरा मतलब इतना ही है कि परमात्मा किसी भी रूप में आए, मुझे धोखा न दे पाएगा। आज वह भाला मारने के लिए आया है; भाला हाथ में लेकर आया है; भाला छाती में चुभ गया है; लेकिन मैं देख रहा हूं कि भीतर तू वही है। तत्वमसि श्वेतकेतु! तू मुझे धोखा न दे पाएगा।

छाती से खून बहते हुए वह संन्यासी नाचने लगा, क्योंकि वह अपने हत्यारे में भी परमात्मा को देख सका।

"भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।" इसका अर्थ है कि कहीं कुछ भी हो जाए, हर हालत में परमात्मा तोदिखाई पड़ता ही रहे। दुश्मन में भी दिखाई पड़े; और जब मौत द्वार पर आए, तो मौत में भी दिखाई पड़े। मित्र में तो दिखाई पड़े ही, शत्रु में भी दिखाई पड़े।

अभी तो ऐसा है कि मित्र में भी दिखाई नहीं पड़ता। अभी तो तुम जिससे प्रेम करते हो, उसमें भी दिखाई नहीं पड़ता--प्रेयसी में, प्रेमी में भी दिखाई नहीं पड़ता; अभी तो अपने बेटे में, अपने बच्चे में भी दिखाई नहीं पड़ता--शत्रु की तो बात ही बहुत दूर है। अपने में नहीं दिखाई पड़ता तो पराए में कैसे दिखाई पड़ेगा?

"भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते" का अर्थ है कि चाहे कुछ भी हो, एक परमात्मा तो सब जगह दिखाई पड़ता ही रहे। चट्टान में भी दिखाई पड़े। होगा, बहुत गहरा सोया है--लेकिन है तो! वृक्ष में भी दिखाई पड़े; माना कि गूंगा है--है तो! पागल में भी दिखाई पड़े; माना कि विक्षिप्त है--लेकिन है तो! किसी भी रूप में आए वह, तुम्हारी पहचान न चूके।

साईंबाबा के जीवन में एक उल्लेख है। एक हिंदू संन्यासी, जिस मस्जिद में साईंबाबा रहते थे, उससे कोई तीन मील दूर रहता था। वह रोज आता साईं के दर्शन को। और जब तक उनके दर्शन न हो जाते, तब तक वापस

जाकर भोजन न करता। कभी-कभी बड़ी भीड़ होती, वह मस्जिद में भीतर ही न घुस पाता। कभी-कभी पूरा दिन बीत जाता, तब दर्शन होते। लेकिन जब तक वह पैर न छू ले, तब तक वह भोजन न करता। कभी-कभी रात हो जाती तो फिर भोजन करना मुश्किल हो जाता, उपवासा ही रह जाता; क्योंकि दिन में ही भोजन करने का नियम था।

साईंबाबा ने उससे कहा, नासमझ, तुझे यहां आने की जरूरत भी नहीं, मैं वहीं आ जाऊंगा। मगर पहचानना! ऐसा न हो कि मैं आऊं और तू पहचाने न। ठीक जब तेरा भोजन तैयार होगा, मैं आ जाऊंगा; तू वहीं दर्शन कर लेना और भोजन कर लेना। तीन मील आना-जाना, फिर कभी-कभी उपवासे रह जाना, मुझे भी पीड़ा होती है।

उसने कहा, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। तो कल मैं राह देखूंगा।

कल उसने खाना जल्दी बना लिया; बड़ी खुशी से राह देखने लगा। कोई नहीं आया, एक कुत्ता आया। कुत्ते को भोजन की गंध मिल गई होगी। उसने उठाया डंडा और कहा, भाग यहां से! हम साईं की प्रतीक्षा कर रहे हैं, आए तुम! दो डंडे मारे, कुत्ते को भगा दिया। फिर कोई नहीं आया। दोपहर हो गई, तो भागा हुआ मस्जिद पहुंचा। वहां भीड़ लगी है। जाकर कहा कि यह क्या मामला है? बोल कर, वचन देकर, आए नहीं? तुम तो यहां जमे हो, भीड़-भाड़ में बैठे हो। आओगे कैसे?

साईं ने कहा, मैं आया, दो डंडे भी खाए, तुम पहचाने नहीं।

घबड़ाया संन्यासी--दो डंडे! उसने कहा, कुत्ता आया था महाराज!

साईं ने कहा, वह मैंने पहले ही कह दिया था--पहचानना, आऊंगा जरूर। किस रूप में आऊंगा, उस समय कौन सा रूप सुलभ-सरल होगा आने के लिए, यह तो समय-समय की बात है। उस समय यही मौजूं था कि कुत्ते की शक्ल में आऊं। कोई दूसरा रूप उस वक्त भर दोपहरी में उपलब्ध भी न था। वह कुत्ता ही वहां था, सो हम उसी पर सवार हुए।

रोने लगा संन्यासी। उसने कहा, अब एक दफा भूल हो गई, एक मौका और! कल, चाहे कुछ भी हो, पहचान लूंगा।

कुत्ता अगर आता दूसरे दिन तो पहचान लेता, लेकिन कुत्ता आया ही नहीं। अब उसको पता था। वह दो की प्रतीक्षा कर रहा था--साईंबाबा सीधे आ जाएं तो ठीक, नहीं तो कुत्ते की राह देख रहा था। कुत्ता आया ही नहीं! अब कुत्ते भी कोई भरोसे के थोड़े ही हैं! मौज की बात--आ गए, आ गए--नहीं आया। आया एक भिखमंगा, कोढ़ी। चूक हो गई फिर। उसकी बास आ रही थी। भयंकर दुर्गंध थी। यह तो भोजन को भी खराब कर देगा, इसकी बास आ रही है। यह तो खाने का भी मन नहीं रह जाएगा। वमन की इच्छा होने लगी उसको देख कर। कहा कि भाई, जा! यहां आने की कोई जरूरत नहीं है; यहां अंदर प्रवेश भी मत करना। थोड़ा शक भी हुआ कि कहीं भूल तो नहीं हो रही। लेकिन यह कोढ़ी और साईंबाबा--कोई तालमेल नहीं दिखता; कुत्ता कम से कम स्वस्थ तो था।

सांझ फिर गया, कहा कि आप आए नहीं; आपकी भी राह देखी, कुत्ते की भी राह देखी।

साईंबाबा ने कहा, आया था, लेकिन दुर्गंध तुझे जंची ही नहीं; तूने दूर-दूर दुतकार दिया।

रोने लगा संन्यासी। कहा, एक बार और!

साईंबाबा ने कहा, हजार बार भी आऊं, तू न पहचानेगा।

पहचान तब संभव हो पाती है जब तुम जागते हो, जागे हुए होते हो।

गोविन्द को भजने का यही अर्थ है कि जो भी तुम्हें दिखाई पड़े, गोविन्द का भजन बन जाए; जहां से भी खबर आए, उसकी ही खबर आए। हवा बहे, तो उसकी याद; जल में कलकल नाद हो, तो उसकी याद; पक्षी गीत गाएं, तो उसकी याद; सन्नाटा हो, तो उसका; शोरगुल हो, तो उसका; बाजार हो, तो उसका; शून्य हिमालय हो, तो उसका। लेकिन उसकी याद हर जगह से आए--पत्ती, फूल, पत्थर--सब तरफ से उसकी याद आए। उसकी याद ही चारों तरफ बरसने लगे और तुम्हें घेर ले; जब भी तुम किसी की आंखों में झांको, उसी में झांको।

और यह कोई कल्पना या काव्य नहीं है, यह तथ्य है; क्योंकि हर आंख से वही झांक रहा है। तुमने नहीं देखा, यह तुम्हारी भूल है; तुमने नहीं पहचाना, यह तुम्हारी नासमझी है; लेकिन हर आंख से वही झांक रहा है। लौट कर अपनी पत्नी की आंख में ही झांक कर देखना; या अपने छोटे बच्चे को पास बैठा लेना, उसकी आंख में गौर से झांकना। जल्दी ही तुम पाओगे--बच्चा तो खो गया, निराकार मौजूद है। तुम जहां भी गहरे देखोगे, उसी को पाओगे; जहां भी तुम उथला देखोगे, चूक जाओगे।

"कमल के पत्ते पर जैसे तरल और अस्थिर होता है जल, वैसे ही यह जीवन अतिशय चपल और अस्थिर है। यह ठीक से समझ लो कि संसार अहंकार के रोग से ग्रस्त है और दुख से आहत। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

यहां तो सब बहा जा रहा है, प्रतिपल भागा जा रहा है; यहां कुछ भी थिर नहीं है। इस अस्थिर पर भवन मत बनाना। इससे तो रेत भी कहीं ज्यादा थिर है। यह संसार तो जल की धार है, इस पर भवन मत बनाना; अन्यथा पछताओगे।

थिर को खोजो; सदा उस पर नजर रखो जो सब बहाव के बीच में भी ठहरा है। गाड़ी चलती है, चाक घूमता है, लेकिन कील ठहरी रहती है। कील पर नजर रखो। कील में तुम उसे पाओगे। चाक में संसार है; संसार का अर्थ ही चाक है। इसलिए तो हम उसे संसार-चक्र कहते हैं। वह घूमता चला जाता है। लेकिन जिसके सहारे घूमता है, वह कील थिर है। अस्थिर को भी होने के लिए थिर का सहारा चाहिए; झूठ को भी जीने के लिए सत्य का सहारा चाहिए। स्वप्न के घटने के लिए भी सच्चा द्रष्टा चाहिए, अन्यथा स्वप्न भी न घट सकेगा।

"कमल के पत्ते पर जल जैसे तरल और अस्थिर होता है, ऐसा ही यह जीवन अतिशय चपल और अस्थिर है।"

इससे बहुत अपने को मत जकड़ लेना; अन्यथा तुम जकड़ोगे, पछताओगे, दुखी होओगे। क्योंकि यहां कुछ रुक नहीं सकता; तुम रोकना भी चाहोगे, न रुकेगा। सब बहा जा रहा है।

जवान हो, जवानी बह जाएगी। पकड़ोगे, कोशिश करोगे, पकड़ न पाओगे--पछताओगे। पकड़ने में ही समय व्यय हो जाएगा। यह शरीर है, कल नहीं होगा। ऐसे बहुत शरीर हुए और नहीं हो गए। संसार एक चंचलता है, एक चपलता है, एक परिवर्तन है। यहां तुम अपना घर मत बनाना। ज्यादा से ज्यादा सराय है। रात ठहरे, सुबह फिर चल पड़ना है। और यहां तुमने अगर घर बनाया तो दुख परिणाम है। इसलिए तुम दुखी हो।

लोग मुझसे पूछते हैं, हम दुखी क्यों हैं?

इसलिए तुम दुखी हो कि तुम भवन अपना वहां बना रहे हो जहां बनाया नहीं जा सकता; और जहां बनाया जा सकता है, या जहां बना ही है, वहां तुम देख ही नहीं रहे हो। तुम्हारी आंखें गलत दिशा में हैं, इसलिए दुख है। दुख, गलत के साथ जुड़ने का परिणाम है, गलत के साथ संग-साथ कर लेने का परिणाम है। आनंद सत्संग है।

"जब तक धन अर्जित करने की शक्ति है, तभी तक अपना परिवार भी अनुरक्त रहता है। बाद बुढ़ापा आने पर जब शरीर जर्जर हो जाता है, तब घर में कोई बात भी नहीं पूछता। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

अगर परिवार ही बनाना है तो उसके साथ बना लो। अगर विवाह ही रचाना है तो उसके साथ रचा लो। इस जगत के सब विवाह गहरे में तलाक हैं। इस जगत के सब संबंध बस ऊपर-ऊपर नाममात्र हैं, भीतर कुछ भी नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक लखपति बाप की बेटी के प्रेम में था और कहता थाः चाहे जीवन रहे कि जाए, तुझे नहीं छोड़ सकता। मरने को तैयार हूं, अगर उसकी भी जरूरत हो; शहीद हो सकता हूं, लेकिन तुझे नहीं छोड़ सकता। बड़ी बातें करता था।

एक दिन लड़की बड़ी उदास थी और उसने नसरुद्दीन से कहा कि सुनो, मेरे पिता का दिवाला निकल गया!

नसरुद्दीन ने कहा, मुझे पहले से ही पता था कि तेरा बाप जरूर कोई न कोई गड़बड़ खड़ी करेगा और हमारा विवाह न होने देगा।

विवाह ही जिस कारण से कर रहे थे, वही खतम हो गया!

तुम्हारे संबंध, तुम कहते कुछ और हो, कारण उनका कुछ और ही होता है। तुम बताते कुछ और हो... और मजा ऐसा है कि तुम जो बताते हो, हो सकता है तुम ऐसा मानते भी होओ कि यही सच है। तुम अपने को भी धोखा दे लेते हो; दूसरे को ही देते हो, ऐसा नहीं है। आदमी बड़ा कुशल है, अपने को भी धोखा दे लेता है।

"जब तक शरीर में प्राण बचते हैं, तभी तक घर के लोग कुशलक्षेम पूछते हैं। प्राण निकलने पर शरीर का पतन हुआ कि फिर अपनी पत्नी भी उस शरीर से भय खाती है। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

जो सदा साथ रह सके, उसी का साथ कर लो। जिनका साथ नदी-नाव संयोग है, उनका साथ भी क्या साथ है? राह पर चलते हुए जैसे यात्री मिल जाते हैं घड़ी भर को, साथ हो लेते हैं, फिर अलग-अलग मार्ग हो जाते हैं, बिछुड़ जाते हैं। ऐसा ही घड़ी भर का साथ है। इस साथ को बहुत मूल्य मत देना। और इस साथ को सत्य मत मान लेना। स्वप्न में जैसे किसी से मिलन हो गया है, नींद टूटते ही छूट जाएगा।

"बालक खेलकूद में आसक्त रहता है, युवक तरुणी के प्रेम में आसक्त है, और वृद्ध चिंताओं में आसक्त रहते हैं। कभी तो मनुष्य परमात्मा के प्रति संलग्न नहीं होता। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

बचपन गुजर जाता है खेलकूद में, क्रीड़ा-आसक्ति में; जवानी गुजर जाती है प्रेम के नाम पर चलते हुए खेल में; बुढ़ापा अतीत की चिंताओं में, अतीत का हिसाब बिठाने में, लगाने में; और जीवन यूं ही चला जाता है। परमात्मा की याद ही नहीं आ पाती। और परमात्मा को हम टालते चले जाते हैं, स्थगित करते चले जाते हैं--कल, और कल! और कल आती है सिर्फ मौत। परमात्मा की याद भी नहीं कर पाते और मौत आ जाती है।

"हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

इसके पहले कि मौत आ जाए--जब भी होश आ जाए--जगाओ अपने को। थोड़ा देखो, क्या तुम कर रहे हो? कहां तुम उलझे हो? तुम्हारे कृत्यों का क्या परिणाम हो सकता है? तुम्हारे कृत्य, तुम्हारा धन, तुम्हारी प्रतिष्ठा, सब पड़ी रह जाएगी। जो पड़ा ही रह जाएगा, उसके साथ बहुत समय व्यय मत करो; जितने जल्दी जाग जाओ, उतना अच्छा।

जीवन के प्रति जिसकी आसक्ति नहीं टूटी, परमात्मा से उसकी आसक्ति नहीं जुड़ पाती। जीवन के प्रति अगर तुम बहुत अनुरक्त हो, तो तुम परमात्मा को न पहचान पाओगे। रूप के प्रति जिसकी आसक्ति है, वह अरूप

को कैसे पहचानेगा? पदार्थ की जिसकी पकड़ है, वह निराकार को कैसे पकड़ेगा? पृथ्वी पर जिसका सब कुछ लगा है, वह आकाश की तरफ आंख भी नहीं उठाता। तुम्हारी आसक्ति जहां है अभी, जब तक वहां उसकी जड़ें न टूट जाएं, जब तक तुम जाग कर न देख लो कि सिवाय दुख के वहां और कुछ भी नहीं है, जब तक तुम्हें जीवन का सार-निचोड़ दुख न दिखाई पड़ जाए... । सुख का कितना ही प्रलोभन हो, मिलता सदा दुख है। सुख के कितने ही आश्वासन हों, मिलता सदा दुख है। सुख की तुम कितनी ही योजनाएं बनाओ, वे योजनाएं ऐसी हैं, जैसे कोई तेल निकालने की चेष्टा कर रहा हो रेत को निचोड़ कर। हाथ में कुछ भी नहीं आता, हाथ खाली रह जाते हैं।

खाली हाथ संसार से जाने की तैयारी हो, तो परमात्मा की फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन बहुत रोते हुए जाओगे।

अगर भरे हाथ, भरे हृदय जाने की तैयारी हो, आकांक्षा हो, तो जितने जल्दी परमात्मा का स्मरण करो, और जितने जल्दी उसमें लीन हो जाओ, और जितना ज्यादा से ज्यादा समय और शक्ति उसके स्मरण में लग जाए, उतना ही शुभ है।

एक ही चीज तुम्हें भर सकती है, वह परमात्मा है। और उसकी भर तुम चिंता नहीं करते हो। और जिनसे तुम कभी न भर सकोगे, उनकी तुम चिंता किए चले जाते हो!

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरने के करीब थी। वह बिस्तर पर पड़ी है। आंख उसने खोली और उसने कहा, सुनो जी, क्या तुम सच कहते हो कि मैं मर जाऊंगी तो तुम पागल हो जाओगे?

नसरुद्दीन ने कहा, सौ फीसदी; तू मरेगी तो मैं निश्चित पागल हो जाऊंगा।

पत्नी हंसने लगी। कहा, झूठ बोलते हो। जहां तक मैं जानती हूं, मैं मरूंगी और तुम दूसरी शादी कर लोगे।

नसरुद्दीन ने कहा कि पागल हो जाऊंगा, यह सच है, लेकिन इतना पागल नहीं कि फिर शादी कर लूं।

अगर जीवन को तुम गौर से देखो, तो तुम दुबारा जन्म न लेना चाहोगे, तुम फिर शादी न करना चाहोगे। क्योंकि सिवाय दुख के और तुमने पाया क्या? यही तो सारे पूरब की खोज हैः आवागमन से कैसे छुटकारा हो जाए! जिन्होंने जीवन को देखा, उनकी एक ही आकांक्षा बची कि जीवन से छुटकारा कैसे हो जाए!

मैंने सुना है कि एक बहुत अनूठा संन्यासी, बोधिधर्म, जब चीन गया बुद्ध का संदेश लेकर, तो सम्राट वू ने उससे पूछा कि संक्षिप्त में मुझे बता दें, मेरे पास ज्यादा समय नहीं है--तुम देख ही रहे हो कि साम्राज्य बड़ा है और मैं ज्यादा सत्संग नहीं कर सकता--मुझे संक्षिप्त में बता दो कि जीवन की सबसे बहुमूल्य बात क्या है? सबसे बड़ा सौभाग्य क्या है?

बोधिधर्म ने कहा, तुम समझ न पाओगे। सबसे बड़ा सौभागय यह है कि तुम पैदा ही न होते।

वू थोड़ा चौंका--यह कोई सौभाग्य की बात कर रहा है आदमी कि तुम पैदा ही न होते! पर निश्चित ही बोधिधर्म सौभाग्य की ही बात कर रहा है। बुद्धों की यही तो आकांक्षा है कि पैदा न होते।

पर, बोधिधर्म ने कहा, वह बात तो हो नहीं सकती--खतम। तुम हो ही गए पैदा। वह तोनंबर एक का सौभाग्य है। इसलिए नंबर दो की कहता हूं कि जितने जल्दी मर जाओ।

कहते हैं, वू फिर कभी मिलने नहीं आया बोधिधर्म को--कि यह भी कोई ज्ञानी है! लेकिन मैं भी तुमसे कहता हूं, नंबर एक का सौभाग्य कि तुम पैदा न हुए होते। लेकिन उस पर तो अब कोई बस नहीं, हो ही गए। तो अब दूसरा सौभाग्य है कि तुम जीते जी मर जाओ; जीवन से तुम्हारा राग-रंग छूट जाए। यह जीते जी मरने का अर्थ हैः तुम ऐसे जीने लगो, जैसे तुम हो ही नहीं। बैठो बाजार में, क्योंकि कहीं तो बैठोगे ही; लेकिन ऐसे जैसे हो

ही नहीं। पालो पत्नी-बच्चों को, पालना ही पड़ेगा; लेकिन ऐसे जैसे तुम हो ही नहीं। तुम अनुपस्थित हो जाओ। और जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारी अनुपस्थिति रिक्त नहीं रही, परमात्मा उसमें धीरे-धीरे उतर आया है।

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

क्षणभंगुर का आकर्षण

पहला प्रश्नः श्री शंकराचार्य तत्वज्ञान सिखाते हैं और साथ ही गोविन्द के भजन भी गाते हैं। क्या ज्ञान और भजन में, ज्ञान और भक्ति में कोई अंतर्संबंध है?

ज्ञान निषेधात्मक है, भक्ति विधायक। ज्ञान ऐसा है जैसे कोई भूमि तैयार करे, घास-पात अलग करे, खाद डाले; और भक्ति ऐसी है जैसे कोई बीज बोए।

ज्ञान अपने में अधूरा है। उससे सफाई तो हो जाती है, लेकिन बीज आरोपित नहीं होते। जरूरी है, काफी नहीं है। क्योंकि ज्ञान तो है बुद्धि का, भक्ति है हृदय की। परमात्मा के मार्ग पर जितनी बाधाएं हैं, वे तो ज्ञान से काटी जा सकती हैं; लेकिन जो सीढ़ियां हैं, वे भक्ति से चढ़ी जाती हैं।

इसलिए ज्ञान निषेधात्मक है; व्यर्थ को तोड़ने में बड़ा कारगर है, सार्थक को जन्माने में नहीं।

शंकर ज्ञान की बात कर रहे हैं, ताकि तुम्हारे भीतर अज्ञान की जो पर्त दर पर्त भीड़ लगी है, कट जाए। और जब एक बार मन की भूमि साफ हो गई, व्यर्थ का कचरा न रहा, कूड़ा-करकट न रहा, तो फिर भक्ति के बीज बोए जा सकते हैं; फिर भज गोविन्दम की संभावना है। विरोध नहीं है दोनों में; भक्ति ज्ञान की ही पराकाष्ठा है और ज्ञान भक्ति की ही शुरुआत है। क्योंकि मनुष्य के भीतर हृदय भी है, बुद्धि भी है। दोनों को छूना होगा। दोनों का रूपांतरण चाहिए।

अगर तुम सिर्फ ज्ञान में ही उलझ गए, तो कोरे रेगिस्तान की भांति हो जाओगे--साफ-सुथरे, पर कुछ भी ऊगेगा नहीं; स्वच्छ, पर निर्बीज; विस्तीर्ण, पर न तो कोई ऊंचाई, न कोई गहराई। ज्ञान शुष्क है, अकेला। और अगर तुम अकेले भक्त हो गए, तो तुम्हारे जीवन में वृक्ष तो उगेंगे, फूल तो फलेंगे, हरियाली होगी, लेकिन उस हरियाली को बचाने के तुम्हारे पास उपाय न होंगे। तुम उन पौधों की रक्षा न कर पाओगे। अगर कोई संदेह जगाने आ गया, तो तुम्हारी उर्वर भूमि में संदेह के बीज भी पड़ जाएंगे, उनमें भी अंकुर आ जाएंगे।

भक्त अगर ज्ञान की प्रक्रिया से न गुजरा हो, तो उसका भवन सदा डगमगाता रहेगा। कोई भी संदेह डाल सकता है। और भक्त तो विश्वास करना जानता है। वह उन पर भी विश्वास कर लेता है जो उसे ले जा रहे हैं; वह उन पर भी विश्वास कर लेता है जो उसे भटका रहे हैं। वह गलत को भी पकड़ लेता है उसी तरह, जिस तरह ठीक को पकड़ता है। उसके पास सोचने-समझने की क्षमता नहीं; उसके पास विवेक नहीं।

तो भक्त ऐसे है, जैसे अंधा हो; ज्ञान ऐसे है, जैसे लंगड़ा हो; और दोनों मिल जाएं तो परम संयोग घटित होता है।

तुमने कहानी सुनी है कि जंगल में लग गई आग और एक अंधा और एक लंगड़ा बड़ी मुश्किल में पड़े। अंधे को दिखाई नहीं पड़ता, कहां जाए! पैर हैं उसके पास स्वस्थ, भाग सकता है, बच सकता है; लेकिन दिशा नहीं है। लंगड़े को दिखाई पड़ता है--कहां है मार्ग; अभी जंगल का कौन सा हिस्सा अग्नि से नहीं घिरा है; लेकिन लंगड़ा है, दौड़ नहीं सकता; निकलने का उपाय नहीं।

कथा कहती है, दोनों मिल गए; अंधे ने लंगड़े को कंधे पर ले लिया। फिर दोनों की कमियां भर गईं। वे जैसे एक ही व्यक्ति बन गए; अंधे के पैर, लंगड़े की आंखें जुड़ गईं। वे दोनों जंगल से सुरक्षित बाहर आ गए। अग्नि उन्हें नष्ट न कर पाई।

बुद्धि और हृदय जब तक न मिल जाएं, तुम जीवन की अग्नि से बच न पाओगे।

बुद्धि अंधी है। अकेले, हृदय भी पंगु है, बुद्धि भी पंगु है; जुड़ कर दोनों पूर्ण हो जाते हैं। और दोनों तुम्हारे पास हैं; दोनों का उपयोग कर लेना है।

तो ज्ञान को भक्ति का सहारा बनाओ, भक्ति को ज्ञान का सहारा बनाओ; दोनों तुम्हारे पंख बन जाएं, तुम आकाश में उड़ सकोगे। न तो एक पंख से कभी कोई पक्षी उड़ा है, न एक पैर से कोई प्राणी चला है, न एक पतवार से नाव चलती है; दोनों पतवार चाहिए। कोई विरोध नहीं है। और जिन्होंने तुमसे कहा है विरोध है, उन्होंने गलत कहा है। और गलत कहने का कारण यही है कि उन्होंने भी इस महासमन्वय को नहीं जाना। या तो वे बुद्धि से घिरे हुए लोग होंगे, जिनके पास कोरे विचार हैं, शुष्क विचार हैं, तर्क हैं, लेकिन हृदय का कोई नृत्य घटित नहीं हुआ है; और या फिर वे हृदय के लोग होंगे, सीधे-सादे; नाच तो सकते हैं, समझ नहीं है।

उस घड़ी को परम सौभाग्य की घड़ी मानना, जब तुम समझपूर्वक नाच सको। उस घड़ी को परम सौभाग्य मानना, जब तुम विवेकपूर्वक प्रेम कर सको। और परमात्मा ने तुम्हें जो भी दिया है, उसमें किसी का भी अस्वीकार मत करना; क्योंकि उतने ही अंश में तुम पंगु हो जाओगे। तुम पूरे हो, सिर्फ संयोग बिठाना है। वीणा रखी है, तार पड़े हैं; लेकिन तारों को वीणा पर जोड़ना है, तारों को कसना है, साज बिठाना है। तुम्हारे भीतर सब मौजूद है, सिर्फ संयोग मौजूद नहीं है। उस संयोग का नाम ही साधना है कि तुम्हारे भीतर की वीणा और तार मिल जाएं।

सूफी कहते हैं, एक आदमी भूखा मर रहा था। आटा था घर में, जल भी था, चूल्हा भी था, ईंधन भी था; लेकिन उस आदमी को पता नहीं कि कैसे आटा गूंथे, कैसे आग जलाए, कैसे आग पर रोटी सेंके। सब था--भूख भी थी, भोजन भी था--संयोग न बन सका। वह आदमी भूखा ही मर गया!

यह सभी आदमियों की कथा है। तुम्हारे पास सब संयोग है और तुम भूखे हो! ऐसा कुछ भी नहीं है जो तुम्हारे पास मौजूद नहीं है। परमात्मा किसी को इस तरह भेजता ही नहीं; सब साधन देकर भेजता है। लेकिन साधनों को बिठाना पड़ेगा। उनका ठीक अनुपात, ठीक समन्वय, ठीक संगीत बन जाए, तो तुम्हारे भीतर परमात्मा का प्रकाश हो जाएगा। न तो बुद्धि से घिरना, न हृदय से; दोनों तटों के बीच तुम्हारी चेतना बह सके नदी की धार की भांति; तुम गंगा बन जाना; फिर सागर दूर नहीं है। और जिद मत करना कि एक ही किनारे के सहारे बहेंगे; अन्यथा गंगा बह ही न पाएगी; दोनों ही किनारों का सहारा चाहिए। और अंत में दोनों किनारे छूट जाएंगे। लेकिन ध्यान रखना, वह अंत सहारे से ही आएगा।

परम अवस्था में, परम सिद्धावस्था में, न तो भक्ति रह जाती है, न ज्ञान। जब नदी सागर में गिरती है तो फिर कोई भी किनारा नहीं रह जाता, फिर तो नदी सागर हो गई।

इसलिए तीन तरह के लोग संसार में हैं।

एक, जिन्होंने बुद्धि को पकड़ लिया--दार्शनिक, तात्विक। वे बाल की खाल ही निकालते रहते हैं। तर्क की सूखी रेत उनके जीवन में भर जाती है; सोचते बहुत हैं, पहुंचते कहीं भी नहीं।

दूसरे हार्दिक लोग हैं--गाते बहुत हैं, नाचते बहुत हैं। लेकिन सब गाना-नाचना विवेकरहित है; विक्षिप्तता के करीब ज्यादा है, विमुक्ति के करीब नहीं। एक तरह का पागलपन है, एक तरह का नशा है। जिनके पास विवेक नहीं, होश नहीं, उनके लिए धर्म, हृदय एक तरह की शराब है।

फिर तीसरे तरह के लोग हैं, जिन्होंने दोनों का उपयोग कर लिया; और उपयोग करके दोनों के पार हो गए।

उस महा अतिक्रमण की आकांक्षा रखो। उस महा अतिक्रमण की अभीप्सा करो। उस तीसरे बिंदु पर पहुंच जाने का लक्ष्य रखो।

सागर में गिरना है गंगा को, तट दोनों छोड़ देने हैं। लेकिन जल्दी मत करना; सागर तक तो तट के सहारे ही पहुंचना होगा; पहुंचते ही फिर तटों का त्याग हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः धर्म सांसारिक सुखों को अस्थिर और क्षणभंगुर बता कर उसके प्रति हममें वैराग्य पैदा करते हैं। लेकिन क्या उनकी वही क्षणभंगुरता उनके आकर्षण का कारण भी नहीं है?

निश्चित ही, ऐसा ही है; क्षणभंगुरता ही आकर्षण का कारण है। और धर्म जीवन को क्षणभंगुर बता कर वैराग्य पैदा नहीं करते हैं। धर्म तो कहते हैंः जो भी क्षणभंगुर है उसके पीछे दुख आएगा। क्षणभंगुरता नहीं है कारण वैराग्य का, क्षणभंगुरता के पीछे दुख छाया की तरह आता है। दुख कारण है वैराग्य का। क्षणभंगुरता तो आकर्षित करती है, बुलाती है। जितना जल्दी जीवन भागा जाता है, उतना ही मन होता है--भोग लो जल्दी! अब गया, अब गया। कब उठ जाएंगे, पता नहीं। तो भोग लो। जितना ज्यादा भोग सको, भोग लो। जितनी त्वरा से जी सको, जी लो। एक क्षण भी खाली न जाए, चूस लो। एक-एक क्षण की पूरी संभावना को भोग लो।

क्षणभंगुरता आकर्षण है। मौत आ रही है, इसीलिए तो जीवन को हम पकड़ते हैं। अगर मौत आती ही न हो, कौन जीवन को पकड़ेगा? अगर सुख आते हों और कभी जाते ही न हों, कौन चिंता करेगा? आकर्षण का कारण क्षणभंगुरता है। जो चीज जितने जल्दी विलीन हो जाती है, उतनी कीमती मालूम होती है। पत्थर पड़ा है, उसकी उतनी कीमत नहीं है; पास ही फूल खिला है, फूल की बड़ी कीमत है। सुबह खिला है, सांझ खो जाएगा। देख लो, रस ले लो; आंखों को भर लो, तृप्त कर लो। क्योंकि जो खिला है वह मुरझाने की राह पर चल ही पड़ा है। देर नहीं लगेगी, सूरज मध्य आकाश में आ गया है। आधा जीवन तो फूल का जा ही चुका है, कुम्हलाना शुरू हो गया है। इसीलिए तो सौंदर्य में इतना आकर्षण है। अगर सौंदर्य सदा रहता हो, कौन चिंता करेगा?

एक मजे की बात हैः कुरूपता ज्यादा स्थायी है सौंदर्य से। कुरूप व्यक्ति जीवन भर कुरूप बना रहता है, सुंदर व्यक्ति जीवन भर सुंदर नहीं होता। कुछ क्षण होते हैं जीवन के, युवा अवस्था के, जब सुंदर होता है; फिर कुम्हला जाता है। और क्या तुमने ख्याल किया--जितना सुंदर व्यक्ति हो, उतने जल्दी कुम्हला जाता है! जितना कोमल फूल होगा, उतने जल्दी कुम्हला जाएगा।

दौड़ो, भागो, जल्दी करो! कहां मंदिरों में बैठे भजन-कीर्तन कर रहे हो। भोग लो! भजन-कीर्तन पीछे भी हो जाएगा। और दूसरा ही नहीं बदल रहा है, तुम्हारी भोगने की क्षमता भी प्रतिपल क्षीण होती चली जा रही है। जल्दी करो, मन कहे चला जाता है।

निश्चित ही क्षणभंगुरता आकर्षण का कारण है। अगर चीजें शाश्वत होतीं, कौन चिंता करता?

शायद इसीलिए तो तुमने परमात्मा की चिंता नहीं की है--शाश्वत है, जल्दी भी क्या है? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, अगले जन्म में नहीं तो और आगे--परमात्मा खो न जाएगा, जल्दी क्या है? जब भी जाओगे, उसे अपने घर में ही पाओगे। लेकिन ये जीवन के क्षणभंगुर फूल, यह आंखों का सौंदर्य, ये चेहरों की लालिमा, यह युवावस्था, यह तुम्हारे भोगने की क्षमता--यह सब टूटी जा रही है, भागी जा रही है। देर मत करो, मन कहता है।

निश्चित ही क्षणभंगुरता आकर्षण का कारण है। जो भी शाश्वत है, उसमें आकर्षण नहीं रह जाता। जो है ही, और सदा ही है, उसमें आकर्षण का क्या कारण है! सपने ज्यादा सुंदर लगते हैं। अभी आंख खुलेगी और टूट जाएंगे।

धर्म जब तुमसे कहता है कि क्षणभंगुर है जीवन, तो क्षणभंगुर बता कर तुम्हें वैराग्य नहीं लाना चाहता। क्षणभंगुर कह कर यह इशारा करना चाहता है कि क्षण भर के बाद फिर क्या करोगे? क्षण भर नाच लोगे, फिर रोओगे। क्षणभंगुर है अगर जीवन; भोग लोगे क्षण भर, फिर पीछे पछताओगे। चुक जाओगे व्यर्थ की दौड़ में। तितलियों के पीछे जैसे बच्चे दौड़ रहे हैं, ऐसे छोटे-छोटे भोगों के पीछे दौड़ते-दौड़ते थकोगे, गिर जाओगे, मौत समा लेगी तुम्हें। और यह समय जो तुमने क्षणभंगुर की तलाश में गंवाया, उसमें तुमने पाया तो कुछ भी नहीं। क्योंकि पाने के पहले ही चीजें कुम्हला जाती हैं; हाथ में आते-आते ही फूल मुर्दा हो जाते हैं; घर लाते-लाते ही सुख दुख में रूपांतरित हो जाता है।

वैराग्य का उदबोधन दुख के कारण है। धर्म कहता है, देखने की कोशिश करो कि जहां तुम्हें एक क्षण को सुख दिखाई पड़ता है, उसके पीछे अनंत दुख भरा है। और तुम भी इसे भलीभांति जानते हो। जब भी तुमने सुख पाया, पीछे दुख आया है; जब भी तुम प्रसन्न हुए, पीछे आंख आंसुओं से भरी है; जब भी तुम इतराए, तभी तुम गिरे हो; और जब भी तुमने सोचा था सौभाग्य का क्षण आ गया, उसके पीछे ही दुर्भाग्य की रात्रि शुरू हो गई है।

धर्म कहता है, अगर ऐसा सुख चाहिए हो जो कभी खोता नहीं और कभी दुख में रूपांतरित नहीं होता, तो सनातन को खोजो, शाश्वत को खोजो; क्षणभंगुर से जागो। सपनों में खोया गया समय, खोया गया समय है। सत्य को खोजो।

सत्य की परिभाषा क्या है? सत्य की इतनी ही परिभाषा है कि जो सदा था, जो सदा है और सदा रहेगा। असत्य की इतनी ही परिभाषा है कि जो कल नहीं था, अभी है, कल फिर नहीं हो जाएगा। असत्य का अर्थ है, दो नहीं के बीच थोड़ी देर को होना है; दो न होने के बीच थोड़ी देर को होने का भ्रम है। थोड़ा सोचो, जब दोनों तरफ नहीं है, तो बीच में हो कैसे सकेगा!

इसलिए शंकर संसार को माया कहते हैं।

माया का मतलब यह हैः कल नहीं थी, आज है, कल फिर नहीं हो जाएगी। तो जो दो कोनों पर नहीं है, वह बीच में हो नहीं सकती, सिर्फ दिखाई पड़ती होगी, भास होता होगा। क्योंकि "नहीं" से "है" कैसे पैदा हो सकता है? और जो "है", वह फिर "नहीं" में कैसे खो सकता है?

तुम नहीं थे एक दिन। जन्म के पहले तुम कहां थे? मृत्यु के बाद तुम कहां रहोगे? थोड़ी सी देर का सपना है। आंख लगी, सपना देख लिया है; आंख खुलते ही खो जाएगा।

सहजो ने कहा हैः जगत तरैया भोर की। जैसे सुबह का तारा होता है, आखिरी--अब डूबा, तब डूबा। डबडबाता है। तुम देखते ही रहोगे और देखते ही देखते खो जाएगा।

जगत तरैया भोर की--ऐसा सारा जीवन है।

महावीर ने कहा हैः जैसे घास के पत्ते पर ओस की बूंद--ऐसा जीवन है।

घास के पत्ते पर ओस की बूंद को कभी गौर से देखा? अब ढलकी, तब ढलकी। तुम्हारे देखते-देखते ही ढल जाएगी; हवा का जरा सा झोंका काफी है। सूरज का निकलना--भाप बन जाएगी--काफी है। जरा सा धक्का, और गई। जब होती है, तब तो मोतियों को ईर्ष्या होती है। जब होती है बूंद ओस की, तब तो मोती भी शरमाते होंगे, झेंप जाते होंगे, ऐसी चमकती है। पर उसका होना क्या है? न जैसा है; हुई, न हुई, बराबर है।

जीवन क्षणभंगुर है तो सत्य नहीं हो सकता। तुमने जो भी जाना है, अगर वह जाना और फिर खो जाता है, वह सत्य नहीं हो सकता। वह मन की ही भावना रही होगी; वह मन की ही कल्पना रही होगी; वह तुम्हारा ही प्रक्षेपण रहा होगा। वैसी सच्चाई नहीं है, तुमने मान लिया होगा। वह तुम्हारी मान्यता है। मान्यता माया है। तुम्हारे भीतर की कामना को तुम जीवन के पर्दे पर आरोपित करके देखते चले जाते हो।

तुमने कभी ख्याल किया--एक स्त्री बहुत सुंदर लगती है या एक पुरुष बहुत सुंदर लगता है; चार दिन बाद वही स्त्री सुंदर नहीं लगती, वही पुरुष सुंदर नहीं लगता! क्या हो गया? वही स्त्री है, वही पुरुष है! चार दिन पहले तुमने अपनी कोई कामना आरोपित कर ली थी, वह कामना टूट गई--पर्दा खाली है, अब उस पर कोई चित्र नहीं रहा।

तुम जो देखते हो अपने चारों तरफ, जब तक तुम मन में भरी कामनाओं से देखते हो, तब तक तुम वही नहीं देख सकते जो है; तब तक तुम वही देखते रहोगे जो तुम देखना चाहते हो। शुद्ध आंख वही देखती है जो है, अशुद्ध आंख वही देख लेती है जो देखना चाहती है। तुम सौंदर्य की तलाश में हो, तो तुम सौंदर्य देख लोगे। अपनी-अपनी व्याख्या है जीवन। व्याख्या के कारण जीवन माया है।

मुल्ला नसरुद्दीन दवाएं बनाता है और बेचता है। एक पैकेट पर उसने लिख रखा थाः फायदा न होने पर दाम वापस। मैं उसकी दुकान पर बैठा था। एक आदमी आया, वह बड़ा नाराज था। उसने कहा, महीना भर हो गया दवा फांकते-फांकते, कोई फायदा नहीं हुआ। दाम वापस चाहिए!

नसरुद्दीन ने कहा कि पैकेट पर लिखा हैः फायदा न होने पर दाम वापस। तुम्हें न हुआ हो, हमें तो फायदा हुआ है।

अपनी-अपनी व्याख्या है। जीवन को तुम वैसा ही करके देखते हो, जैसा तुम देखना चाहते हो। शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं; सत्यों के अर्थ बदल जाते हैं। तुम अपने आस-पास अपनी ही मान्यताओं का एक संसार खड़ा कर लेते हो, फिर तुम उसी संसार में जीते हो। और आदमी अपने ही कारण खोजता चला जाता है, और कारणों के थेगड़े लगाए चला जाता है, ताकि मान्यताएं टूट न जाएं, फूट न जाएं; जोड़-तोड़ बिठाता रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बाजार में किसी से झगड़ा हो गया। वह आदमी बहुत नाराज था और उसने कहा, एक ऐसा झापड़ा मारूंगा--नसरुद्दीन को कहा--कि बत्तीसों दांत जमीन पर गिर जाएंगे, बत्तीसी नीचे गिर जाएगी।

मुल्ला नसरुद्दीन और जोश में आ गया, उसने कहा कि तूने समझा क्या है! अगर मैंने झापड़ा मारा तो चौंसठों दांत नीचे गिर जाएंगे।

एक तीसरा आदमी पास में खड़ा था, उसने कहा, भई बड़े मियां, इतना तो ख्याल रखो कि चौंसठ दांत आदमी के होते ही नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मुझे पता था कि तू भी बीच में कूद पड़ेगा, इसलिए चौंसठ। एक ही झापड़े में दोनों के गिरा दूंगा।

आदमी अपनी... तुमसे भूल भी हो जाए, तो भी तुम भूल स्वीकार नहीं करते। तुम अपनी भूल के लिए भी कारण खोज लेते हो, तर्क खोज लेते हो।

भूल को स्वीकार करना बड़ा साहस है। और जिसने भूल को स्वीकार कर लिया, धीरे-धीरे भूलें तिरोहित हो जाती हैं।

एकस्त्री के तुम प्रेम में हो। तुम बड़ा सपना बांधते हो, स्वर्ग निर्मित करते हो, बड़ी कविताएं पैदा होती हैं--और तुम सोचते हो, बस, अब स्वर्ग मिल गया। चार दिन में स्वर्ग उजड़ जाता है! तब तुम यह नहीं देखते कि मैंने कोई भूल की थी। तब तुम देखते हो--यह स्त्री धोखा दे गई। तुम यह नहीं देखते कि मेरी मन की धारणा टूटी! तुम यह नहीं देखते कि मन की धारणा टूटती ही, सुबह की ओस थी, भोर की तरैया थी, तुम यह नहीं देखते। तुम देखते हो--यह स्त्री धोखा दे गई; यह स्त्री ही गलत थी; दूसरी स्त्री खोजेंगे। फिर दूसरी स्त्री खोजते हो! फिर वही आरोपण! फिर वही भूल! फिर वही नशा! फिर वह भी चार दिन में टूट जाता है, तब भी तुम जागते नहीं।

महाभारत में बड़ी प्राचीन, बड़ी मीठी कथा है कि जब पांडव जंगल में अज्ञातवास पर हैं, भटकते रहे हैं दिन में--दोपहरी--पानी नहीं मिला। सांझ एक भाई खोजने निकला, झील मिल गई। लेकिन जब वह झील में पानी भरने कोझुका, तो आवाज आई--रुको! जब तक मेरे प्रश्न का उत्तर न दो, तब तक पानी न भर सकोगे। कोई यक्ष उस झील पर कब्जा किए था। पूछा, क्या है तुम्हारा प्रश्न? यक्ष ने कहा, अगर उत्तर न दिया या उत्तर गलत हुआ, तो तत्क्षण मृत हो जाओगे। अगर उत्तर दिया, तो जल भी मिलेगा और अनंत भेंट भी दूंगा। प्रश्न था कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा सत्य क्या है? जो उत्तर दिया--जो भी दिया हो--वह ठीक नहीं था। एक भाई गिरा, मृत हो गया। ऐसे चार भाई एक के बाद एक गए। अंत में युधिष्ठिर गए कि हो क्या रहा है! चारों भाइयों को मरे हुए पाया। यक्ष की आवाज आई--सावधान! पहले मेरे प्रश्न का उत्तर, अन्यथा वही होगा जो इनका हुआ है। पानी एक ही शर्त पर भर सकते हो, वह मेरा ठीक उत्तर मिल जाए। क्योंकि उसी उत्तर पर मेरी मुक्ति निर्भर है। जिस दिन मुझे ठीक उत्तर मिल जाएगा, उस दिन मैं भी मुक्त हो जाऊंगा; यह मेरा बंधन यक्ष होने का टूट जाएगा। प्रश्न हैः मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा सत्य क्या है? युधिष्ठिर ने कहा, यही कि चाहे कितने ही अनुभव मिलें, मनुष्य सीख नहीं पाता। यक्ष मुक्त हो गया। चारों भाई पुनरुज्जीवित हो गए। उसकी प्रसन्नता में, मुक्ति की प्रसन्नता में उसने चारों को पुनरुज्जीवन दिया।

मनुष्य को कितने ही अनुभव हो जाएं, सीख नहीं पाता। एक स्त्री से छूटता है, दूसरी! दूसरी से छूटता है, तीसरी! एक उपद्रव मिटता है, दूसरा! एक सफलता का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तो दूसरा! एक दौड़ बंद नहीं हो पाती कि दूसरी शुरू कर देता है, दौड़ से नहीं मुक्त होता। एक वासना गिर नहीं पाती कि दस खड़ी कर लेता है। वासना की भ्रांति नहीं दिख पाती। और हर चीज के पीछे अपने तर्क खोज लेता है, अपने कारण खोज लेता है। और कभी यह नहीं देखता कि भूल मेरी होगी। सदा भूल किसी और पर थोप देता है। निश्चिंत होकर फिर भूल करने में लग जाता है।

दूसरे पर भूल थोपना, भूल को और-और करने की व्यवस्था है। जब भी तुम किसी को कहते हो कि तुम जिम्मेवार हो, तभी तुम अपनी जिम्मेवारी से इनकार कर रहे हो। और वही जिम्मेवारी तुम्हें जगा सकती थी; क्योंकि उसी जिम्मेवारी के क्षण में तुम्हें दिखाई पड़ सकता था कि मैं भूल कर रहा हूं।

भूल किसी स्त्री में नहीं है, न किसी पुरुष में है; भूल उस कामना और कल्पना में है जो तुम किसी स्त्री या पुरुष पर आरोपित करते हो। वह क्षणभंगुर है; वह कामना टूटेगी।

जरा सोचो तो, मन का एक विचार तुम कितनी देर तक थिर रख सकते हो? भोर की तरैया भी थोड़ी ज्यादा देर टिकती है। ओस का कण भी कभी-कभी देर तक टिक जाता है। लेकिन तुम अपने मन में एक विचार को कितनी देर टिका सकते हो? क्षण भर है, और गया। पकड़ो तो भी पकड़ में नहीं आता, मुट्ठी खाली रह जाती है। दौड़ो तो भी कहीं खबर नहीं मिलती--कहां गया। हवा के झोंके की तरह आता है और खो जाता है। ऐसे मन के आधार पर तुम जो संसार में जीते हो, वह जीवन क्षणभंगुर है।

संसार क्षणभंगुर है, ऐसा मत समझ लेना। वह तो सिर्फ कहने का एक ढंग है। संसार क्षणभंगुर नहीं है। संसार तो तुम नहीं थे, तब भी था; तुम नहीं रहोगे, तब भी रहेगा। संसार तोशाश्वत है। लेकिन तुम जो संसार बना लेते हो अपने ही मन के आधार पर, वह क्षणभंगुर है। वस्तुतः संसार तो है ही नहीं, परमात्मा है। परमात्मा के पर्दे पर तुम जो अपनी कामना के चित्र बना लेते हो, वे संसार हैं। और उस संसार में दुख ही दुख है।

रोज तुम्हें दुख मिलता है, फिर भी तुम कल के सुख की आशा में जीए चले जाते हो। कितनी बार तुम गिरते हो, फिर उठ-उठ कर खड़े हो जाते हो। कितनी बार जीवन तुम्हें कहता है कि तुम जो खोज रहे हो वह मिलेगा नहीं, लेकिन तुम कोई न कोई बहाना खोज लेते हो--कोई और भूल हो गई, कोई और गलती हो गई--अब की बार सब ठीक कर लेंगे, अब ऐसी भूल न हो पाएगी।

मैंने सुना है, कारागृह से एक कैदी मुक्त हुआ। तेरहवीं बार कारागृह में बंद हुआ था। मुक्त करते क्षण में जेलर को भी दया आ गई। उसकी आधी जिंदगी ऐसे ही जेल में बीत गई। उसने कहा, अब तो समझो! अब तो कुछ ऐसा करो कि जेल आना न हो!

उसने कहा, कोशिश तो हर बार करते हैं, फिर-फिर आना हो जाता है। मगर अब की बार--आप ठीक कह रहे हैं--अब की बार फिर न आऊंगा।

जेलर बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा कि हम प्रसन्न हैं।

लेकिन वह कैदी बोला कि आपकी प्रसन्नता से लगता है आप समझे नहीं। मैं यह कह रहा हूं कि अब तक जो भूलें करके मैं पकड़ जाता था, अब न करूंगा। चोरी न करूंगा, यह मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन जिन कारणों से मैं पकड़ जाता था, वे कारण अब न दोहराऊंगा। और तेरह बार अनुभव होते-होते अब ऐसा कोई कारण नहीं बचा है, जिसे मैंने समझ न लिया हो। चोरी तो करूंगा, लेकिन अब भूल-चूक बिल्कुल न होगी।

चोरी भूल-चूक नहीं है, भूल-चूक तो उन भूलों में है जिनके कारण चोरी पकड़ जाती है। जेल तुम जिनको भेजते हो, वे वहां से और निष्णात अपराधी होकर वापस आ जाते हैं। क्योंकि वहां और दादा-गुरु मिल जाते हैं, और भी पुराने घाघ। उनसे काफी सोच-समझ कर, विचार-विमर्श करके, अनुभव से सीख कर, शिक्षा लेकर, गुरुमंत्र पाकर वापस लौट आते हैं। फिर वही करते हैं। चोरी भूल नहीं है, ऐसा लगता है; भूल पकड़े जाने में है।

तुम भी सोचो--अगर तुम कुछ ऐसी तरकीब पा जाओ कि तुम पकड़े न जा सको, फिर तुम चोरी करोगे या नहीं? तुम्हारा मन साफ कहेगाः फिर करने में कोई बुराई ही नहीं है। चोरी में थोड़े ही बुराई है, पकड़े जाने में बुराई है। और जब तक तुम ऐसा समझ रहे हो, तब तक तुम दुख में जीओगे।

पकड़े जाने में दुख नहीं है, चोर होने में दुख है। चोरी करने में दुख है, पकड़े जाने में दुख नहीं है। मगर जब तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि मेरे होने के ढंग में भूल है, तब तुम पाओगे कि दुख मेरे होने के गलत ढंग से पैदा

होता है। यही अर्थ है सारे कर्म के सिद्धांत का, और कुछ अर्थ नहीं है। इतना ही अर्थ है कि तुम दुख पाते हो तो तुम्हारे अपने ही कर्मों के कारण; तुम सुख पाते हो तो भी अपने ही कर्मों के कारण।

और अगर तुम आनंद पाना चाहते हो, तो अकर्म की दशा चाहिए--जहां न सुख रह जाए, न दुख; जहां परम शांति हो जाए; जहां तुम दोनों के पार हो जाओ; जहां तुम्हारे भीतर का संतुलन परिपूर्ण हो जाए, जैसे कि तराजू के दोनों पलड़े बराबर एक रेखा में आ जाएं--ऐसा तुम्हारे भीतर जब सुख और दुख दोनों के पार होने की क्षमता आ जाए, तब तुम महा आनंद को उपलब्ध होते हो।

क्षणभंगुर कह कर धर्म तुम्हें संसार से वैराग्य पैदा नहीं करवाता, क्षणभंगुर कह कर तो इतना ही कहता है कि पीछे दुख आ रहा है। क्षण भर के सुख में मत भूलो--यह दुख आया, यह आया। इधर सुख प्रवेश किया कि दूसरे दरवाजे से दुख प्रवेश कर ही गया है; देर-अबेर दुख से मिलन हो जाएगा।

क्षणभंगुर का तो आकर्षण है, दुख का आकर्षण तो नहीं है। अगर तुम्हें दुख दिखाई पड़ने लगे हर सुख के पीछे, तो एक क्रांति घटित होगी--तुम दुख से ही मुक्त न होना चाहोगे, तुम सुख से भी मुक्त होना चाहोगे। यदि हर सुख के पीछे दुख अनिवार्यतया आता ही है, तो फिर दुख से क्या छूटना है, सुख से छूटना है!

इतना ही फर्क है संन्यासी में और गृहस्थ में। गृहस्थ दुख से छूटना चाहता है और सुख को पकड़ना चाहता है; संन्यासी समझ लिया कि हर सुख के पीछे दुख है। वह अब दुख से ही नहीं छूटना चाहता, सुख से भी छूटना चाहता है।

और जो दोनों से छूटना चाहता है, वह छूट सकता है; जो एक से छूटना चाहता है, वह नहीं छूट सकता। यह तो ऐसे ही है जैसे कि तुम्हारे हाथ में एक सिक्का है और तुम उसके एक पहलू से छूटना चाहते हो और दूसरे पहलू को बचाना चाहते हो। तुम जो बचाओगे, उसमें पूरा सिक्का बच जाएगा। या तो पूरा बचेगा या पूरा छोड़ना पड़ेगा। या तो सुख-दुख दोनों जाएंगे या सुख-दुख दोनों रहेंगे। ऐसी स्पष्टता जब तुम्हारे जीवन में फलित हो जाएगी--तो वैराग्य; तो संन्यास।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि स्व को विसर्जित कर देने पर समूचा अस्तित्व रक्षा करने लगता है। फिर उस फकीर की अंग्रेज सिपाहियों के द्वारा हत्या क्यों कर दी गई जो सर्वत्र निराकार परमात्मा के दर्शन करता था?

हत्या तुम्हें दिखाई पड़ती है, उसे दिखाई नहीं पड़ी थी। और तुम्हें दिखाई पड़ती है, क्योंकि तुम भ्रांत हो। उसे तो यही दिखाई पड़ा कि उस भाले में परमात्मा आया। उसे तो यही दिखाई पड़ा कि वह मृत्यु परमात्मा का साक्षात्कार है। अस्तित्व ने उसकी इतनी रक्षा की कि मृत्यु भी उसे मृत्यु न रही, मृत्यु भी उसे परम आनंद का द्वार हो गई। तुम्हें लगता है वह मिट गया।

जैसे गंगा सागर में गिरती है तो तुम्हें लगता है कि मिट गई। गंगा से पूछो। गंगा कहेगीः मिट गई? सागर हो गई! गंगा कहेगीः मिटने का इसके पहले भय था, वह भय मिट गया। इसके पहले दो किनारों में बंधी बड़ी संकीर्ण थी। मिटना हो सकता था। सीमा थी; तो मृत्यु हो सकती थी। अब असीम हो गई हूं, अब कोई मृत्यु नहीं है। गंगा सागर हो गई।

उस संन्यासी से पूछो। उसने तो उस सिपाही में भी, उस हत्यारे में भी परमात्मा को देखा। उस भाले में भी परमात्मा का तीर ही हृदय में आया और लगा। मौत तुम्हें दिखाई पड़ी, उस संन्यासी को दिखाई नहीं पड़ी। उसने तो परम जीवन को ही पाया।

तुम पूछते हो कि आपने कहा, स्व को विसर्जित कर देने पर समूचा अस्तित्व रक्षा करने लगता है... ।

तुम्हारी रक्षा नहीं करेगा। और रक्षा पाने के लिए ही अगर तुमने स्व को विसर्जित करने की कोशिश की, तो वह विसर्जन भी सच्चा नहीं होगा--हो नहीं पाएगा। विसर्जन का अर्थ ही यह होता है कि अब रक्षा करने को हमारे पास कोई भी न बचा जिसकी रक्षा की जानी चाहिए। अगर तुमने सोचा कि मेरी रक्षा करे परमात्मा, इसलिए मैं समर्पण करता हूं, तो तुम समर्पण नहीं कर रहे, सिर्फ परमात्मा को सेवा में नियुक्त कर रहे हो।

समर्पण का तो अर्थ ही यह होता है कि अब मैं नहीं हूं, तू है। अब मेरी रक्षा का क्या सवाल है! अब तो मैं एक कोरा आकाश हूं, एक सूना गृह हूं। अब तो मिटने को कुछ बचा ही नहीं, मिटेगा कैसे? मैं पहले ही मिट गया हूं। समर्पण का अर्थ होता हैः मैं मिटा, अब तुझे मिटाने की जरूरत न पड़ेगी; वह कष्ट मैं तुझे न दूंगा, वह मैं अपने ही हाथ से कर लेता हूं।

समर्पण वास्तविक अर्थों में आत्महत्या है--वास्तविक अर्थों में। जिसको तुम आत्महत्या कहते हो वह आत्महत्या नहीं है, वह तो केवल शरीरघात है। आत्मा थोड़े ही मरती है, शरीर भर गिर जाता है, नया शरीर मिल जाता है। लेकिन समर्पण वस्तुतः आत्मघात है। तुम अपने स्व को ही मिटा देते हो। तुम उससे कहते हो, अब मैं हूं ही नहीं, तू ही है। अब तुम्हारी रक्षा का क्या सवाल है? अब तुम हो कौन? तुम किसकी रक्षा चाहते हो?

और जब तुम बचे ही नहीं, तभी सारा अस्तित्व तुम्हारी रक्षा करता है। अब मिटाने का मजा भी कहां! अब मिटाने में सार भी क्या! जब तुम खुद ही मिट गए, तो मौत व्यर्थ हो गई।

उस दिन उस संन्यासी की छाती में जब छुरा भोंका गया, तो सिपाही को लगा होगा कि मारा, देखने वालों को लगा होगा कि मर गया; संन्यासी से पूछो। उसने तो यही उदघोष कियाः तत्वमसि श्वेतकेतु! तू भी वही है! उसने तो यही कहा कि तू किसी भी रूप में आए, मुझे धोखा न दे पाएगा; मैं तुझे पहचान ही लूंगा। तू आज भाला लेकर आया; आज तूने मौत का स्वांग रचा; मगर मैं तुम्हें पहचानता हूं; मैं तुझे देख रहा हूं। तू शत्रु होकर आए या मित्र होकर आए, मैं हर हालत में तुझे पहचान लूंगा। संन्यासी मरा नहीं, उसकी गंगा सागर हो गई।

लेकिन तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। तुम ठीक काम भी करते हो तो गलत कारणों के लिए करते हो; तुम्हारे कारण ठीक नहीं होते। तुम अगर मंदिर भी जाते हो तो गलत कारण से जाते हो। कोई जा रहा है नौकरी मांगने, कोई जा रहा है धन मांगने, कोई जा रहा है पत्नी मांगने, कोई जा रहा है बेटा मांगने। तुम कभी सोचते ही नहीं कि तुम बाजार के बाहर जा ही कहां रहे हो! यह कोई मंदिर में जाने का ढंग हुआ? यह तो बाजार पूरा तुम्हारे साथ मंदिर में जा रहा है। अगर तुम ऐसे हो तो मंदिर तुम्हें पवित्र न कर पाएगा, तुम मंदिर को अपवित्र करके लौट आओगे।

मंदिर कोई स्थान थोड़े ही है, भाव-दशा है। जब तक मांग है, तब तक कैसा मंदिर! जब तक क्षुद्र वस्तुएं जो बाजार में बिक रही हैं, उन्हीं को मांगने तुम परमात्मा के पास जाते हो, तो तुम शायद समझते हो कि परमात्मा कोई सुपर मार्केट है; छोटी-मोटी दुकानों में चीजें नहीं मिलीं, चलो मंदिर में मिल जाएंगी! संसार में नहीं मिलीं तो मोक्ष में मिल जाएंगी! लेकिन तुम मांगते क्या हो?

मंदिर वही पहुंचता है, जिसने समझ लिया कि मांगना व्यर्थ है; जिसने समझ लिया कि मांगने से मिलता ही नहीं कुछ सिवाय दुख के; जिसने समझ लिया कि कितनी ही चेष्टा करो, भिखमंगे का पात्र खाली ही रह जाता है, भरता नहीं।

मंदिर वही पहुंचता है जो धन्यवाद देने जाता है, मांगने नहीं। जिस दिन तुम्हारे भीतर से अहर्निश धन्यवाद उठने लगे--फूल खिलें और तुम्हारे भीतर से धन्यवाद उठे, आकाश से बादल बरसें और तुम्हारे भीतर धन्यवाद उठे, एक बच्चा किलकारी मारे और तुम्हारे भीतर धन्यवाद उठे, तुम श्वास लो और तुम्हारा होना ही इतना शांति का हो कि धन्यवाद उठे।

अहर्निश उठता हुआ धन्यवाद ही भज गोविन्दम है।

भजने की थोड़े ही जरूरत है। भज कर थोड़े ही कोई भज पाया है। अहर्निश भाव की बात है। जितना दिया है परमात्मा ने, वह तुम्हारी पात्रता से ज्यादा है--जिस दिन तुम ऐसा समझोगे, उस दिन मांगने जाओगे कि धन्यवाद देने जाओगे? जो तुम्हें मिला है, उसमें तुमने क्या अर्जित किया है? सब बरसा है प्रसाद की भांति। सब उसने बांटा है अपने अतिरेक से। उसके पास है, इसलिए दिया है; तुम्हारी पात्रता थी, इसलिए नहीं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि परमात्मा ने संसार क्यों बनाया?

उनको लगता है कि बनाने के पीछे जरूर कोई आकांक्षा होगी। क्योंकि हम तो कुछ नहीं बनाते बिना आकांक्षा के। साधारण आदमी छोटा सा घर भी बनाता है तो कारण से बनाता है। परमात्मा ने संसार क्यों बनाया? और ऐसा छोटे-छोटे लोगों की बात हो, ऐसा ही नहीं। जर्मनी का एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, वेजनर, किसी ने उससे पूछा कि तुमने इतना अनूठा संगीत पैदा किया--क्यों? उसने कहा, मैं दुखी था; मैंने मन बहलाने को, अपने को उलझाने को, अपने को व्यस्त रखने को यह सारा संगीत पैदा किया है। और वेजनर ने कहा कि मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा भी दुखी रहा होगा, इसलिए उसने संसार पैदा किया--उलझाने को।

वेजनर आदमी के संबंध में जो कह रहा है, वह सच है। आदमी कविता लिखता है घावों कोढांक लेने के लिए; गीत गाता है आंसुओं को छिपा लेने के लिए; मुस्कुराता है कि कहीं रोने न लगे; सड़क पर मस्ती से चलता है, क्योंकि भीतर की दीनता काटती है। भीतर तो कुछ नहीं है, कहीं दूसरों को पता न चल जाए; कहीं दूसरे इस रिक्तता को न जान लें, अन्यथा बड़ी बदनामी होगी। तो तुम हरेक को धोखा देने में लगे हो; मुस्कुराते हो। कोई तुमसे पूछता है--कहो, कैसे हो? तुम कहते हो, बड़े आनंद में हैं! तुमने कभी सोचा, तुम क्या कह रहे हो? बड़े आनंद में, और तुम?

मगर न कहो, ठीक नहीं मालूम पड़ता। कहना शिष्टाचार है। सच्चाई थोड़े ही कही जाती है; जो कहना चाहिए वही कहा जाता है; जो उचित है वही कहा जाता है, सत्य नहीं। हर आदमी मुखौटे लगाए हुए है, और इसके पीछे बड़े गहरे दुख और नरक को छिपाए हुए है। उस नरक को भुलाने के लिए हजार काम करने पड़ते हैं। कोई चित्र बनाता है।

पिकासो के चित्र देखो, जैसे दुख फैला है। पिकासो का बहुत प्रसिद्ध चित्र है--गोएर्निका। अगर तुम उसे आधा घंटा बैठ कर देखते रहो तो तुम पागल हो जाओ। जैसे पागलपन फैला हुआ है। जो भीतर है, वही तो बाहर फैल जाता है।

वेजनर ठीक कहता है आदमी के संबंध में कि दुख है, इसलिए आदमी सृजन करता है। लेकिन परमात्मा के संबंध में बात बिल्कुल गलत है; परमात्मा ने सृजन किसी कारण से नहीं किया है। इसलिए तो हम इस देश में इस सृजन को लीला कहते हैं।

लीला का अर्थ हैः अकारण। लीला का अर्थ हैः बस खेल। लीला का अर्थ है कि ऊर्जा इतनी ज्यादा है कि करो भी क्या! आनंद इतना ज्यादा है कि न बांटो तो करोगे क्या! ओवरफ्लो है। पानी इतना भर गया है झील में कि बाहर बह रहा है। कोई कारण से नहीं, इतना ज्यादा है कि बांटना ही पड़ेगा! फूल सुगंध से भरा है तो खुल

जाता है, गंध लुट जाती है। ऐसे ही परमात्मा लुटा है संसार में। ऐसे ही परमात्मा बहा है संसार में। इतना अतिरिक्त है उसके पास कि और कोई उपाय नहीं है।

सृजन आनंद है, दुख नहीं। लेकिन तुम धन्यवाद देने तक में कंजूस हो। तुम में वह इतना बहा है, तुम्हें उसने ऐसे-ऐसे अनूठे संभावनाओं के द्वार दिए हैं--तुम्हें आंख दी है कि तुम रूप देख सको, तुम्हें कान दिए हैं कि तुम संगीत सुन सको, तुम्हें हाथ दिए हैं कि तुम जीवन का स्पर्श कर सको, तुम्हें बुद्धि दी है कि तुम समझ सको, तुम्हें हृदय दिया है कि तुम हर्षोन्मत्त हो सको, तुम्हें जीवन दिया है ताकि तुम्हारा जीवन एक महोत्सव बन सके--लेकिन तुम धन्यवाद देने में भी कंजूस हो! तुम मंदिर में जाकर इतना भी नहीं कह सकते कि तूने इतना दिया है और बिना कारण! न देता तो हम शिकायत भी तो नहीं कर सकते थे। न बनाता तो हम किस अदालत में जाते कि हमें बनाया क्यों नहीं गया! तूने जो दिया है वह बहुत है, हमारी पात्रता कुछ भी नहीं।

प्रार्थना का अर्थ यही है, भज गोविन्दम का अर्थ यही है कि तुम अपने आनंद से भज रहे हो। तुम कह रहे हो, तूने इतना दिया कि हम तुझे धन्यवाद भी न दे सकें, तो बड़ी अशिष्टता होगी।

लेकिन तुम जब भी मंदिर जाते हो, तुम शिकायत करने जाते हो--कि लड़का बीमार है, अभी तक ठीक क्यों नहीं हुआ? कि नौकरी नहीं लग रही है लड़के की; और हम तेरी भक्ति करते रहे इतने दिन तक, सब बेकार गई? तू बहरा है? सुनता नहीं? तुम जब भी जाते हो मंदिर, शिकायत लेकर जाते हो। और जो शिकायत लेकर गया, वह कभी मंदिर नहीं पहुंचा; मांग लेकर गया, वह मंदिर के बाहर ही रहा। मांग के साथ भीतर जाने का उपाय ही नहीं है। भीतर तो केवल वे ही गए, जो धन्यवाद देने गए। तुम अगर समर्पण भी करोगे तो इसीलिए ताकि तुम्हारी रक्षा हो। तुम हो कौन, जिसकी रक्षा की जरूरत है? तुम परमात्मा को भी बॉडीगार्ड बनाना चाहते हो--कि वह भी एक बंदूक लिए तुम्हारे आस-पास खड़ा रहे, तुम्हारी रक्षा करे।

समर्पण का अर्थ ही यही है--कि बचाने योग्य मेरे पास है क्या? कुछ भी नहीं है! मैं अपनी शून्यता को तेरे चरणों में रखता हूं।

और जब तुम समर्पण करते हो, तब तुम्हारे मन में ऐसा भाव नहीं उठता कि मैंने कोई गजब का काम कर दिया। क्योंकि गोविन्द को तुम वही लौटाते हो जो उसने तुम्हें दिया था। तेरी वस्तु तुझे वापस। और तुम क्या करते हो? थोड़ा गंदा करके लौटाते होओगे, हो सकता है। क्योंकि बहुत धन्यभागी लोग ही हैं कबीर जैसे, जो कह सकते हैं कि ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, बहुत मुश्किल से। चादर पर थोड़े-बहुत दाग लग ही जाएंगे। तो जब तुम रखते हो परमात्मा के चरणों में अपने को, तो तुम कुछ यह थोड़े ही आशा रखते हो कि वह बड़ा प्रसन्न होगा और बड़े धन्यवाद देगा कि आपकी बड़ी कृपा कि आप आए। नहीं, उलटे तुम बड़ी दीनता अनुभव करोगे कि चादर मैली हो गई है। और जो तूने दिया था, वही तुझे लौटा रहे हैं; कुछ जोड़ तो पाए नहीं; कुछ हीरे-जवाहरात न भर पाए उस चादर में। इस घड़ी में सारा अस्तित्व तुम्हारी रक्षा करता है।

रक्षा मांगने के लिए समर्पण मत करना; समर्पण का अनिवार्य परिणाम है रक्षा।

चौथा प्रश्नः मेरे भीतर शून्यता इतनी सघन हो गई है कि अपनी ही दृष्टि में धूल से भी तुच्छ मालूम होता हूं। और जब कोई योग्यता न रही तो भरोसा नहीं आता कि इस रिक्त सिंहासन पर भगवान आकर विराजेंगे। इस बोध से जीवन असुरक्षित लगता है। लगता है कि न घर का रहा, न घाट का।

"मेरे भीतर शून्यता इतनी सघन हो गई है कि अपनी ही दृष्टि में धूल से भी तुच्छ मालूम होता हूं।"

अगर शून्यता सघन हो जाएगी तो मेरे होने का भाव ही विसर्जित हो जाएगा। फिर तुम ऐसा न कह सकोगे कि मेरे भीतर शून्यता सघन हो गई है; तुम इतना ही कहोगे कि शून्यता हो गई है, मेरे भीतर तुम न कह सकोगे। क्योंकि जब तक तुम हो, तब तक शून्यता नहीं हो सकती। तो तुम ही तो भरे हुए हो स्वयं को। और तुम कहते हो कि अपनी ही दृष्टि में धूल से भी तुच्छ मालूम होता हूं।

किसने तुम्हें कहा कि धूल तुच्छ है? यह निंदा तुम्हें किसने सिखाई?

धूल से ही बने हो, धूल में ही गिरोगे--और धूल तुच्छ है! आदमी का अहंकार अदभुत है। धूल को आदमी तुच्छ मानता है, क्योंकि वह पैरों में है।

लेकिन धूल ही तुम्हारा हृदय भी है और तुम्हारा मस्तिष्क भी। धूल ही तुम्हारे कण-कण में है, रोएं-रोएं में है। मिट्टी से ही आना हुआ है, मिट्टी में वापस लौट जाना होगा। मिट्टी मां है।

धूल से तुच्छ! यह तुच्छ और श्रेष्ठ की भाषा ही अहंकार की भाषा है। जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, उस दिन तुम्हें धूल के कण-कण में परमात्मा दिखाई पड़ेगा; धूल तुच्छ है--ऐसा नहीं। तब तो तुम्हें तुच्छ दिखाई ही न पड़ेगा, क्योंकि वही विराट, वही महिमावान सब तरफ मौजूद है, सब ढंगों में मौजूद है। तब तुम धूल को भी चूम लोगे और तुम उसी के चरण वहां पाओगे।

धूल तुच्छ है? यह कहीं न कहीं तुम्हारे भीतर का अहंकार बोल रहा है। शून्यता वगैरह कुछ अभी हुई नहीं, तुमने सोच लिया होगा। आदमी विचार करने में बड़ा कुशल है। शून्य ही हो जाए तो फिर कुछ बचता ही नहीं करने को।

और तुम पूछते होः "और जब कोई योग्यता ही न रही... "

योग्यता हो भी क्या सकती है? परमात्मा को पाने में योग्यता का कोई सवाल ही नहीं है। अगर परमात्मा भी योग्यता से मिलता हो, तो वह भी कोई सरकारी नौकरी हो गई। तो कबीर को न मिलता। बेपढ़े-लिखे, एक सर्टिफिकेट भी नहीं बता सकते। तो मोहम्मद को न मिलता। लिखना-पढ़ना भी मोहम्मद को नहीं आता। जब पहली दफे परमात्मा की गूंज मोहम्मद ने सुनी तो वे घबड़ा गए। वे कंपने लगे, बुखार आ गया। क्योंकि मोहम्मद ने कहा कि मैं और मेरे ऊपर परमात्मा की वर्षा! असंभव! कितने योग्य लोग पड़े हैं दुनिया में। मुझको चुना है--यह हो ही नहीं सकता! कोई भ्रांति हो गई मेरी। आवाज गूंजी--पढ़! मोहम्मद ने कहा, यह भी क्या पागलपन की बात! मैं पढ़ा-लिखा ही नहीं हूं! घर आ गए, कंबल ओढ़ कर सो रहे। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? सुबह भले-चंगे गए थे! कहा कि मुझे कोई भ्रांति हो गई है कि परमात्मा की आवाज गूंजी; नहीं, यह हो नहीं सकता, मेरी कोई योग्यता नहीं है।

यही योग्यता थी। जब तक तुम समझते हो तुम्हारी कोई योग्यता है, तब तक अयोग्य हो; तब तक बाधा है; तब तक अहंकार खड़ा है। योग्यता यानी अहंकार। तुम परमात्मा के मंदिर के सामने खड़े हो, न कि किसी एंप्लायमेंट एक्सचेंज के आगे। सर्टिफिकेट वगैरह काम नहीं आएंगे। वस्तुतः जितने सर्टिफिकेट लेकर जाओगे, भीतर प्रवेश मुश्किल हो जाएगा। वहां तो सिर्फ अयोग्य ही प्रवेश करते हैं।

मेरी बात को ठीक से समझ लेना। क्योंकि तुम इतनी भ्रांति में हो कि तुम अयोग्यता को भी योग्यता बना सकते हो। तुम कहोगे, तो मैं अयोग्य हूं--अभी तक परमात्मा नहीं मिला। तुम अयोग्यता को भी योग्यता बना सकते हो। नहीं, योग्यता को इनकार करने का अर्थ है--परमात्मा का दावा नहीं किया जा सकता कि तू क्यों नहीं मिला अब तक। दावेदारी में अहंकार है। नहीं मिला तो तुम जानोगे कि मिलने का कोई कारण भी नहीं है कि मुझे मिले। मिलेगा तो तुम नाचोगे अहोभाव से कि अकारण मिला, प्रसाद-रूप मिला।

योग्यता का तो अर्थ हैः तुम्हें अपने पर भरोसा है, परमात्मा पर नहीं। योग्यता का तो अर्थ है कि तुम उसे भी खरीदने को तत्पर हो। योग्यता का तो अर्थ है कि तुम कहते हो, मैंने अर्जित कर लिए हैं गुण, अब देर क्यों हो रही है? कितनी प्रार्थनाएं कीं, कितनी पूजा की, कितने दीप जलाए, कितनी ऊदबत्तियां फूंक डालीं, कितने फूल तेरे चरणों पर रखे, कितने उपवास किए, कितने ध्यान किए, कितना तप--सब कर चुका, अब तक तू नहीं आया?

बस "अब तक तू नहीं आया", उसमें ही तुम्हारा अहंकार घोषणा कर रहा है कि मैंने अर्जित कर लिया है और अन्याय हो रहा है। और ऐसों को भी मिल रहा है तू जिन्होंने कुछ भी नहीं किया। जिनका कोई दावा नहीं था उनको तू मिल गया और हमें नहीं मिल रहा है।

यह दावे में ही बाधा है। परमात्मा को पाने वाले वे ही लोग हैं, जिन्होंने सारे दावे छोड़ दिए हैं। जो कहते हैं, हम कुछ भी करेंगे, हमारे करने में क्या रखा है! हम जो भी करेंगे वह बहुत छोटा-मोटा होगा, हम छोटे-मोटे हैं। हम जो भी करेंगे वह साधारण होगा, हम साधारण हैं। हम जो भी करेंगे, उससे तुझे पाने का क्या संबंध बन सकेगा! यह तो ऐसा ही है हमारा करना, जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बांधना चाहे। छोटी मुट्ठी, विराट आकाश--बात ही फिजूल है।

परमात्मा तो तभी मिलता है, जब तुम अपनी व्यर्थता को, अपनी असहाय अवस्था को उसकी समग्रता में स्वीकार कर लेते हो। तब तुम एक खाली पात्र रह जाते हो जिसका कोई दावा नहीं है। जो परमात्मा के पीछे नहीं पड़ा है कि मिलो, मिलो! जो सिर्फ प्रतीक्षा करता है। क्योंकि यह कहना भी कि तू मिल, बड़ा अहंकार है।

तुम पूछते होः "और जब कोई योग्यता न रही तो भरोसा नहीं आता... "

अगर योग्यता न रही हो तो भरोसा तत्क्षण आ जाएगा। अभी भी थोड़ी योग्यता बाकी है। असल में यही जिसको तुम सोच रहे हो कि शून्यता सघन हो गई है, इसको तुमने योग्यता समझ लिया है। कि अब मैं धूल से भी तुच्छ हो गया--इसको तुमने योग्यता समझ लिया है। अब तुम बस राह देख रहे हो कि मिल जा, अन्यथा अन्याय हो रहा है! इतना मैं कर चुका और अभी तक तू नहीं आया, ज्यादती हो रही है।

ध्यान रखना, परमात्मा उतरता है केवल तुम्हारी शून्यता में। और यही प्रतीक है, लक्षण है। जब तुम परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तो क्षण भर की देर नहीं होती। शून्य हुए यहां और परमात्मा उतरा। ये दोनों युगपत घटती हैं घटनाएं।

इसलिए जिसे तुमने शून्यता समझा है, वह मन का ही ख्याल होगा। मन के ख्यालों से जरा सावधान रहना। मन बड़ा चालाक है; बड़ा कुशल है; बड़ा हिसाबी-किताबी है। वह जो भी करता है, बड़े गणित से करता है; खाता-बही रखता है--धर्म का भी। इस मन से थोड़े सावधान रहना।

यही मन तुमसे कहता है कि लगता है, न घर के रहे, न घाट के।

जरूरत भी क्या है कि घर के रहो कि घाट के? बीच में कौन सी बुराई है? लेकिन लगता है कि न घर के रहे, न घाट के--क्योंकि तुम सोचते होः न तो संसार मिला, न परमात्मा। यह मतलब है तुम्हारा। मतलब हम समझ गए। संसार पाने की आकांक्षा अभी भी भीतर दबी पड़ी है, इसलिए न घर के, न घाट के। अन्यथा बीच में ही स्वतंत्रता है। घर में भी बंधोगे, घाट पर भी बंधोगे। फिर गधा घर पर रहे कि घाट पर, इससे क्या फर्क पड़ता है? बीच में ही थोड़ी स्वतंत्रता है, वहीं से भागने का उपाय है; क्योंकि धोबी घाट पर भी बैठा है, घर में भी बैठा है।

नहीं लेकिन, मन में लगता है कि देखो इतना ध्यान किया, इतनी देर दुकान ही कर लेते तो कुछ पैसा ही कमा लेते; कि इलेक्शन ही लड़ लेते तो कुछ नेता ही हो जाते; कि सारी दुनिया कुछ किए जा रही है और हम ध्यान कर रहे हैं! और परमात्मा मिल नहीं रहा है और संसार खोया जा रहा है!

यह विचार ही इसलिए उठता है कि संसार में अभी लगाव बाकी है। अच्छा है लौट जाओ, बाजार में लौट जाओ। क्योंकि तुम्हारा संन्यास झूठा रहेगा; तुम्हारा ध्यान सच्चा नहीं हो सकता; अभी तुम धन से चुके नहीं, ध्यान सच्चा नहीं हो सकता। अभी धन में रस कायम है। अभी तुम ध्यान में उत्सुक हो गए हो, प्यासे नहीं हो। जिज्ञासा आ गई होगी, कौतूहल पैदा हुआ होगा--मुमुक्षा नहीं है।

इसलिए मैं इसी पक्ष में हूं कि बेहतर है तुम बजाय खाली बैठ कर और परमात्मा के प्रति अन्याय की धारणा तुम्हारे मन में पैदा हो, इससे बेहतर है तुम बाजार में लौट जाओ। अभी शायद ठीक समय नहीं आया। अभी पके नहीं तुम, अभी कच्चे हो। अभी तुम्हें और दुख झेलने पड़ेंगे, ताकि पको। अभी तुमने काफी दुख नहीं झेले।

जब कोई व्यक्ति जीवन में दुख ही दुख झेल लेता है और दुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पाता, तब फिर उसे फिक्र नहीं रह जाती; वह कहता है, परमात्मा मिले या न मिले, संसार में तो कुछ मिलने को नहीं है। एक बात तो तय हो गई कि संसार में कुछ पाने को नहीं है। रही दूसरी बात कि परमात्मा मिले या न मिले। लेकिन अब मिले या न मिले, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। संसार में लौटने का कोई सवाल नहीं रह गया है। वहां बात खत्म हो गई; वह द्वार बंद हुआ; वह सेतु हमने तोड़ दिया; वह सीढ़ी गिरा दी; अब उससे उतरने का कोई सवाल नहीं है।

पांचवां प्रश्नः शंकराचार्य स्त्री-पुरुष के शरीर में वैराग्य की भावना करने पर जोर देते हैं, परंतु आप तो यहां आश्रम में युवा-युवतियों के मुक्त साहचर्य का भी समर्थन करते से लगते हैं। इस पर कुछ कहें।

इसीलिए ताकि तुम पक सको। मैं संसार से तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता; मैं संसार से तुम्हें मुक्त करना चाहता हूं, तोड़ना नहीं चाहता। और तोड़ना और मुक्त होना, बड़ी अलग बातें हैं।

तोड़ना ऐसा है जैसे कच्चे फल को तोड़ो; और मुक्त होना ऐसा है जैसे पका फल गिर जाए। दोनों घटनाएं ऊपर से एक सी लगती हैं कि दोनों में ही फल वृक्ष से अलग होता है। लेकिन दोनों में बड़ा मौलिक अंतर है। कच्चे फल को तोड़ते हो--फल में भी टीस रह जाती है और वृक्ष में भी घाव छूट जाता है। पका फल तोड़ने की जरूरत ही नहीं होती--पका फल अपने से गिरता है, सहजता से गिरता है; न तो टीस रहती कोई, न पीछे वृक्ष की याद आती कि थोड़ी देर और रह जाते वृक्ष के साथ। पक ही गया, बात ही समाप्त हो गई; वृक्ष का काम पूरा हो गया। और न वृक्ष में कोई पीड़ा रह जाती। पका फल वृक्ष को पूरी तरह भूल जाता है, पीछे लौट कर नहीं देखता। और वृक्ष भी पके फल के गिरने पर निर्भार हो जाता है, घाव नहीं छूटता।

संसार से तोड़ने की मेरी तुम्हें आकांक्षा नहीं है; क्योंकि जिन-जिन को संसार से तोड़ा गया, वे बड़े गहरे में संसार से जुड़े रहे हैं।

संसार से मुक्त होना है, टूटना नहीं है। टूट कर जाओगे भी कहां? पत्नी है, बच्चे हैं, परिवार है, दुकान है--उसको छोड़ कर तुम जाओगे कहां?

और तुम कहीं भी जाओ, अगर दुकानदार मन में रह गया, तो तुम नई दुकान बना लोगे, उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। अगर स्त्री का रस मन में रह गया--पत्नी को छोड़ कर भाग जाओगे, इससे कोई अंतर न आएगा; कोई और स्त्री तुम्हारे मन को लुभा लेगी। अगर धन में रस है, और धन छोड़ दिया, तो क्या अंतर पड़ेगा? तुम किन्हीं और अर्थों में सिक्के जुटाने लगोगे। हो सकता है सिक्के त्याग के हों, तपश्चर्या के हों। लेकिन सिक्के सिक्के ही हैं। तुम दूसरा धन जोड़ने लगोगे। पहले तुम घोषणा करते फिरते थे--इतने रुपये हैं मेरे पास! अब तुम घोषणा करोगे--इतना त्याग है मेरे पास! मगर अकड़ वही रहेगी। रस्सी जल भी जाती है तो भी अकड़ नहीं जाती।

मैं तुम्हें संसार से मुक्त करना चाहता हूं, तोड़ना नहीं चाहता।

इस आश्रम में मैं तुम्हें जीवन से मुक्त करने की चेष्टा में संलग्न हूं। जीवन में रहते हुए जो मुक्त हो सकता है, वही मुक्ति है। पानी में तुम चलो और तुम्हारे पैर जल में न भीगें। कमल के पत्ते की भांति तुम हो जाओ; छुओ पानी को, लेकिन पानी तुम्हें न छू पाए।

पानी में ही रहो, फिर भी पानी से मुक्त--संन्यास की यह परम धारणा है। संन्यास राग के विपरीत वैराग्य नहीं है; संन्यास राग और विराग दोनों के पार वीतरागता है।

शंकर तुमसे जिस संन्यास की बात कर रहे हैं, वह वैराग्य है। मैं तुमसे जिस संन्यास की बात कर रहा हूं, वह वीतरागता है। शंकर का संन्यास तुम्हें बहुत दूर न ले जाएगा। शंकर के संन्यास के बाद भी, जिस संन्यास की मैं बात कर रहा हूं, वह तुम्हें खोजना ही पड़ेगा। शंकर का संन्यास यात्रा का प्रारंभ हो सकता है, अंत नहीं। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह अंत है।

मैं नहीं कहता कि तुम भागोस्त्री से--जागोस्त्री से! मैं नहीं कहता, धन छोड़ो--धन को समझो! उस समझ में ही मुक्ति है। धन ने तुम्हें पकड़ा कब है? तुमने ही पकड़ा है। तुमने ही पकड़ा है, वह तुम्हारी भाव-दशा है; वह तुम्हारा रस है। उस रस से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि जीवन का अनुभव तुम्हें बता दे कि वह रस संभव नहीं है, व्यर्थ है।

अगर जीवन के अनुभव से यह पता न चला, तो तुम सोचते रहोगे मन में--कि सब व्यर्थ है, संसार में क्या रखा है। लेकिन तुम जानते रहोगे मन के किसी कोने में कि कौन जाने, कुछ रखा ही हो। मैं तो छोड़ कर भाग आया। पता नहीं, मैंने भूल तो नहीं की!

मेरे पास संन्यासी आते हैं, जो जीवन भर से संन्यासी हैं, सत्तर-अस्सी साल की उम्र के हैं; वे कहते हैं, पीछे कभी-कभी शक भी आता है कि हमने जिंदगी ऐसे ही तो नहीं गंवा दी? क्योंकि परमात्मा तो मिला नहीं, और संसार भी हमने छोड़ दिया। एक संदेह मन को डिगाता है; डगमगाता है।

यह संदेह इसीलिए उठता है कि संसार का रस कायम था और छोड़ भागे। प्रभाव में आ गए। अनुभव से नहीं छूटा संसार, किसी के प्रभाव से छूट गया।

अब बुद्ध और शंकर जैसे लोग जब संसार में खड़े होते हैं, तो उनके प्रभाव की महिमा अनंत है। उनका आकर्षण व्यापक है, चुंबक की तरह वे हजारों लोगों को खींच लेते हैं। उनके जीवन में तो वीतरागता है। वे जब तुमसे कहते हैं, कुछ सार नहीं है स्त्री में या पुरुष में, या बच्चों में, या संसार में, तो वे ठीक ही कहते हैं। वे तो वृक्ष के पके फल हैं। लेकिन कच्चे फलों में उमंग आ जाती है। कच्चे फल सोचने लगते हैं, कोई सार नहीं है--छोड़ो! टूट कर गिर जाते हैं। तब शक पैदा होता है। क्योंकि पके फल की जो सुगंध है, वह भी उनसे नहीं उठती। पके फल

की एक सुगंध है, एक सुवास है--वह भी दूर, और वृक्ष से भी टूट गए। संबंध भी टूट गया पृथ्वी से और आकाश से जुड़े भी नहीं। त्रिशंकु की अवस्था हो गई।

यही तो पिछले प्रश्न का सवाल थाः न घर के, न घाट के। ऐसा बीच में अटक गए। यह बीच में अटकने की दशा बड़ी दुखदायी है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, यह बात ही छोड़ो। कहीं भागने की जरूरत नहीं--जहां हो, वहीं जागो। संसार को छोड़ने की फिक्र छोड़ो--परमात्मा को बुलाओ; परमात्मा को उतरने दो तुम्हारे अंतरतम में। जैसे ही उसकी किरणें तुममें उतरने लगेंगी, वैसे ही तुम पाओगे--पकना शुरू हो गए तुम। सूरज पकाता है फलों को, परमात्मा पकाएगा तुम्हें।

और जीवन से भागो मत, क्योंकि उसने जीवन दिया है तो जरूर इसके पीछे कुछ कारण होंगे। यह सिर्फ संयोग नहीं है, इसके पीछे पूरा संयोजन है; क्योंकि जीवन के अनुभव से गुजरे बिना, कभी कोई व्यक्ति मुक्त नहीं होता।

उपनिषदों का महावचन हैः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।

इससे ज्यादा क्रांतिकारी वचन मुझे दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं मिला। यह वचन बड़ा अनूठा है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने त्यागा, उन्होंने ही केवल भोगा। एक अर्थ।

दूसरा अर्थः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा।

और दोनों ही अर्थ बड़े बहुमूल्य और कीमती हैं। और दोनों अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा। क्योंकि जब तक तुमने भोगा ही नहीं, तुम त्यागोगे कैसे? त्याग की समझ कहां से आएगी? भोग की कीचड़ से ही उठेगा त्याग का कमल, कोई और उपाय नहीं है। इसलिए भोग की निंदा मत करना, क्योंकि कमल उसी से आएगा। भोग की निंदा मत करना, कीचड़ को छोड़ कर मत भागना, अन्यथा कमल से भी वंचित रह जाओगे। कीचड़ से ही कमल जागेगा, उठेगा। और कितना भिन्न है कमल कीचड़ से!

तुम्हारे बीच ही परमात्मा उठेगा, उसका कमल खिलेगा। कितना भिन्न है परमात्मा तुमसे!

पत्नी, बच्चे, दुकान, बाजार--इसी के बीच में किसी दिन उसकी अमृतधारा उतर आती है। तुम अपने को बस उसकी अमृतधारा के लिए शून्य करो।

छोड़ने की फिक्र छोड़ो, पाने की चेष्टा करो। छोड़ने पर जोर मत दो, पाने पर जोर दो। जब तुम्हारे हाथ में हीरे-जवाहरात उतरने लगेंगे, कंकड़-पत्थर तुम खुद ही फेंक दोगे। कंकड़-पत्थर फेंक देने से हीरे-जवाहरात उतर आएंगे, यह पक्का नहीं है। लेकिन हीरे-जवाहरात उतरने पर कौन पागल कंकड़-पत्थर लिए फिरता है? अपने आप छूट जाते हैं। और उस छूटने का सौंदर्य ही अलग है; उसका संगीत ही अलग है। क्यों? क्योंकि जब तुम ऐसे छोड़ देते हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता, तो छूटने की कोई रेखा भी तुम्हारे भीतर नहीं रह जाती, त्याग का कोई दावा भी पैदा नहीं होता।

तुम रोज सुबह कचरा झाड़ते हो घर का और बाहर फेंक देते हो। क्या तुम जाते हो कि जाकर अखबार वालों को खबर करें कि आज इतने कचरे का त्याग कर दिया? कचरे का कोई त्याग करता है? तुम जाओगे तो लोग हंसेंगे। वे कहेंगे, पागल हो गए? अगर कचरा ही था तो त्याग का क्या सवाल है! और अगर कचरा न था तो तुम पागल हो--त्यागा ही क्यों?

जब तुम त्याग की घोषणा करते हो, तब तुम यह कह रहे हो कि था तो धन, किसी के प्रभाव में आकर त्याग दिया। अभी तुम राजी न हुए थे; पके नहीं थे, अभी तुम कच्चे थे; जल्दबाजी कर ली। इस जल्दबाजी से कभी कोई व्यक्ति रूपांतरित नहीं होता।

मैं तुम्हें किसी जल्दबाजी में लगाना नहीं चाहता। अगर स्त्री में रस है, तो अनुभव से गुजर ही जाओ। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। तुम भोग लोगे, उसी भोग से त्याग का जन्म होगा। जब तुम भोग-भोग कर देखोगे कि कुछ भी नहीं मिलता; जब तुम भोग-भोग कर देखोगे, दुख ही हाथ आता है; जब तुम भोग-भोग कर देखोगे कि सिर्फ राख से भर जाता है जीवन, कहीं कोई फूल नहीं खिलते, तब तुम्हारे भोग ने तुम्हें कुंजी दे दी त्याग की।

भोग दुश्मन नहीं है, भोग तुम्हारा मित्र है। जाग कर भोगो, बस इतनी मेरी शर्त है; होशपूर्वक भोगो, इतनी मेरी शर्त है। ऐसा न हो कि अनुभव भी गुजरता जाए और सीख भी पैदा न हो; बस, सीख दे जाए अनुभव। अनुभव करने योग्य है। नरक से भी गुजरना उपयोगी है, अगर तुम जागे हुए गुजर जाओ; क्योंकि उसी जागने में स्वर्ग का रास्ता मिलेगा।

इसलिए मैं तुम्हें जीवन के किसी तल से तोड़ना नहीं चाहता; तुम जहां हो, वहीं रहो; वहीं तुम्हारे हृदय में नये होश का बीजारोपण करो। इसलिए मेरा त्याग पर जोर नहीं है, ध्यान पर जोर है।

संसार के विरोध में मैं कुछ भी नहीं कहता, परमात्मा के पक्ष में बहुत कुछ कहता हूं। शंकराचार्य का जोर संसार के विरोध में ज्यादा है। पुराने संन्यास की वही धारणा थी कि लोगों को संसार से छुड़ाओ, ताकि वे परमात्मा को पा सकें; मेरी धारणा यह है कि लोगों को परमात्मा के निकट लाओ, ताकि संसार उनसे छूट सके।

आखिरी प्रश्नः मेरा मन घोर संदेहवादी है, इसलिए प्रयास के बाद भी ध्यान कहीं टिकता नहीं। जन्म से अभी तक सिर्फ पदार्थ ही जाना है, और आप कहते हैं कि सब परमात्मा है--तो क्या विश्वास कर लूं? क्या वह ईमानदारी होगी?

समझें!

"मेरा मन घोर संदेहवादी है।"

संदेहवादी होगा, घोर संदेहवादी नहीं। क्योंकि घोर संदेहवादी को संदेह पर भी संदेह हो जाता है। वह संदेह अभी तुम्हें नहीं हुआ। संदेह अभी तुम्हारा लंगड़ा है, नपुंसक है। अभी तुमने संदेह किया है, लेकिन संदेह की पराकाष्ठा नहीं। संदेह की पराकाष्ठा ही आस्था है। क्योंकि जब संदेह करते-करते सब चीजों पर संदेह हो जाता है, तो आखिरी संदेह संदेह पर होता है--कि मैं यह जो संदेह कर रहा हूं, इससे कुछ मिलेगा? संदेह से कुछ पाऊंगा? संदेह से कभी किसी ने कुछ पाया है?

जब तुम संदेह पर भी संदेह कर लेते हो, तब घोर संदेह है। लेकिन उस दिन संदेह संदेह को काट देता है और एक कुंआरी आस्था का जन्म होता है।

तो तुम संदेहवादी हो, लेकिन लंगड़े; पूरी यात्रा नहीं की। लंगड़े तुम होओगे ही, नहीं तो मेरे पास किसलिए आए? संदेह करना था तो सारी दुनिया पड़ी है, उसके लिए यहां मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं है। संदेह तुमने पूरा नहीं किया और तुम थक गए हो, और तुम आस्था करना चाहते हो, इसलिए मेरे पास आए हो।

जल्दी आ गए, थोड़ा और रुकना था। थोड़ा और संदेह करो। और ध्यान रखोः संदेह ही संदेह को काट देता है, जैसे कांटे से कांटा निकाल लिया जाता है।

"मेरा मन घोर संदेहवादी है, इसलिए प्रयास के बाद भी ध्यान कहीं टिकता नहीं।"

टिकेगा ही नहीं। संदेहवादी कभी त्याग को उपलब्ध हुआ है? या ध्यान को उपलब्ध हुआ है? या परमात्मा को उपलब्ध हुआ है? क्योंकि संदेहवादी कुछ भी नहीं कर सकता; वह एक हाथ से रखता है, दूसरे हाथ से मिटाता है।

मैंने सुना है कि एक बड़ा विचारक पहले महायुद्ध में भरती हो गया। अनिवार्य भरती थी; सभी को युद्ध पर जाना था, वह भी गया। लेकिन बड़ी मुसीबत आ गई, क्योंकि वह संदेहवादी था-- विचारक, चिंतक, दार्शनिक। जब उसका कमांडर कहे--बाएं घूम! तो सारी दुनिया बाएं घूम जाए, वह वहीं का वहीं खड़ा है। वह सोच रहा है कि घूमना कि नहीं घूमना! आखिर उसके कमांडर ने कहा कि इतनी देर क्या लगती है, क्या तुम बहरे हो? सारी पंक्ति घूम गई, तुम वहीं खड़े हो!

उसने कहा कि क्षमा करें, मैं बिना सोचे-विचारे कुछ भी नहीं करता। और सोच-विचार में समय लगता है। और पहले तो सवाल उठता है कि बाएं घूमना ही क्यों? जरूरत क्या है घूमने की? फिर दाएं घूमने में क्या हर्ज है? फिर तुमने कह दिया बाएं घूम, बस इसीलिए घूम जाएं? और कोई प्रयोजन भी समझ में नहीं आता--बाएं घूम, दाएं घूम--व्यर्थ की कवायद! आखिर में जहां हम खड़े हैं, फिर वैसे के वैसे ही खड़े हैं। तो हम पहले से वहीं खड़े हैं, ये सब घूम-घाम कर फिर ऐसे ही खड़े हो जाएंगे।

जाहिर आदमी था, बड़ा विचारक था, कमांडर को भी दया आई कि पुरानी आदत है, ये मिलिट्री के काम का नहीं है। तो उसको मिलिट्री का जो चौका था, उसमें रख दिया कि कुछ दूसरे काम करे। पहले ही दिन उसको मटर के दाने दिए और कहा कि बड़े दाने एक तरफ कर लेना, छोटे दाने एक तरफ। घंटे भर बाद जब कमांडर आया, तो वह बड़ी विचार की मुद्रा में वैसा का वैसा ही बैठा था, दाने अपनी जगह थे! उसने पूछा, क्या यह भी नहीं कर सके?

उसने कहा कि एक बड़ी उलझन आ गई। बड़े एक तरफ, छोटे एक तरफ--कुछ मझोल हैं, उनको कहां रखना? और जब बात पहले से साफ न हो तो मैं शुरू ही नहीं करता; मैं तुम्हारी राह देखता था कि मझोल का क्या करना?

यह, इस तरह का जो व्यक्तित्व है, यह कुछ भी नहीं कर पाता; कृत्य इससे हो ही नहीं सकता। संदेह जहर की तरह कृत्य को घेर लेता है। ध्यान तो बड़ा दूर है; क्योंकि ध्यान तो परम कृत्य है; वह तो आखिरी बात है। जब तुम अभी डांवाडोल हो, और बाएं घूमने में भी तुम्हें संदेह होगा, तो भीतर घूमने में तो बड़ी मुश्किल आएगी।

"जन्म से अभी तक सिर्फ पदार्थ ही जाना है।"

यह भी तुम गलत कहते हो। अगर संदेहवादी सच में होते, तो तुम यह भी नहीं कह सकते कि पदार्थ ही जाना है। असली संदेहवादी तो यह भी कहते हैं--पता नहीं, पदार्थ भी है या नहीं?

क्योंकि क्या पक्का? मैं यहां बैठा हूं, तुम मुझे सुन रहे हो। हो सकता है तुम एक सपना देख रहे होओ। जरूरी क्या है कि मैं यहां हूं ही और तुम वहां बैठे हो? तुमने सपने में भी बहुत बार लोग देखे हैं; हो सकता है यह भी एक सपना हो। क्या पक्का है?

और तुमने पदार्थ देखा है कभी? तुम तो खोपड़ी के भीतर छिपे हो, पदार्थ खोपड़ी के बाहर है। कभी तुम खोपड़ी के भीतर पदार्थ को ले गए हो? तुमने पदार्थ तो कभी नहीं देखा; सिर्फ पदार्थ के चित्र जाते हैं भीतर। सामने वृक्ष लगा है। वृक्ष तो तुमने कभी नहीं देखा। वृक्ष से कुछ किरणें आती हैं, आंख पर पड़ती हैं, वे किरणें भीतर एक चित्र को ले जाती हैं। जैसे फोटो के कैमरे में चित्र जाता है, ऐसे ही तुम्हारे मस्तिष्क में चित्र जाता है। उस चित्र को ही तुमने देखा है। पक्का नहीं है कि उस चित्र से मिलता हुआ वृक्ष बाहर है भी। इसका कोई सबूत भी नहीं है; कोई सबूत नहीं है इसका कि बाहर है भी।

संदेहवादी तो पदार्थ पर भी भरोसा नहीं कर सकता, परमात्मा की तो बात अलग।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि पदार्थ को जानना मुश्किल है, परमात्मा को जानना आसान। क्योंकि पदार्थ बाहर है और परमात्मा भीतर; परमात्मा निकट है, पदार्थ दूर; परमात्मा तुम स्वयं हो, पदार्थ संसार। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है जिसे जानना है। वह कोई जानने का विषय नहीं है, वह जानने वाला है। वह तुम हो स्वयं, वह तुम्हारा चैतन्य है। वह जो संदेह कर रहा है, वही परमात्मा है।

अब तुम थोड़ा समझो। अगर वही परमात्मा है जो संदेह कर रहा है, तो तुम उस पर कैसे संदेह करोगे? क्योंकि संदेह करने वाला तो कम से कम है ही भीतर। संदेह करो तो भी है; क्योंकि संदेह करने के लिए भी उसकी जरूरत है। अगर वह हो ही न तो संदेह कौन करेगा? समझो।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्रों को लेकर एक दिन सांझ घर आया। होटल में बैठे-बैठे जोश चढ़ गया। ऐसे ही कुछ बात चल रही थी, किसी ने कह दिया कि तुम बड़े कंजूस हो। उसने कहा, कौन कहता है? मेरा जैसा दानी नहीं! लोगों ने जोश पर चढ़ा दिया। उन्होंने कहा कि अगर ऐसा है, तो आज हम सबको निमंत्रण करवा दो तुम्हारे घर। उसने कहा, आओ, जितने लोग यहां मौजूद हैं। कोई तीस-पैंतीस का जत्था आ गया। घर पहुंचते-पहुंचते होश आया कि यह क्या कर लिया! क्योंकि अब तक तो भूल ही गए थे जोश में कि पत्नी घर बैठी है। अब वह मुश्किल हो जाएगी। तीस-पैंतीस! एक आदमी ले आओ घर में तो मुसीबत खड़ी होती है। तो उसने कहा कि देखो भई, तुम भी सब घर-द्वार वाले हो, तुम भी जानते हो आदमी की असलियत। मैं भी एक साधारण पति हूं, पत्नी घर में बैठी है। तुम जरा बाहर रुको, पहले मैं उसे राजी कर लूं, समझा-बुझा लूं, फिर तुम्हें भीतर बुला लूंगा।

वह सबको बाहर छोड़ कर दरवाजा बंद करके भीतर गया। पत्नी तो एकदम पागल हो गई, गुस्से में आ गई कि हद्द हो गई, पूरा गांव लिवा लाए! और घर में खाना भी नहीं, सब्जी भी नहीं। दिन भर से कहां थे? आटा पिसा ही नहीं है। सब्जी तुम लाए नहीं--आ कहां से जाएगी? कोई आकाश से टपकती है?

तो मुल्ला ने कहा, अब तू ही बता, क्या करें? अब तो रात भी हो गई, बाजार भी बंद हो गया। इनसे किस तरह निपटारा हो?

उसने कहा, अब तुम ही समझो; जो निपटारा करना हो, करो! मैंने मुसीबत बुलाई भी नहीं, तुम्हीं लेकर आए हो।

तो उसने कहा, एक काम कर, तू जाकर उनसे कह दे कि मुल्ला घर पर नहीं है।

वह बाहर आई पत्नी, उसने उनसे कहा कि किसकी राह देख रहे हो? वे घर पर नहीं हैं।

यह कैसे हो सकता है--उन लोगों ने कहा--वे हमारे साथ ही आए थे, और हमने उनको बाहर जाते भी नहीं देखा, भीतर ही गए हैं।

वे पत्नी से जिरह करने लगे, दलीलबाजी करने लगे। आखिर मुल्ला को भी जोश आ गया। भीतर सुन रहा है दलील, वह भूल ही गया जोश में फिर, खिड़की से झांक कर बोला कि सुनो जी, पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गया हो, यह भी तो हो सकता है।

आप अपना ही खंडन नहीं कर सकते। पीछे का दरवाजा या बाहर का दरवाजा, आप यह नहीं कह सकते कि मैं नहीं हूं। कोई तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, तुम यह नहीं कह सकते कि मैं घर पर नहीं हूं। इसका क्या मतलब होगा? इसका सिर्फ इतना मतलब होगा कि तुम हो; क्योंकि इनकार करने के लिए भी तुम्हारी जरूरत पड़ जाएगी।

परमात्मा कोई वस्तु नहीं है, पदार्थ नहीं है; वह तुमसे बाहर नहीं है; वह तुम्हारे भीतर होने का, तुम्हारा ही स्वभाव है; वह तुम्हारा भीतरीपन है, वह तुम्हारा स्वरूप है।

नहीं, मैं कहूं इसलिए तुम उस पर विश्वास मत करना। क्योंकि वह तोझूठा होगा, बेईमानी होगी। मेरे कहने से नहीं। तुम खोजना। और तुम जानते हो...

कल मैं किसी एक कवि की पंक्तियां पढ़ रहा था, मुझे प्रीतिकर लगीं।

मुद्दतें गुजरीं तेरी याद भी आई न हमेंऔर हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं

मुद्दतें गुजरीं तेरी याद भी आई न हमें, और हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं--बस परमात्मा ऐसा ही है। कितनी ही मुद्दतें गुजर गई हों, तुम्हें याद भी न आई हो--लेकिन हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं।

थोड़ा भीतर शांत होकर बैठने की बात है, इतना ही ध्यान है। ध्यान का इतना ही अर्थ है कि थोड़ा तुम शांत हो जाओ भीतर और उसे जान लो जो सब कुछ जानता है। तुम अपनी चेतना के प्रति चेतन हो जाओ।

परमात्मा कहीं आकाश में नहीं बैठा है, तुम्हारे अंतर-आकाश को घेरे हुए है। तुम परमात्मा हो--यही उदघोषणा है। इसी उदघोषणा का सूत्र तुम्हें अपने भीतर खोजना है, मुझ पर विश्वास करके नहीं। तुम जब इसे खोज लोगे, तब तुम्हें मुझ पर आस्था आएगी। तुम्हारा अनुभव आस्था देगा। मुझ पर आस्था से अनुभव पैदा नहीं हो सकता। जब तुम भीतर उसकी थोड़ी सी गंध पा लोगे, थोड़ा सुराग, बस फिर तुम्हें मुझ पर आस्था आ जाएगी; क्योंकि फिर तुम समझ पाओगे मैं क्या कह रहा हूं।

मुद्दतें गुजरीं तेरी याद भी आई न हमेंऔर हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

सत्संग से निस्संगता

सूत्र

का ते कांता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः।।
सत्संगत्वे निस्संगत्वं निस्संगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चल चित्तं निश्चलचित्ते जीवनमुक्तिः।।
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः।।
मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा।।
दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः तदपि न मुंचत्याशावायुः।।
का ते कांताधनगतचिन्ता वातुल किं तव नास्ति नियन्ता।
क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका भवति भवावितरणे नौका।।

सूत्र के पूर्व, मनुष्य-मन की एक अत्यंत अनिवार्य ग्रंथि समझ लेनी जरूरी है। उस ग्रंथि के कारण ही बहुत से लोग समझ कर भी चूक जाते हैं। उस ग्रंथि के कारण ही खाई से तो बचते हैं, खड्ड में गिर जाते हैं; एक अति से तो मन बच जाता है, उस बचने की प्रक्रिया में ही दूसरी अति पर चला जाता है।

कोई अतिशय भोजन करता है, भोजनपटु है; सारा रस भोजन के पास है। आज नहीं कल, किसी के बिना समझाए भी उसे समझ में आ जाएगा कि वह अपने शरीर को कष्ट दे रहा है। पीड़ा होगी; बीमारी होगी; यह देखने में कोई कठिनाई न होगी कि अतिशय भोजन स्वास्थ्यदायी नहीं है। लेकिन तब एक खतरा है कि वह उपवास करना शुरू कर दे; अति भोजन से दूसरी अति पर चला जाए कि भोजन-त्याग ही कर दे।

संसार में राग है। धन में मोह है। दूसरी अति पर जाना बड़ा सुलभ है। संसार छोड़ कर भाग जाए। जहां राग था, वहां विराग आ जाए। और जहां मोह था, वहां मोह के प्रति विरोध, शत्रुता पैदा हो जाए। जिन्हें अपना माना था, उन्हें शत्रु मानने की वृत्ति पैदा हो जाए। तब खाई से तो बचे, खड्ड में गिर गए; कोई बहुत भेद न हुआ।

शंकर के ये सूत्र वैराग्य समझाने के लिए नहीं हैं, सिर्फ राग की व्यर्थता बताने को हैं। राग व्यर्थ हो जाए, बस काफी है; राग गिर जाए, बस काफी है। कहीं राग गिरे और वैराग्य पकड़ जाए, तो चूक हो गई। राग का गिर जाना ही बस वैराग्य है; वैराग्य कोई राग के गिर जाने से अतिरिक्त बात नहीं है।

लेकिन होता उलटा है। इन सूत्रों को पढ़ कर न मालूम कितने लोगों ने--असंख्य लोगों ने--राग को तो न गिराया, वैराग्य को पकड़ लिया! राग तो बना ही रहा--वैराग्य की शक्ल में बना रहा। पहले पैर के बल चलते थे, फिर वे शीर्षासन करके खड़े हो गए; लेकिन कुछ बदला नहीं। कहीं शीर्षासन करने से कुछ बदलता है? सिर

ऊपर हो कि नीचे, क्या फर्क पड़ता है? जब राग शीर्षासन करता है तो वैराग्य बन जाता है--साधारण आदमी का वैराग्य; तथाकथित संन्यासियों का वैराग्य। लेकिन जब राग गिर जाता है तो महावीर, बुद्ध और शंकर का वैराग्य पैदा होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक मानसिक बीमारी थी कि जब भी उसकी फोन की घंटी बजे, तो वह घबड़ा जाए, डरे--कि पता नहीं, मकान मालिक ने किराए के लिए फोन न किया हो; कि जिस दफ्तर में नौकरी करता है, कहीं उस मालिक ने नौकरी से अलग न कर दिया हो--हजार चिंताएं पकड़ें; फोन उठाना उसे मुश्किल हो जाए। तो मैंने उसे कहा कि तू किसी मनोचिकित्सक को दिखा ले।

दो-तीन महीने उसने इलाज लिया। एक दिन मैं उसके घर गया, वह फोन कर रहा था। और उसे कंपते भी मैंने नहीं देखा, डरते भी नहीं! फोन करने के बाद मैंने पूछा कि मालूम होता है, चिकित्सा काम कर गई! अब डर नहीं लगता?

नसरुद्दीन ने कहा, डर की बात है; चिकित्सा जरूरत से ज्यादा फायदा की।

तो मैंने पूछा कि जरूरत से ज्यादा फायदा का क्या मतलब? फायदा काफी है; जरूरत से ज्यादा से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

उसने कहा, अब तो ऐसी हिम्मत आ गई कि घंटी नहीं भी बजती तो भी मैं फोन करता हूं। पहले घंटी बजने से डरता था; अब अभी-अभी जो फोन कर रहा था, घंटी बजी ही नहीं थी और मैंने मकान मालिक को डांट दिया। वह इतना डर गया है कि बोलता भी नहीं उस तरफ से। चुप! सांस की आवाज का भी पता नहीं चलता है।

एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत सुगम है। और मनुष्य-जीवन की यह बड़ी से बड़ी विडंबना है। कहावत है कि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। वह दूसरी अति हो गई। दूध का जला जैसे छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है, वैसा संसार से डरा हुआ व्यक्ति बहुत गहरे में परमात्मा से भी डर जाता है। संसार का जला हुआ परमात्मा को भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है।

संसार तो छूटना चाहिए--भय के कारण नहीं; क्योंकि जिसे भी तुम भय के कारण छोड़ोगे, वह छूटेगा नहीं; जिससे तुम भयभीत होओगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा; जिससे तुम डरोगे, वह तुम्हें और डराएगा; जिससे तुम भागोगे, वह तुम्हारे पीछे आएगा। क्योंकि भय तो भीतर है, भागोगे कहां? किससे भागोगे? संसार अगर बाहर होता तो भाग जाते। जहां जाओगे, वहीं संसार पाओगे। हिमालय की गुफा में भी तुम तो रहोगे--वही, जैसे तुम यहां हो।

इसलिए असली सवाल स्थान बदलने का नहीं है; न असली सवाल रंग-ढंग बदलने का है; असली सवाल तो भीतर की चित्त-दशा बदलने का है। अभी तुम्हारी जो चित्त की दशा है, वह एक तरफ अतिशय झुकी है। इसे दूसरी तरफ अतिशय मत झुका लेना, क्योंकि अतिशय ही रोग है। मध्य में जो संतुलित हो गया, वह मुक्त हो गया। इसलिए बुद्ध ने तो अपने मार्ग को मज्झिम निकाय कहा--मध्य का मार्ग।

जो बीच में आ गया, वह पहुंच गया; जो न इस तरफ झुकता, न उस तरफ। जब तक झुकोगे एक तरफ, तब तक जीवन में कंपन रहेगा, थिरता न आएगी; तब तक स्वस्थ न हो सकोगे; तब तक डांवाडोल ही रहोगे। ठीक मध्य में ही, जैसे दीये की ज्योति ठहर जाए, हवा का कोई झोंका न हिलाए, ऐसी ही चेतना की ज्योति जब ठीक मध्य में ठहर जाती है--न वासना हिलाती है, न वैराग्य हिलाता है; न पूरब, न पश्चिम; न इस तरफ, न उस तरफ--कुछ कंपता ही नहीं। इसको कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा है। उठो, बैठो--तुम्हारे भीतर कोई उठता नहीं, बैठता

नहीं; भोजन करो, उपवास करो--तुम्हारे भीतर न कोई भोजन करता है, न उपवास करता है; संसार में रहो कि संन्यास में--न तुम्हारे भीतर संन्यास है और न संसार है। ऐसी परम मध्यावस्था ही वैराग्य है।

वैराग्य राग के विपरीत हो तो गलत है; वैराग्य राग से मुक्ति हो तो सही है। और यह बड़ा बारीक भेद है। वैराग्य राग के विपरीत हो तो समझ लेना कहीं चूक हो गई; क्योंकि जो राग के विपरीत है, वह राग से जुड़ा है।

सभी विपरीत आपस में जुड़े होते हैं। किसी से प्रेम करो तो उसकी याद आती है; किसी को घृणा करो तो भी उसकी याद पीछा नहीं छोड़ती। प्रेम और घृणा विपरीत हैं; लेकिन जुड़े हैं। मित्र तो भूल भी जाए, शत्रु नहीं भूलता। कांटा चुभता ही रहता है। मित्र से भी संबंध है और शत्रु से भी संबंध है।

तुम ऐसा मत समझना कि शत्रु वह है जिससे हमारे सब संबंध टूट गए। नहीं, अगर सभी संबंध टूट गए तो वह शत्रु कैसे होगा? शत्रु वह है जिससे मित्रता के संबंध न रहे, शत्रुता के संबंध बन गए; संबंध टूटे नहीं। संबंध टूट जाएं--न तो मित्र फिर मित्र है, न शत्रु फिर शत्रु है। संबंध बदल जाएं तो मित्र शत्रु बन जाता है, शत्रु मित्र बन जाते हैं।

मित्र कोशत्रु बनाने में कितनी देर लगती है? एक क्षण में हो सकता है। शत्रु को मित्र बनाने में कितनी देर लगती है?

देर क्यों नहीं लगती? क्योंकि दोनों ही संबंध हैं। जरा सा रुख बदला--पूरब जाते थे, पश्चिम जाने लगे; पश्चिम जाते थे, पूरब जाने लगे; दोनों ही गतियां हैं, सिर्फ चेहरे को जरा सा बदलने की जरूरत है।

मैंने सुना है, इंग्लैंड में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, एडमंड बर्क। लंदन के पास एक छोटे गांव में प्रवचन देने के लिए उसे बुलाया था, चर्च में बोलना था। थोड़ा भुलक्कड़ स्वभाव का आदमी था। तो यह अक्सर भूल हो जाती थी, समय पर नहीं पहुंचता, तारीख पर न पहुंचता, दूसरे दिन पहुंच जाता। तो उसने उस बार बड़ा हिसाब रखा, क्योंकि निमंत्रण देने वाले बहुत समझा-समझा कर कह गए थे कि आप ठीक समय पर, ठीक दिन पर पहुंच जाना; आप पर ही सब निर्भर है। चर्च की कोई वर्षगांठ थी।

तोशाम को सात बजे पहुंचना है तो दो बजे घर से निकल पड़ा। मुश्किल से घंटे भर का रास्ता था। अपने घोड़े पर बैठा। तीन बजे पहुंच गया। चर्च में तो कोई था ही नहीं। जलसा तो रात सात बजे होने को था। तो द्वार पर ही खड़ा था। अब क्या करना, तो उसने अपनी सिगरेट निकाली, मुंह से लगाई, माचिस जलाई; लेकिन हवा का रुख विपरीत था। तो उसने घोड़े को घुमा कर खड़ा कर लिया, ताकि सिगरेट जलने में बाधा न पड़े। सिगरेट तो जल गई और घोड़ा चल पड़ा। तीन बजे चर्च पहुंचा था, चार बजे अपने घर के सामने खड़ा था। उसने बड़े गौर से देखा कि चर्च का क्या हुआ? तब उसे याद आया कि सिगरेट जलाने को घोड़े का रुख बदल लिया था। वह सिगरेट पीने में लग गया और घोड़ा अपने घर की तरफ चल पड़ा।

इतना ही फर्क है दिशा के बदलने में। कोई जरा सी घटना--सिगरेट जलाने की घटना, रुख बदलने का कारण हो सकती है। मित्र शत्रु बन जाए, शत्रु मित्र बन जाए। पूरब से पश्चिम मुड़ जाएं, पश्चिम से पूरब मुड़ जाएं। कोई छोटी सी घटना--दिवाला निकल गया, कि पत्नी मर गई, कि बच्चे की मृत्यु हो गई--और आदमी घर छोड़ दे, त्यागी हो जाए। ये घटनाएं भी सिगरेट जलाने से ज्यादा मूल्य की नहीं हैं। पर रुख बदल सकता है। पर यह त्याग झूठा होगा। इस त्याग में घृणा होगी, समझ नहीं; इस त्याग में असफलता होगी, बोध नहीं; इस त्याग में विषाद होगा, मुक्तता नहीं।

एक और त्याग है, जिसमें हम रुख नहीं बदलते; संसार को ही गौर से देखते हैं, संसार की तरफ पीठ नहीं करते। पर उस गौर से देखने में ही संसार तिरोहित हो जाता है। उस बोध में ही, उस ध्यान की दशा में ही हम

देख लेते हैं कि संसार का सारा संबंध व्यर्थ है। कोई नया संबंध निर्मित नहीं करते संसार से, कि अब तक हम आकर्षण से जुड़े थे, अब हम विकर्षण से जुड़ेंगे; अब तक हम संसार की तरफ दौड़ते थे, अब संसार के विपरीत दौड़ेंगे। नहीं, अगर ऐसा हुआ तो वैराग्य गलत हो गया। वह नया रोग है अब। और तब इस रोग से भी छुटकारा पाना पड़ेगा। वह स्वास्थ्य नहीं बना।

ऐसा समझो कि एक आदमी बीमार है। बीमारी तो चली गई, दवा पकड़ गई। अब वह दवा की बोतलें लिए घूमता रहता है। अब दवा की बोतलें नहीं छोड़ सकता।

बुद्ध कहते थे कि ऐसा समझो कि पांच नासमझों ने नदी पार की थी। फिर उन्होंने नाव को उठा कर सिर पर रख लिया। लोगों ने उनसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, इस नाव का हम पर बड़ा उपकार है; इसके बिना हम नदी पार न किए होते; हम इस नाव को कैसे छोड़ सकते हैं? हम ऐसे कृतघ्न नहीं हैं। वे नाव को सिर पर बाजार में ढोकर आ गए। लोगों ने कहा कि यह नाव पार करने वाली न हुई, यह तो बोझ हो गई। अब तुम जिंदगी भर इसकोढोते रहोगे! अब तुम कुछ और कर ही न पाओगे।

तुम जिन्हें संन्यासियों की तरह जानते हो--तुम्हारे तथाकथित महात्मागण--अगर गौर से देखो तो उनके सिर पर तुम नाव पाओगे। राग तो छूटा, वैराग्य चढ़ बैठा! क्योंकि राग की विपरीतता को उन्होंने पोषित किया।

शंकर जो कह रहे हैं, यह बात कुछ और है। वे इतना ही कह रहे हैं कि राग को गौर से देखो, ध्यानपूर्वक देखो, विवेकपूर्वक देखो। तुम्हारी बोध की अवस्था में राग के बादल छितर-बितर हो जाएंगे। कोई उनकी जगह वैराग्य आ जाएगा, ऐसा नहीं।

वैराग्य, राग का अभाव है, राग की शत्रुता नहीं। ऐसा नहीं कि तुम्हारे हृदय से राग चला जाएगा और वैराग्य आकर विराजमान हो जाएगा। नहीं, राग तो चला जाएगा, और कोई नहीं आएगा विराजमान होने को; राग तो हट जाएगा, उसका स्थान कोई भी नहीं लेगा। यही परम वैराग्य है।

इसलिए इन सूत्रों को समझने में भूल मत कर लेना; क्योंकि यह भूल बड़ी आसान है।

"कौन तुम्हारी कांता है? कौन तुम्हारा पुत्र है? यह संसार अत्यंत विचित्र है। तुम किसके हो? कौन हो? कहां से आए हो? मन में इन तत्व की बातों पर विचार तो करो।"

शंकर विचार करने को कह रहे हैं; चिंतन करने को कह रहे हैं; जागने को कह रहे हैं; होशपूर्वक देखने को कह रहे हैं। जल्दी वैराग्य मत ओढ़ लेना, अन्यथा ओढ़ा हुआ वैराग्य किसी काम न आएगा। विचारपूर्वक! तुम्हारे हृदय में प्रकाश हो समझ का, तो राग गिरेगा, कटेगा। अंधेरे को निकालने मत लग जाना, सिर्फ दीया जलाना काफी है।

इसलिए शंकर कहते हैंः "कौन तुम्हारी कांता है?"

कौन है तुम्हारी पत्नी? कौन तुम्हारा पुत्र है? राह पर मिले अजनबी हैं। जिसे तुम अपना पुत्र कहते हो--नहीं पैदा हुआ था, कोई परिचय था? तुमने इसी पुत्र को पुकारा था पैदा हो जाने के लिए? जानते भी न थे, पुकारते कैसे? पता-ठिकाना भी तो मालूम न था; शक्ल-सूरत भी तो पहचानी हुई न थी। अनजान मिलन, अपरिचित लोगों का मिलन है।

लेकिन आदमी का मन भ्रांतियां खड़ी करता है। मेरा पुत्र है, मेरी पत्नी है, मेरा भाई है, बहन है--ये जो तुम संबंध जोड़ते हो, ये तुम कैसे जोड़ लेते हो, यह बड़ी विचित्र घटना है। जैसे राह पर चलते हुए दो लोग साथ हो जाते हैं। अपरिचित थे एक क्षण पहले, अब थोड़ी देर को साथ हो लिए। साथ थोड़ी देर का है, फिर अपनी-

अपनी राह पर विदा हो जाएंगे। लेकिन उस थोड़ी देर में ही बड़े नाते-रिश्ते बना लेते हैं। कारण होगा कोई गहरा इसके पीछे। नाते-रिश्ते सच तो नहीं हैं; क्योंकि हम सब अपरिचित हैं--और वर्षों साथ रह कर भी परिचित नहीं हो पाते।

तुम अपनी पत्नी से परिचित हो? तीस-चालीस वर्ष साथ रह लिए हो। क्या सच में तुम कह सकते हो, तुमने उसे पूरा जान लिया? क्या तुम यह कह सकते हो कि वह जो भी कल करेगी, तुम उसकी भविष्यवाणी कर सकते हो?

एक क्षण बाद तुम्हारी पत्नी क्या करेगी, चालीस साल साथ रहने के बाद भी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। अभी मुस्कुराती थी, प्रसन्न थी; अभी नाराज है! कौन सी ऋतु आ जाएगी, कुछ कहना कठिन है; कौन सी चित्त-दशा पकड़ लेगी, कहना कठिन है।

पत्नी तुम्हें जानती है? ऊपर-ऊपर की पहचान है। भीतर कौन किसके जा सकता है? अपने ही भीतर जाना इतना मुश्किल है, दूसरे के भीतर जाना कैसे आसान होगा? लेकिन कारण कोई गहन होना चाहिए, क्यों हम नाते-रिश्ते बना लेते हैं?

आदमी अकेला है, इसलिए; अकेले में डर लगता है, इसलिए; अकेले में चिंता पकड़ती है, भय पकड़ता है, इसलिए। अकेले होने में बड़ी पीड़ा है। हम अकेले हैं। जमीन भरी-पूरी हो, पर प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। भीड़ में भी तुम हो, तब भी अकेले हो। यह अकेलापन काटता है। इस अकेलेपन से ऐसा लगता है कि कैसे बाहर निकलें। संबंध बनाते हो, संबंध रास्ते हैं जिनसे तुम अपने को भूलते हो और अपने अकेलेपन को भूलते हो। थोड़ी देर के लिए ऐसा लगता है, अकेले नहीं हैं।

तुमने कभी ख्याल किया? अंधेरी गली से गुजरते हो, अकेलापन डराता है, तो गीत गुनगुनाने लगते हो। ऐसे लोग तुमसे गीत गुनगुनाने को कहें तो तुम बहुत झेंपते हो, गीत न गाओगे। अकेली गली हो, सन्नाटा हो, रात हो, अंधेरा हो--गीत गुनगुनाने लगते हो! क्या कारण होगा गीत गुनगुनाने का? सीटी बजाने लगते हो! क्या कारण होगा? गीत गुनगुना कर अपनी ही आवाज को सुन कर ऐसा लगता है--अकेले नहीं हैं, कोई साथ है। अपने ही गीत में भूल कर क्षण भर को ऐसी भ्रांति हो जाती है कि कोई डर नहीं है। गीत हिम्मत देता है, जोश देता है।

अकेले में आदमी अपने से ही बात करने लगता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर किसी व्यक्ति को परिपूर्ण एकांत में रखा जाए, तो तीन सप्ताह के बाद वह अपने से ही बातचीत शुरू कर देता है। करते तो तुम भी हो अपने से बातचीत, जोर से नहीं करते हो। अगर तुम खाली बैठे हो तो खाली नहीं होते, अपने से बात करते हो तो भीतर-भीतर। अगर कोई गौर से देखे तो तुम्हारे ओंठों का कंपन भी देख सकता है; क्योंकि जब तुम भीतर भी बात करते हो, तब भी ओंठ कंपते हैं। लेकिन अगर तीन सप्ताह तुम्हें निर्जन में रख दिया जाए, तो निर्जन इतना भयावह है--अकेले, इस विराट संसार में! इस महाशून्य में बिल्कुल अकेले! घबड़ाहट होती है; प्राणों का रोआं-रोआं कंपने लगता है। तुम अपने से ही बात करने लगते हो।

तुमने पागलों को खुद से बात करते देखा है। वे तुम्हारे ही थोड़े बढ़े हुए रूप हैं। उनमें और तुममें मात्रा का ही भेद है, गुण का नहीं। तुम धीरे-धीरे करते हो, वे जरा हिम्मतवर हैं, उन्होंने जोर से चर्चा शुरू कर दी है। पागल भी इसीलिए अपने से बात करता है, वह बड़ा घबड़ा गया है। अपने से बात करके थोड़ी देर को भूल जाता है।

ये सब भुलाने के उपाय हैं, आत्म-विस्मरण के उपाय हैं।

एक जर्मन लेखक का संस्मरण मैं पढ़ रहा था। हिटलर के कारागृह में वह बंद था। उसने लिखा है कि मैं बहुत हैरान हुआ कि मुझे हमेशा छिपकलियों से डर लगता था, लेकिन मेरी उस कोठरी में सिर्फ एक छिपकली थी और मैं था--कारागृह में। छिपकली से, वह कहता है, मुझे सदा डर लगता रहा है; छिपकली मुझे कभी भायी नहीं; छिपकली को देख कर ही मन में कुछ वितृष्णा हो जाती थी। मगर उस कोठरी में छिपकली को पाकर भी मैं प्रसन्न हुआ कि कम से कम कोई तो है, मैं अकेला नहीं हूं। इस अंधेरी सीलन भरी कोठरी में कोई संगी-साथी है। और धीरे-धीरे, उसने लिखा है कि मैं छिपकली से बातें करने लगा। हंसता भी था कि यह भी क्या पागलपन है! लेकिन आखिर में ऐसी भी घड़ी आई कि मुझे यह भी शक होने लगा कि छिपकली उत्तर देती है। तब मैं अपनी तरफ से भी बोलता और छिपकली की तरफ से भी बोलता।

आदमी अकेला है; बहुत अकेला है। और इस अकेलेपन के साथ दो ही उपाय हैंः या तो तुम संसार बना लो, या तुम संन्यास बना लो।

संसार बनाने का अर्थ हैः संबंध बनाओ, ताकि अकेलापन भूल जाए। और संन्यास बनाने का अर्थ हैः इस अकेलेपन को स्वीकार कर लो, क्योंकि यह तुम्हारा स्वभाव है। इससे भागो मत, बचो मत; राजी हो जाओ, अंगीकार कर लो; यह तुम्हारा स्वभाव है। इससे भाग कर तुम कहीं भी न पहुंच पाओगे। जन्मों-जन्मों यही तुमने चेष्टा की है और हारे, हार के सिवाय हाथ में कुछ भी न लगा।

संन्यास का अर्थ हैः जो अपने अकेलेपन से राजी हो गया। अब न सीटी बजाता है, न गीत गाता है, न संबंध बनाता है--अपने से परिपूर्ण तृप्त है।

और एक बड़े मजे की घटना हैः जितना तुम अपने से भागोगे, उतना ही और-और भागना पड़ेगा, उतना ही एकांत भयभीत करेगा; जितने तुम अपने से राजी हो जाओगे, उतना ही धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जिसे तुमने अकेलापन समझा था, वह अकेलापन नहीं है, एकांत है।

अकेलापन और एकांत में फर्क है। अकेलेपन का अर्थ है कि दूसरे की याद आती है; एकांत का अर्थ है, अपना होना काफी है। अकेलेपन में पीड़ा है, एकांत में आनंद है।

शंकर जब अकेले हैं, तो एकांत में हैं; तुम जब कहते हो, एकांत में हो, तब भी अकेले हो।

अकेले का मतलब हैः दूसरे की गैर-मौजूदगी खलती है। एकांत का अर्थ हैः अपने होने में बड़ा रस आता है। एकांत का अर्थ हैः तुम अपने साथ प्रेम में पड़ गए।

ध्यान का अर्थ हैः अपने ही प्रेम में पड़ जाना।

ध्यान का अर्थ हैः अपने साथ ऐसे संबंध बना लेना कि अब दूसरे से संबंध बनाने की कोई जरूरत न रही।

ध्यान का अर्थ हैः अपने में परिपूर्ण हो जाना।

तुम्हारा संसार, पूरा संसार तुम्हारे भीतर है; कुछ कमी नहीं है। तुम पूरे हो, परिपूर्ण हो, परमात्मा हो; अब कहीं और जाने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसी भाव-दशा का नाम संन्यास है।

संसार हम बनाते हैं--अकेलापन खलता है। अकेलेपन को भरने के लिए हम बहुत उपाय करते हैं--धन से भरते हैं, मित्र से भरते हैं, परिवार से भरते हैं; धर्म, जाति, राष्ट्र से भरते हैं--न मालूम कितने उपाय करते हैं कि किसी तरह भीतर का यह गड्ढ भर जाए; यह घाव पीड़ा देता मालूम पड़ता है। लेकिन यह घाव है, यहीं भ्रांति है; यह घाव नहीं है।

कल रात्रि ही एक संन्यासिनी मेरे पास आई। उसने कहा, जब से ध्यान करना शुरू किया है, तो ऐसा लगता है--हृदय मर गया; किसी से संबंध बनाने की कोई आकांक्षा नहीं रही; प्रेम में कोई रस नहीं मालूम होता; मित्रता भी व्यर्थ मालूम होती है।

उदास थी बहुत। क्योंकि पश्चिम से आई है। पश्चिम में अगर प्रेम मरने लगे तो लोग समझते हैं, जीवन गया; अगर भावनाएं छूटने लगें और संबंध टूटने लगें, तो लोग सोचते हैंः अब जीवन में सार क्या रहा? यह व्याख्या है उनकी, इसलिए उदास थी।

हमने पूरब में कुछ और गहरी खोज की है। हमने तो यह खोज की है कि जब कोई व्यक्ति परिपूर्ण अपने में ठहर जाता है, तो सब संबंध अपने आप बिखर जाते हैं। और यह महासौभाग्य की घटना है; इसमें कुछ दुखी होने का कारण नहीं है। जब व्यक्ति अपने में थिर होता है, कामवासना विसर्जित हो जाती है; संबंध बनाने की आतुरता चली जाती है। इतना धन्यभाग मालूम होता है भीतर कि अब किससे क्या संबंध बनाना! अब वह भिखारी की भांति लोगों के सामने हाथ नहीं फैलाता--कि तुम्हारे संबंध के लिए भिक्षा मांगता हूं, कि तुम्हारे बिना मैं न जी सकूंगा। अब वह जी सकता है अकेला। और जो अकेला जी सकता है, वही जी सकता है; बाकी सब जीना धोखा है, माया है। जो अकेला नहीं जी सकता, वह किसी के साथ भी कैसे जीएगा?

तो मैंने उस युवती को, संन्यासिनी को कहा--भयभीत न हो, दुखी भी मत हो, यह तेरी व्याख्या गलत है; पश्चिम की व्याख्या गलत है। आह्लादित हो कि तेरा धन्यभाग है, अहोभाग है कि अब कोई संबंध की आकांक्षा न रही।

संबंध सिवाय पीड़ा के और कुछ लाते भी नहीं, सिवाय दुख के और कुछ लाते भी नहीं। ठीक भी है कि दुख ही लाएंगे; क्योंकि दो दुखी लोग जब मिलते हैं तो एक-दूसरे को सुख कैसे दे पाएंगे! गणित भी तो थोड़ा सा साफ करो। जब दो दुखी व्यक्ति मिलते हैं, तो दुख दो गुना नहीं होता, अनंतगुना हो जाता है, गुणनफल हो जाता है।

तुम सुखी नहीं हो, इसलिए दूसरे को खोज रहे हो; तुम अपने अकेले में आनंदित नहीं हो, इसलिए दूसरे को खोज रहे हो। दूसरा भी तुम्हें इसीलिए टटोल रहा है; वह भी अपने साथ आनंदित नहीं है। ऐसे दो दुखीजन मिल जाते हैं--इस आशा में कि मिलन से सुख होगा। सुख कभी नहीं होता। हो नहीं सकता; क्योंकि दो भिखारी एक-दूसरे के सामने भिक्षापात्र फैलाए खड़े हैं। उनमें दाता कोई भी नहीं है, दोनों भिखारी हैं। दोनों प्रतीक्षा कर रहे हैं कि दूसरा कुछ दे।

तुमने जिनसे भी प्रेम किया है, आशा की है--कुछ दे; दूसरा कुछ दे।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि हम तो बहुत प्रेम करते हैं, लेकिन दूसरा हमें प्रेम नहीं करता।

तुम कैसे प्रेम करोगे? प्रेम तो केवल आनंद के शिखर से ही बहता है; वह गंगा तो आनंद के ही शिखर से बहती है। तुम आनंदित ही नहीं हो। तुम मांगने गए हो, दूसरा भी मांगने आया है; तुम छीनने गए हो, दूसरा भी छीनने आया है; न तुम्हारे पास कुछ है, न उसके पास कुछ है--दोनों प्रतीक्षा कर रहे हो कि दान मिले। प्रतीक्षा लंबी होने लगती है, और हताशा घिरने लगती है।

व्यक्ति अपने भीतर जब तक आनंदित न हो जाए, तब तक उसे कोई आनंदित कर भी नहीं सकता।

बड़ी प्राचीन कथा है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया। आदमी अकेला था; अकेलापन उसे काटने लगा; अकेलेपन से वह घबड़ाया। उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि कोई संगी-साथी दो, मैं अकेला हूं। लेकिन परमात्मा के पास जितनी भी चीजें थीं, जो भी साज-सामान था, वह सब उपयोग कर चुका था; कुछ बचा न

था। जंगल बनाए, पहाड़ बनाए, पशु-पक्षी बनाए; आदमी आखिरी बात थी। मजबूरी थी, कोई सामान नहीं बचा था, सामग्री नहीं बची थी।

पर आदमी बहुत रोया, चीखा-चिल्लाया, तो उसने कहा कि रुको। उसने स्त्री को बनाने की कोशिश की। सामान नहीं था तो उसने अलग-अलग पशु-पक्षियों से, फूलों से, पौधों से मांगा। चांद से कहा कि तेरी थोड़ी रोशनी दे दे, मोर से कहा कि तेरी थोड़ी अकड़ दे दे, कबूतरों से कहा कि तुम्हारी थोड़ी गुनगुनाहट दे दो, तोतों से कहा कि तुम्हारी थोड़ी वाणी दे दो, नदियों से कहा कि तुम्हारी थोड़ी चंचलता, गति दे दो, कोमल फूलों से कहा कि तुम्हारी थोड़ी कोमलता दे दो। ऐसा उसने मांगा सारे संसार से और स्त्री बनाई।

सात दिन बाद आदमी वापस पहुंचा, उसने कहा, यह भी क्या मुसीबत कर दी! हम तो सोचते थे साथ मिलेगा; यह स्त्री तो एक उपद्रव है। यह चौबीस घंटे चख-चख लगाए रखती है।

वह तोतों से मांगी थी वाणी। कोमल तो है बहुत, जब प्रेम करती है तो बड़ी कोमल है। लेकिन अकड़ भी इसकी बहुत है। वह मोरों से अकड़ मांगी थी। दयालु बहुत है, लेकिन कठोर भी बहुत है। अलग-अलग जगह से सामान इकट्ठा किया था।

बड़ी विरोधाभासी है। मैं तो घबड़ा गया--आदमी ने कहा--इससे तो अकेले बेहतर थे; लाख गुना बेहतर थे। इसे आप वापस ले लो।

परमात्मा ने स्त्री वापस ले ली। लेकिन सात दिन बाद आदमी फिर खड़ा था! उसने कहा कि माना कि वह उपद्रव भी करती है, लेकिन उसकी बड़ी याद आती है; अब उसके बिना मैं रह नहीं सकता। ये सात दिन न तो सो सका, न ठीक से खा-पी सका; कुछ भी करता हूं, याद उसकी ही मन में गूंजती रहती है। मुझे वापस लौटा दो।

फिर सात दिन बाद द्वार पर खड़ा था! कहने लगा, यह तो बड़ी मुसीबत है; न उसके साथ रह सकता हूं, न उसके बिना रह सकता हूं।

कहते हैं, परमात्मा ने पीठ मोड़ ली। उसने कहा कि अब यह बकवास मैं कब तक सुनूंगा? अब तुम जाओ, अपना निपटारा खुद ही करो। हर सात दिन बाद तुम आ जाओगे। न साथ रह सकते हो, न बिना उसके रह सकते हो। तो अब तुम ही निपटारा करो!

तब से आदमी निपटारा कर रहा है; अभी तक सुलझा नहीं। कभी सुलझेगा भी नहीं। क्योंकि जब तुम अकेले हो, तब तुम्हें अपना अकेलापन भयभीत करता है। जब तुम किसी के साथ हो, तो उसकी मौजूदगी काटने लगती है। जब तुम साथ हो, तब तुम अकेले होना चाहते हो; जब तुम अकेले हो, तब तुम साथ होना चाहते हो। जब तुम साथ हो, तब दूसरे की बुराइयां दिखाई पड़ने लगती हैं, दूसरा चुभने लगता है; जब तुम अकेले हो, तब खालीपन दिखाई पड़ता है, शून्य घेर लेता है। शून्य मौत जैसी मालूम होती है। साथ में भी दुर्गति होती है, एकांत में भी मुसीबत हो जाती है।

इसलिए आदमी हजार तरह के संबंध बनाता है। पत्नी को घर लाता है, ताकि अकेला न रहे। फिर पत्नी से बचने को होटल में बैठा रहता है। क्लबघर में बैठा है, क्लबघर का सदस्य बनता है कि वह पत्नी से बचना है। एक भूल करता है, फिर एक भूल से बचने को दूसरी भूल करता है, फिर दूसरी से बचने को तीसरी भूल करता है। एकशृंखला भूलों की हो जाती है। उसी को तुम जीवन कहते हो!

"कौन तुम्हारी कांता है? कौन तुम्हारा पुत्र? यह संसार अत्यंत विचित्र है।"

यहां तुम बिल्कुल अजनबी हो; एक-दूसरे से कोई पहचान भी नहीं है। अपने से ही पहचान नहीं है, दूसरे से पहचान कैसे संभव होगी? जिसने अपने को जाना, वह दूसरे को भी जान लेगा। जिसने अपने को ही नहीं जाना, वह किसी को भी नहीं जान पाएगा। बिना जाने तुमने संबंध बना लिए हैं। सब संबंध सांयोगिक हैं। और तुम्हारी पूरी जिंदगी, तुम्हारा पूरा संसार संयोग पर खड़ा है।

तुम एक लड़की के प्रेम में पड़ गए। और तुम जब उसके प्रेम में पड़ गए तो तुम कहते हो--हम दोनों को परमात्मा ने एक-दूसरे के लिए बनाया है। और कुल मामला इतना है कि तुम दोनों एक ही मकान में रहते थे, और कोई खास मामला नहीं। या एक ही स्कूल में पढ़ने चले गए थे; संयोग की बात है। संयोग ही था कि मिलन हो गया, कोई सिद्धांत नहीं है पीछे। कोई किसी के लिए बनाया गया है, ऐसा नहीं है। पर आदमी संयोग में भी सिद्धांत खोजता है, नियति खोजता है, भाग्य खोजता है!

मुल्ला नसरुद्दीन अफ्रीका गया शिकार करने। वहां से वापस लौटा, तो मित्र इकट्ठे हुए उसकी कहानी सुनने को कि क्या हुआ। उसने बढ़ा-चढ़ा कर काफी कहानी सुनाई। और उसने कहा कि एक ऐसा जानवर भी वहां पाया कि जब नर जानवर को अपनी मादा को बुलाना होता है, तो वह जोर से चिंघाड़ता है; मादा कहीं भी हो, कितनी ही दूर हो जंगल में, सीधी भागी चली आती है। किसी मित्र ने आग्रह किया कि तुम, कैसी आवाज करता है, वह भी करके बताओ। तो उसने बड़े जोर से चिंघाड़ कर आवाज बताई। जब वह चिंघाड़ा, तभी बगल का दरवाजा खुला और उसकी पत्नी ने कहा, कहो जी क्या बात है? तो उसने कहा, देखो! सिद्धांत समझ में आया?

संयोग की बात है, कोई सिद्धांत नहीं है।

लेकिन आदमी को अगर लगे कि मेरा प्रेम भी संयोग है, तो कविता मर जाती है। संयोग? तुम मजनू से कहो कि लैला से मिलना संयोग है। कविता मर जाती है, रोमांस मर जाता है। नहीं, मजनू कहेगा, यह हो ही नहीं सकता। लैला मेरे लिए बनाई गई; मैं लैला के लिए बनाया गया। और सारा संसार बाधा डाले तो भी मिलन होकर रहेगा।

मजनू किसी दूसरे गांव में होते, तो कोई दूसरी लैला होती। यह पक्का है कि मजनू कोई न कोई लैला खोजते, लेकिन वह यही लैला होने वाली नहीं थी।

जिसको तुमने जीवन का ढांचा समझा है, वह ढांचा नहीं है, केवल संयोग है; घटनाएं हैं, सांयोगिक हैं। जो बेटा तुम्हारे घर में पैदा हो गया है, वह भी तुमने पैदा किया है, इस भूल में मत पड़ो--संयोग है। तुम संभोगरत थे और एक आत्मा पुनर्जन्म लेने को उत्सुक थी, और तुम निकट थे, और वह आत्मा गर्भ में उतर गई; तुम उपलब्ध थे और एक आत्मा पास थी, वह तुम्हारे गर्भ में उतर गई। एक गड्ढा तुमने खोद कर रखा था, वर्षा हो रही थी, पानी बहा और गड्ढे में भर गया। पास जो पानी था, वह भर गया; दूर जो था, वह किन्हीं और गड्ढों में चला गया। संयोग है।

किसी का बेटा होना संयोग है, मां होना संयोग है, बाप होना संयोग है; मित्रता संयोग है, शत्रुता संयोग है। अगर इसे तुम ठीक से देख पाओ तो तत्क्षण, तुमने जो प्रगाढ़ संबंध बना रखे हैं, वे क्षीण हो जाएंगे; उनकी प्रगाढ़ता चली जाएगी।

"कौन तुम्हारी कांता? कौन तुम्हारा पुत्र? यह संसार अत्यंत विचित्र है। तुम किसके हो? कौन हो? कहां से आए हो? मन में इन तत्व की बातों पर विचार तो करो। और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

क्योंकि अकेले विचार से कुछ भी न होगा। विचार अकेला पंगु है। सोचो जरूर, लेकिन सोचने भर से पहुंच न पाओगे। सोचने से बाधाएं तो कट जाएंगी, यात्रा न होगी; यात्रा तो भजन से होगी। यात्रा तो भावना से होगी, विचारणा से नहीं।

"सदा गोविन्द को भजो।"

"सत्संग से निस्संगता पैदा होती है और निस्संगता से अमोह। अमोह से चित्त निश्चल होता है और निश्चल चित्त से जीवन-मुक्ति उपलब्ध होती है।"

इसे समझें, यह बहुत बहुमूल्य सूत्र है।

"सत्संग से निस्संगता पैदा होती है।"

इसे तुम सत्संग की परिभाषा समझो। सत्संग वही है, जहां निस्संगता पैदा हो। जहां संबंध पैदा हो जाए, राग बन जाए, वह सत्संग न रहा; वह असत्संग हो गया। सत्संग का अर्थ ही यही है कि तुम्हें सत्य दिखाई पड़े; सत्संग का अर्थ यही है कि तुम्हारा सपना टूटे, आंखें खुलें।

गुरु की खोज बस इसी बात के लिए है कि कोई तुम्हें जगा दे तुम्हारे सपने से। और तुमने जो संबंध बना रखे हैं, कोई तुम्हें उठा दे और बता दे कि ये सब भ्रांत हैं। इन सपनों में खोकर अपने जीवन को मत गंवा देना और इन संबंधों में अपनी आत्मा को मत डुबा देना। सब कामचलाऊ हैं, इन्हें अतिशय मूल्य मत दे देना। इतना मूल्य मत दे देना कि अपने को ही मिटाने को तत्पर हो जाओ। जानते रहना, औपचारिक हैं। आवश्यक हो सकते हैं संसार में, लेकिन अंतस-जगत में बिल्कुल भी आवश्यक नहीं हैं। वहां तुम न तो अपने पिता को साथ ले जा सकोगे, न अपने बेटे को, न अपने भाई को, न मित्र को, न पत्नी को। वहां तुम अकेले ही जाओगे। इसलिए संबंधों में रहते हुए भी जानना कि तुम्हारा शुद्ध स्वरूप तो अकेला होना है। वह कहीं भूल न जाए; कहीं एकांत का सूर्य संबंधों की बदलियों में बहुत ज्यादा दब न जाए, खो न जाए।

"सत्संग से निस्संगता पैदा होती है और निस्संगता से अमोह।"

और जब तुम पाते हो कि तुम अकेले हो, फिर कैसा मोह?

"अमोह से चित्त निश्चल होता है।"

और जब कोई मोह नहीं होता, तो चित्त डांवाडोल नहीं होता।

मैंने सुना है, एक भवन में आग लगी। जिसका मकान था, वह छाती पीट कर रोने लगा। लेकिन भीड़ में से किसी ने कहा, मत रोओ, व्यर्थ रो रहे हो। तुम्हें शायद पता नहीं, तुम्हारे बेटे ने कल यह मकान बेच दिया।

आंसू रुक गए, रोना बंद हो गया। मकान अब भी जल रहा है, आग की लपटें अब भी पकड़ रही हैं, लेकिन अब कोई रोना नहीं है, क्योंकि मकान अपना नहीं है।

लेकिन तभी बेटा भागा हुआ आया; उसने कहा, बातचीत हुई थी, अभी बेचा नहीं है।

फिर आंसू बहने लगे; फिर वह आदमी छाती पीट कर रोने लगा कि लुट गए। मकान अब भी वही है। मकान में लगी आग से थोड़े ही रो रहा है; मकान से जो संबंध है, वही रुलाता है, वही उलझाता है। मकान में आग लगे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हारा न हो, तो क्या फर्क पड़ता है?

बेटा मरे, तुम्हारा न हो, तो क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारा है, इससे फर्क पड़ता है। बेटे के मरने से थोड़े ही आंसू आते हैं आंखों में। मेरा मरा, इससे आंसू आते हैं।

अगर तुम्हें पता चल जाए कि मेरा कोई भी नहीं है, दुख गया। मोह के साथ ही दुख चला जाता है। अगर तुम्हें साफ-साफ हो जाए कि मेरा कोई भी नहीं है, मैं बिल्कुल अकेला हूं, तो चित्त निश्चल हो जाता है; फिर

चित्त में चंचलता नहीं रह जाती; तब तुम थिर हो जाते हो। वही थिरता परम अनुभूति है। उसी थिरता में तुम जान पाते हो तुम कौन हो। जीवन का आत्यंतिक प्रश्न सुलझता है कि मैं कौन हूं। ज्योति थिर होते ही उत्तर मिल जाता है, समाधान हो जाता है। उस थिरता को ही हमने समाधि कहा है। समाधि--क्योंकि सब समाधान हो जाता है।

"और निश्चल चित्त से जीवन-मुक्ति उपलब्ध होती है। हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"उम्र बीतने पर कामवासना क्या? पानी के सूख जाने पर तालाब कहां? और धन के नष्ट हो जाने पर परिवार कौन है? वैसे ही तत्वज्ञान होने पर संसार कहां? अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"तत्वज्ञान होने पर संसार कहां?"

इसे समझ लें। जब भी शंकर, बुद्ध या महावीर संसार की बात करते हैं, तो तुम समझ लेते हो कि यह जो चारों तरफ फैला हुआ है, इस विस्तार की बात कर रहे हैं, तो गलती कर देते हो। इस विस्तार से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। जब भी वे कहते हैं "संसार", तो उनका अर्थ हैः तुम्हारे मोह ने जो जाना; तुम्हारे मोह ने जो बनाया; तुम्हारे अज्ञान से जो उपजा; तुम्हारी मूर्च्छा से जो पैदा हुआ--वही संसार। ये वृक्ष तो फिर भी रहेंगे; ये पहाड़-पत्थर, चांद-तारे तो फिर भी रहेंगे। तुम जाग जाओगे, तब भी रहेंगे; ये नहीं मिट जाएंगे।

इसलिए लोग पूछते हैं कि जब कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता है और संसार मिट जाता है, तो फिर ये वृक्ष, पहाड़-पत्थर, चांद-तारे, सूरज--इनका क्या होता है?

ये नहीं मिट जाते। वस्तुतः पहली दफा ये अपनी शुद्धता में प्रकट होते हैं। वही शुद्धता परमात्मा है। तब चांद नहीं दिखता तुम्हें, चांद में परमात्मा की रोशनी दिखती है; तब वृक्ष नहीं दिखते, वृक्षों में परमात्मा की हरियाली दिखती है; तब फूल नहीं दिखते, परमात्मा खिलता दिखता है; तब यह सारा विराट परमात्मा हो जाता है।

अभी तुम्हें परमात्मा नहीं दिखता, संसार दिखता है। और संसार एक नहीं है--यहां जितने मन हैं, उतने ही संसार हैं; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का अपना संसार है। तुम्हारी पत्नी मरेगी तो तुम रोओगे, कोई दूसरा न रोएगा। दूसरे उलटे तुम्हें समझाने आएंगे कि आत्मा तो अमर है, क्यों रो रहे हो? दूसरे उलटे समझाने आएंगे; यह मौका न चूकेंगे वे ज्ञान बघारने का। ऐसे मौके कम ही मिलते हैं। तुमको ऐसी दीन-दशा में देख कर वे थोड़ा उपदेश जरूर देंगे। वे कहेंगे, कौन अपना है, कौन पराया है! क्यों रो रहे हो? कल उनकी पत्नी मरेगी, तब तुमको भी मौका मिलेगा; तुम जाकर उनको उपदेश दे आना कि कौन किसका है! यह संसार तो सब माया है!

प्रत्येक व्यक्ति का अपना संसार है। तुम्हारे चित्त के जो मोह हैं, तुम्हारी जो मूर्च्छा है, तुम्हारा जो अज्ञान है, तुम्हारी जो आसक्ति है, राग है--वही तुम्हारा संसार है। उस आसक्ति, राग, मोह, मूर्च्छा के माध्यम से तुमने जो देखा है, वह सब झूठ है, वह सच नहीं है। आंख पर जैसे परदे पड़े हैं, धुएं के बादल घिरे हैं।

शंकर कहते हैंः "तत्वज्ञान हो जाने पर संसार कहां?"

सत्य बचता है; लेकिन सत्य में तुमने जितना जोड़ दिया था, वह खो जाता है।

"सदा गोविन्द को भजो।"

"धन, जन और युवावस्था का गर्व मत करो, क्योंकि काल उन्हें क्षण मात्र में हर लेता है। इस संपूर्ण मायामय प्रपंच को छोड़ कर तुम ब्रह्मपद को जानो और उसमें प्रवेश करो।"

मैं एक गीत पढ़ रहा था आज सुबह ही; उसकी कुछ पंक्तियां मुझे प्रीतिकर लगीं।

जोर ही क्या था, जफाए-बागवां देखा किए

आशियां उजड़ा किया, हम नातवां देखा किए

कोई जोर नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं, कोई शक्ति नहीं। बगीचा उजड़ता रहेगा और तुम्हें खड़े होकर सिर्फ देखना पड़ेगा, तुम कुछ कर न सकोगे। घर उजड़ता रहेगा और तुम निरीह और असहाय देखते रहोगे, कुछ कर न सकोगे।

जोर ही क्या था, जफाए-बागवां देखा किए

आशियां उजड़ा किया, हम नातवां देखा किए

पूरी जिंदगी ऐसी ही कथा है। रोज उजड़ेगा बगीचा। यह वसंत सदा न रहेगा। यह युवावस्था सदा न रहेगी। यह गति और यह शक्ति सदा न रहेगी। रोज शक्ति क्षीण होती चली जाएगी। घर उजड़ेगा। और धीरे-धीरे मौत करीब आएगी। जीवन थोड़ी देर का सपना है। मौत प्रतिपल पास सरकती आती है। जिस दिन से पैदा हुए हो, उसी दिन से मर भी रहे हो। जन्म का दिन ही मौत का दिन भी है। टाल न सकोगे, भाग न सकोगे, मौत पास चली आती है।

"धन, जन और युवावस्था का गर्व मत करो।"

वह अहंकार थोथा है। सभी अहंकार थोथे हैं। थोथापन ही अहंकार का स्वभाव है। जो अपना नहीं है, उसे अपना मान लेता है; जो टिकना नहीं है, उसे स्थायी मान लेता है; जो बहा जा रहा है, आंख बंद किए मानता चला जाता है कि बह नहीं रहा है, ठहरा है।

झूठ तुम दूसरों से ही नहीं बोलते, अपने से भी बोलते चले जाते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया। द्वार पर दस्तक दिया; घर में सन्नाटा रहा, कोई जवाब नहीं। फिर दस्तक दी, कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने चिल्ला कर कहा कि मैं हूं नसरुद्दीन, कोई मकान मालिक नहीं कि किराया मांगने आया हूं; और न ही दूध वाला हूं, न सब्जी वाला; दरवाजा खोलो। फिर भी सन्नाटा रहा। उसने कहा कि सुनो, मैं हूं असली नसरुद्दीन।

घर के लोगों को समझा रखा है कि कोई भी दरवाजे पर दस्तक दे तो बोलना मत, क्योंकि हजार उधारियां फैला रखी हैं। अब अपने ही घर के दरवाजे पर दस्तक देता है, खुद के लिए दरवाजा नहीं खुलता। तो बताना पड़ता है कि मैं हूं असली नसरुद्दीन। मगर फिर भी कैसे पक्का हो? कहने से कहीं कुछ होता है?

हम दूसरे को ही धोखा नहीं दे रहे हैं, हम धोखे का एक संसार खड़ा कर रहे हैं। हम अपने चारों तरफ झूठ बो रहे हैं। और उस झूठ में हम खुद घिर जाते हैं। एक अप्रामाणिकता है जो हमें पकड़ लेती है। फिर जीवन में हम जो भी करते हैं, वह सब झूठ होता चला जाता है।

जिस व्यक्ति को जागना है, उसे अपने पास झूठ बोने बंद कर देने चाहिए; और अपने पास जिन-जिन झूठों पर आस्था कर रखी है, उन आस्थाओं को विदा कर देना चाहिए। जानना चाहिए, यह शरीर टिकेगा नहीं। टिक नहीं रहा है; अभी भागा जा रहा है; प्रतिपल मर रहा है; मौत कल नहीं आएगी, अभी हो रही है। हम मर ही रहे हैं। मरना कोई घटना नहीं है कि सत्तर साल बाद घटेगी; सत्तर साल बाद घटने को कुछ न बचेगा, धीरे-धीरे चुकता होते जाएंगे। सत्तर साल बाद कुछ भी नहीं बचेगा घटने को, उसको तुम मौत कहते हो।

एक-एक बूंद करके जीवन चुकता जाता है, खाली होता जाता है। इसको तुम जीवन मत कहो, अन्यथा झूठ हो जाएगा। इसको तुम धीरे-धीरे आती मौत कहो, आहिस्ता आती मौत कहो। जन्मदिन मत मनाओ, सभी मौत के दिन हैं। और जिस दिन तुम अपने जन्मदिन में मौत को देख लोगे और जीवन में मृत्यु की पगध्वनि सुन लोगे, उस दिन तुमने सत्य जाना। वही सत्य मुक्तिदायी है। उस सत्य को जानते ही तुम किसी और खोज में लग

जाओगे। धन व्यर्थ मालूम होगा; शरीर व्यर्थ मालूम होगा; धन और शरीर के संबंध व्यर्थ मालूम होंगे; धन और शरीर के आधार पर खड़ा हुआ संसार व्यर्थ मालूम होगा। और सत्य को जानने के पहले असत्य को असत्य की भांति जान लेना जरूरी है।

"दिन और रात, संध्या और सुबह, शिशिर और वसंत, फिर-फिर आते हैं और जाते हैं। इसी तरह काल का खेल चलता है और अनजाने उम्र समाप्त होती जाती है। फिर भी आशा रूपी वायु पीछा नहीं छोड़ती।"

आशा जहर है। उसी जहर के सहारे तुम मरने को जीवन समझे बैठे हो। आज दुख है, मन कहता है, कल सब ठीक हो जाएगा। आज सुख नहीं है, मन कहता है, जरा रुको; कल आता है, सब ठीक हो जाएगा। और ऐसे ही मन तुम्हें अब तक चलाए लाया है--आशा के सहारे। जिस दिन तुम आशा छोड़ दोगे, उसी दिन जाग जाओगे। आशा सपना है।

तुमने कभी ख्याल किया कि आशा का क्या काम है जीवन में?

आशा कहती है, आज की फिक्र छोड़ो! आज जो हो गया, हो गया; लेकिन कल निश्चित स्वर्ग मिलने को है। इसी आशा ने यहां तक भी तुम्हें समझा दिया है कि यह जीवन अगर गया तो कोई फिक्र नहीं, मरने के बाद स्वर्ग है। वह भी सब आशा का ही विस्तार है।

आशा कहती है--कल! आशा कहती है--भविष्य!

और जीवन और जीवन की क्रांति यदि घटनी है, तो अभी घटनी है और यहीं घटनी है। कल के भरोसे मत बैठो। कल कभी आता नहीं। कल झूठ है। और कल का जो भरोसा दिला रही है आशा तुम्हारे भीतर, वही सपने का सूत्र है; उससे ही सपनों का ताना-बाना फैलता है। आज ही करना है जो करना है; आज ही होना है जो होना है। आज से ज्यादा की आशा मत रखो।

पहले तो बड़ा धक्का लगेगा, क्योंकि आशा टूटेगी तो तुम्हें लगेगा कि तुम बिल्कुल निराश हो गए। तुम कहोगे, यह तो बड़ी निराशा घेर ली। लेकिन अगर तुम निराशा के साथ रहने को राजी हो जाओ, तुम जल्दी ही पाओगे--जिसके जीवन से आशा चली गई, उसके जीवन में निराशा ज्यादा देर नहीं रह सकती; क्योंकि निराशा आशा का ही दूसरा पहलू है, वह आशा के साथ ही जाएगा। जिसके जीवन से आशा चली गई, उसके जीवन से निराशा भी चली जाती है। फिर न आशा होती है, न निराशा। वही थिरता है। वहीं ज्योति बीच में ठहर जाती है। फिर कोई कंपन नहीं होता। वही निष्कंप चेतना की दशा है।

"दिन और रात, संध्या और सुबह आते और जाते हैं। इसी तरह काल का खेल चलता है। अनजाने उम्र समाप्त होती है। फिर भी आशा रूपी वायु पीछा नहीं छोड़ती। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"हे पागल, पत्नी और धन की चिंता में क्यों पड़ा है? क्या तुझे मालूम नहीं कि सज्जन का क्षण भर का संग इस संसार से पार जाने की एकमात्र नाव है?"

कौन है सज्जन? वही, जिसके पास तुम्हारी नींद टूटे। जिसके पास तुम्हारी नींद और सघन हो जाए, वही दुर्जन है; जो तुम्हारे माया और मोह को बढ़ाने में सहायता दे, वही दुर्जन है।

लेकिन हालत उलटी है। जो तुम्हें जगाएगा, वह मित्र मालूम नहीं होता; जो तुम्हें सुलाता है, वही मित्र मालूम होता है। जो तुम्हें शराब पिलाता है, वह मित्र मालूम होता है; और जो तुम्हें होश में लाने की कोशिश करता है, वह शत्रु मालूम होता है। इसीलिए तोशराबखानों में भीड़ है, मंदिर खाली पड़े हैं। शराबखानों में क्यू लगा है, मंदिर के भगवान प्रतीक्षा करते हैं, कोई नहीं आता। पुजारी आता है, वह भी नौकर है; वह भी

तनख्वाह पाता है, इसलिए पूजा कर जाता है। उसकी पूजा हार्दिक नहीं है; पेशेवर है। वह कोई प्रेमी नहीं है। क्या मामला है?

जहां-जहां नशा है, वहां-वहां तुम भीड़ देखोगे! सिनेमागृह के सामने भीड़ लगी है। तीन घंटे को नशा छा जाता है; खो जाते हो तस्वीरों में। भूल जाते हो अपना दुख-दर्द, अपनी पीड़ा; भूल जाते हो अपनी परेशानियां, चिंताएं; तीन घंटे के लिए अपने से छुटकारा हो जाता है। यह कोई छुटकारा कुछ काम आने वाला नहीं है। तीन घंटे बाद रोशनी होती है, पर्दा बंद होता है, तुम फिर अपनी जगह खड़े हो जाते हो--वही चिंता, वही दुख।

शराब भुला देती है दो-चार घंटों को, फिर होश आता है; फिर वही दुख, फिर वही पीड़ा। तुम अगर मंदिरों में भी जाते हो तो तुम्हारा इरादा शराब पाने का ही होता है।

यहीं फर्क है। भजन भी तुम दो तरह से कर सकते होः एक तोशराब की तरह कि भजन में खो गए--चिंता मिटी, दुख-दर्द मिटा; उतनी देर तो याद न रही कि घर लौटना है, कि पत्नी-बच्चे हैं, कि पत्नी बीमार है, कि बच्चों को स्कूल में भर्ती कराना है, पैसे पास नहीं हैं--सब चिंता भूल गई; एक घंटे भर, दो घंटे भजन में डूब गए। अगर तुम भजन में भी डूब रहे हो, तो वह भी शराब है। भजन जगाए तो ही भजन है। तो मंदिर के नाम पर भी शराबखाने खुले हैं; और धर्म के नाम पर भी लोग बेहोशी खोजते हैं, होश नहीं खोजते।

ध्यान रखना, जहां होश मिलता हो, जहां तुम जगाए जाते होओ--और निश्चित ही जहां तुम जगाए जाओगे, वहां परेशानी होगी। क्योंकि नींद में बड़ी महिमा है, नींद में बड़े सुंदर सपने चल रहे हैं; जागना कठोर है। और जीवन के सत्य के साथ परिचय बनाना चुनौती है। मुश्किलें खड़ी होंगी। संघर्ष करना होगा। साधना से गुजरना होगा। तपश्चर्या होगी। वास्तविकता के साथ तो सिर्फ आंख बंद करके काम नहीं हो सकता, आंख खोल कर ही यात्रा करनी होगी। और रास्ता कंटकाकीर्ण है। और रास्ता भटका सकता है। जो कभी चलते ही नहीं, उनके भटकने का डर भी नहीं। जो अपने बिस्तर पर ही पड़े रहते हैं, उनके जीवन में कोई दुर्घटना तो हो ही नहीं सकती। लेकिन जो रास्ते पर चलेगा--दुर्घटना भी है, भटकने का उपाय भी है। और कठिनाई भी है, यात्रा श्रमपूर्ण है; क्योंकि यात्रा चढ़ाई की है; पहाड़ के शिखर की तरफ जाना है।

परमात्मा की तरफ जाने का अर्थ है शिखर की तरफ जाना। प्रतिपल कठिनाई बढ़ती जाएगी। और जो उस कठिनाई से पार होने को राजी है, वही शिखर के आनंद को उपलब्ध होगा।

आनंद मुफ्त नहीं मिलता, अर्जित करना होगा, श्रम करना होगा। यद्यपि श्रम से ही नहीं मिलता है; श्रम करने के बाद मिलता है, लेकिन मिलता तो प्रसाद से है। पर जिसने श्रम किया, जिसने अपने को तैयार किया, उस पर ही परमात्मा बरस सकता है।

"आशा रूपी वायु पीछा नहीं छोड़ती।"

तुम परमात्मा में भी आशा बांध लेते हो।

मेरे पास लोग आते हैं; मैं उनसे कहता हूं, आशा छोड़ कर ध्यान करो। वे कहते हैं, आशा ही छोड़ दें, तो फिर हम ध्यान ही क्यों करेंगे! आशा से ही ध्यान करने आए हैं--कि ध्यान से मन कोशांति मिलेगी, परमात्मा मिलेगा, समाधि होगी।

अब बड़ी जटिलता है। आशा से बाधा पड़ेगी। क्योंकि जब तुम आशा कर रहे हो, तब तुम ध्यान नहीं करोगे, आशा ही करोगे; दोनों साथ-साथ नहीं कर सकते। थोड़ी देर ध्यान करोगे, लेकिन भीतर कोई झांक-झांक

कर देखता ही रहेगा कि अभी तक शांति नहीं मिली, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तीन दिन गुजर गए, अभी तक कुछ हुआ नहीं! अभी तक आनंद का कोई अनुभव नहीं हुआ!

तुम ऐसा ही समझो कि मैं तुमसे कहूं कि आओ, नदी चलें, तैरने में बड़ा आनंद है। तुम कहो निश्चित! तैरने में आनंद है? मैं भी आता हूं। लेकिन तुम तैरो कम और भीतर आशा बनाए रखो कि आनंद कब मिलेगा? अभी तक नहीं मिला! आधी नदी भी पार कर ली, अभी तक नहीं मिला! यह तो दूसरा किनारा भी करीब आने लगा, अभी तक नहीं मिला!

मिलेगा ही नहीं। क्योंकि आनंद का एक स्वभाव है कि तुम जब उसे नहीं खोजते, तभी वह तुम्हें खोजता है। जब तक तुम उसे खोजते हो, तब तक वह तुम्हें नहीं मिलता। क्योंकि जब तक तुम खोजते हो, तब तक तुम वर्तमान में नहीं होते, तुम्हारा मन तो कहीं और है--भविष्य में--अब मिलेगा, अब मिलेगा। और वह अभी मिलता है। जब तुम खोजते ही नहीं, जब तुम शुद्ध इस क्षण में होते हो--न कोई आशा, न कोई अपेक्षा, न कोई आकांक्षा, न कोई अभीप्सा--जब तुम इस क्षण में होते हो, तभी तुम पाते होः सब तरफ से बरस गया। बरस ही रहा था, तुम मौजूद न थे; तुम गैर-मौजूद थे; तुम अनुपस्थित थे; तुम भविष्य में भटकते थे आशा के सहारे, और आनंद यहां बंट रहा था, तुम कहीं और भटक रहे थे, मेल न हो पाया।

जिस दिन तुम वर्तमान में होते हो--और वर्तमान में होने का एक ही उपाय हैः सारी आशा, सारी आकांक्षा छूट जाए।

तो मैं उनको कहता हूं--ध्यान करो, आशा मत रखो; ध्यान को साधन मत बनाओ, ध्यान को साध्य समझो; करने में ही आनंद मानो, और आनंद मत मांगो; फल की आकांक्षा मत करो। अगर तुम कोई भी कृत्य बिना फल की आकांक्षा के कर सको, वही कृत्य ध्यान हो जाएगा।

कृष्ण ने अर्जुन को गीता में इतनी सी ही बात कही है, बार-बार दोहरा कर रही है, अनेक-अनेक रूपों में कहीं है--कि तू फलाकांक्षा मत कर। बस फलाकांक्षा ही संसार है। फलाकांक्षा का त्याग मोक्ष है। संसार से भागने की कोई भी जरूरत नहीं, बस फलाकांक्षा गिर जाए; तब तुम यहीं रहोगे और संसार मिट जाएगा।

"हे पागल, पत्नी और धन की चिंता में क्यों पड़ा है? क्या तुझे नहीं मालूम कि सज्जन का क्षण भर का संग इस संसार-सागर से पार ले जाने की एकमात्र नाव है?"

लेकिन मरते क्षण तक लोग व्यर्थ की चिंता में पड़े रहते हैं। सभी चिंताएं व्यर्थ की हैं। सार्थक का चिंतन होता है, चिंता नहीं होती।

मैंने सुना है, एक मारवाड़ी मर रहा था; मरणशय्या पर है। उसने अपनी पत्नी को पूछा कि बड़ा बेटा कहां है?

वह पास ही खड़ा है, पत्नी ने कहा, आप चिंता न करें।

अच्छा, और मंझला बेटा?

वह भी पास है, उसने कहा।

और छोटा बेटा?

वह पैर के पास खड़ा है, आप बिल्कुल चिंता न करें, आप शांति से सोएं।

मारवाड़ी उठा, उसने कहा, शांति से सोऊं--क्या मतलब? फिर दुकान कौन चला रहा है? सभी यहीं मौजूद हैं!

बाप मर रहा है, यह सोच कर सब बेटे वहां आ गए थे, दुकान बंद कर आए थे। लेकिन मरते बाप को भी मौत का कोई सवाल नहीं है--दुकान कौन चला रहा है? वह इसलिए भी नहीं पूछ रहा है कि कोई प्रेम है कि बड़ा बेटा कहां है, कि मंझला बेटा कहां है, कि छोटा बेटा कहां है। वह इसलिए पूछ रहा है कि दुकान का क्या हुआ! सभी यहीं मौजूद हैं? दुकान नहीं चल रही?

मौत के आखिरी क्षण तक भी तुम्हारे मन में दुकान ही चलती रहती है। चलेगी भी, क्योंकि जो जीवन भर चला है, वही मौत में भी चलेगा; तुम मौत में अचानक बदल न पाओगे अपने को।

तुम उन झूठी कथाओं में मत पड़ जाना, जिनमें कहा है कि कोई आदमी मरता था और उसके बेटे का नाम नारायण था, और उसने अपने बेटे को बुलाया कि नारायण, और ऊपर के नारायण धोखे में आ गए। इस धोखे में तुम मत पड़ना। ये कथाएं पंडितों ने गढ़ी हैं पापियों को सांत्वना देने के लिए। इन कथाओं के आधार पर पंडित थोड़ा-बहुत पैसा पापियों से छिटक लेते हैं। और कुछ होने का नहीं है।

ऊपर का नारायण धोखे में आ जाए, तो नारायण ही न रहा। और इस आदमी को स्वर्ग हो गया, क्योंकि मरते वक्त इसने नारायण को पुकारा। इतना सस्ता नारायण पाने योग्य भी न रह जाएगा। ऐसा मोक्ष दो कौड़ी का है, झूठ है। यह कहानी सच नहीं हो सकती।

जीवन भर का निचोड़ मौत में फलित होता है। तुमने जो जीवन भर गिना है, तुम मौत में वही गिनते हुए मरोगे। अगर तुम रुपये ही गिनते रहे हो, मरते वक्त भी संख्या चलती रहेगी; क्योंकि मौत तुम्हारे जीवन का सार-निचोड़ है। अगर जीवन भर अशांत रहे हो, अशांत मरोगे; अगर जीवन भर शांत रहे हो, तुम्हारी मौत महाशांति होगी।

हर व्यक्ति अलग ढंग की मौत मरता है, ध्यान रखना; क्योंकि हर व्यक्ति अलग ढंग का जीवन जीता है। न तो तुम्हारा जीवन एक सा है और न तुम्हारी मौत एक सी होगी।

जब बुद्ध मरते हैं तो उनकी मौत की महिमा और है। उनकी मौत की महिमा तुम्हारे तथाकथित जीवन से करोड़ गुना ज्यादा है। तुम्हारा जीवन भी उनकी मौत के मुकाबले नहीं है, उनकी मौत भी तुम्हारे जीवन से करोड़ गुना ज्यादा है। क्योंकि उस मौत के क्षण में सारा जीवन पास सिकुड़ आता है, सारे जीवन का संगीत सघनभूत हो जाता है--जैसे सारे जीवन के फूल निचोड़ लिए गए और इत्र बना लिया। मौत के क्षण में बुद्ध से जो सुगंध उठती है, वह जीवन भर के फूलों का निचोड़ है; और तुमसे जो दुर्गंध उठेगी, वह भी तुम्हारे जीवन भर के कूड़े-कर्कट का निचोड़ होगा।

मौत में अचानक न बदल सकोगे। इसलिए तुम पंडितों की बातों में मत पड़ना, जो तुमसे कहते हैं, धर्म आखिर में कर लेना। धर्म अगर करना है तो अभी और यहीं, आखिर के लिए मत स्थगित करना। क्योंकि आज से ही सम्हालोगे तो सम्हाल पाओगे, आज से ही जागोगे तो जागते जागते जाग पाओगे; आज से ही गुनगुनाओगे गोविन्द का नाम तोशायद मरते क्षण भी तुम्हारे ओंठ पर गोविन्द का नाम हो। और तभी ऊपर का गोविन्द सुन सकेगा।

तुम यह मत सोचना कि उधार पंडित तुम्हारे कान में मंत्रोच्चार कर देगा, कि गंगाजल तुम्हारे मुंह में डाल देंगे, और गीता तुम्हें सुना देंगे मरते वक्त। वह पंडित दोहराता रहेगा गीता, तुम्हें भीतर बिल्कुल सुनाई न पड़ेगी। जिसने जीवन भर श्रवण की कला सीखी, वही मरते क्षण में गीता को सुन सकता है; जिसने जीवन भर गोविन्द को भजा है, मरते क्षण किसी उधार नौकर-चाकर को, पेशेवर को बुला कर गोविन्द का भजन न

करवाना पड़ेगा; तुम्हारे भीतर के प्राण, तुम्हारी श्वास-श्वास, तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन गोविन्द को भजेगी।

मौत के उस क्षण में तुम महाधन्यभाग से भरे, नाचते हुए परमात्मा की तरफ जाओगे। तुम्हारी मौत महाजीवन का द्वार बन जाएगी; तुम मौत को बदल डालोगे। अभी मौत तुम्हें मारती है, तब तुम मौत को मार डालोगे। और धर्म मौत को मारने की कला है; वह अमृत होने का विज्ञान है।

"इसलिए हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

कदम कदम पर मंजिल

पहला प्रश्नः कहा जाता है कि शंकर हिंदू वेदांती थे और आपने कहा कि शंकर छिपे हुए बौद्ध हैं; इसे कृपया स्पष्ट करें।

शंकर छिपे हुए बौद्ध भी हैं, छिपे हुए जैन भी, छिपे हुए मुसलमान भी; वैसे ही जैसे बुद्ध छिपे हुए हिंदू हैं, छिपे हुए जैन भी, छिपे हुए ईसाई भी; और वैसे ही जैसे क्राइस्ट छिपे हुए हिंदू हैं, छिपे हुए मुसलमान, छिपे हुए बौद्ध भी। जिन्होंने जाना है, उन्होंने एक को ही जाना है; दो हैं ही नहीं जानने को। हिंदू, मुसलमान, ईसाई--सब ऊपर-ऊपर के नाम हैं, ऊपर की पहचान हैं; भीतर का सत्य एक है। भाषा अलग होगी; जो कहा गया है, वह अलग नहीं है; ढंग अलग होगा कहने का, समझाने की प्रक्रिया अलग होगी; लेकिन जो स्वाद मिला है, उसके अलग होने की कोई संभावना नहीं है।

इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है; इसकी नासमझी न मालूम कितने उपद्रव का कारण बनती है। हिंदू मुसलमान से लड़ते हैं, जैन बौद्धों से लड़ते हैं। और जहां किसी तरह का संघर्ष दिखाई पड़े, समझ लेना कि सत्य वहां से खो जाता है; तुम्हारे लड़ने में ही सत्य की हत्या हो जाती है; तुम्हारे संघर्ष में ही असत्य निर्मित हो जाता है। क्योंकि जहां भी संघर्ष है, वहीं हिंसा है; फिर चाहे हिंसा शरीर के संघर्ष में प्रकट हो या बुद्धि के संघर्ष में, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। दूसरे को मिटाने की चेष्टा चाहे शरीरगत हो और चाहे मानसिक, हिंसा हिंसा है। दूसरे में गलत देखने की आकांक्षा और वृत्ति हिंसा का ही फैलाव है। जब तक तुम विपरीत में भी स्वयं को न देख पाओ, तब तक जानना, मन से ऊपर उठना नहीं हुआ; चेतना के मंदिर में प्रवेश नहीं हुआ।

उस मंदिर के बहुत द्वार हैं और प्रत्येक द्वार से प्रवेश संभव है। और जो मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है, वह द्वार को भूल जाता है। कौन याद रखता है द्वार को प्रवेश के बाद? प्रवेश के पहले द्वार बहुत महत्वपूर्ण मालूम होता है, क्योंकि उससे ही प्रवेश करना है; लेकिन प्रवेश के बाद द्वार व्यर्थ हो जाता है। द्वार की तरफ पीठ हो जाती है प्रवेश के बाद, प्रवेश के पहले द्वार की तरफ आंख थी।

सब संप्रदाय द्वार हैं। और जब तक संप्रदाय तुम्हें बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़े--हिंदू, मुसलमान, जैन--तब तक जानना मंदिर में प्रवेश नहीं हुआ; अभी द्वार पर आंख अटकी है। जब मंदिर में प्रवेश हो जाएगा तो द्वार की तरफ पीठ हो जाएगी--न हिंदू अर्थपूर्ण रह जाएगा, न मुसलमान अर्थपूर्ण रह जाएगा।

वह जो महा अर्थ प्रकट होगा मंदिर के अंतरगृह में, वह तुम्हारे संप्रदाय को ही नहीं, तुम्हारे शास्त्र को ही नहीं, तुम्हें भी मिटा ले जाएगा; सब कुछ बह जाएगा उस बाढ़ में। और उस बाढ़ के बाद जो बच रहता है, वही तुम्हारा स्वभाव है। उस बाढ़ में, जो भी पर-भाव था, सब बह जाएगा; उस बाढ़ में, जो भी ऊपर के आवरण थे, सब बिखर जाएंगे; उस बाढ़ में, जो भी विजातीय था, उससे तुम्हारे संबंध टूट जाएंगे। केवल तुम बचोगे अपने शुद्धतम कुंआरेपन, अपनी निर्दोषिता में।

और उसका स्वरूप, तुम लाख उपाय करो, तो भी बिना अनुभव के नहीं समझा जा सकता; उसका स्वाद ही लेना होगा; उस मस्ती में डूबना ही होगा; उस नशे को पीना ही होगा। जब तक तुम मदमत्त होकर, सब भांति खोकर, सब कुछ लुटा कर उसमें न डूब जाओगे--जब तक तुम बाकी रहोगे, तब तक संसार बाकी रहेगा;

जब तुम मिट जाओगे, तभी परमात्मा शुरू होता है। जहां तक खुदी है, वहां तक खुदा नहीं है। और जहां खुदी की समाप्ति है, वहीं खुदा का प्रारंभ है।

शंकर छिपे हुए बौद्ध हैं, क्योंकि वे वही कह रहे हैं जो बुद्ध ने कहा। और बुद्ध भी छिपे हुए वेदांती थे, क्योंकि वे वही कह रहे थे जो उपनिषद ने कहा है। कपड़े अलग हैं। और कभी-कभी कपड़े विरोधी भी मालूम पड़ते हैं।

इसे थोड़ा समझें। बुद्ध ने उपनिषद और वेदों का विरोध किया, और फिर भी उन्होंने उपनिषद, वेद को ही सिद्ध किया। विरोध करना पड़ता है। उपनिषद जब जन्मे, जब उपनिषद की गंगा पैदा हुई, तो गंगा बड़ी स्वच्छ थी, निर्मल थी, गंगोत्री थी। फिर गंगा बही; हजारों लोगों का स्नान हुआ; हजारों गांवों से गुजरी--गंदी हुई, कूड़ा-कर्कट हुआ, नदी-नाले गिरे। जो गंगोत्री में गंगा की पवित्रता है, वह आकर काशी में नहीं रह जाती। वह रह नहीं सकती। जैसे-जैसे समय बीतता है, वैसे-वैसे मूल-स्रोत अपनी स्वच्छता को खो देता है।

उपनिषद जब पैदा हुए, बुद्ध के कोई ढाई हजार साल पहले, तब उनकी गरिमा अनूठी थी; उनके शब्द-शब्द में प्रकाश था, पंक्ति-पंक्ति में परमात्मा था। बुद्ध के समय तक वह गरिमा खो गई, धूल जम गई। दर्पण तो रहा, लेकिन बहुत धूल से भर गया। अब उसमें कोई प्रतिबिंब नहीं बनता था। अब दर्पण अंधा हो चुका था।

लेकिन दर्पण के आस-पास बड़ा संप्रदाय खड़ा हो गया था। अगर बुद्ध चेष्टा भी करें कि हम दर्पण को साफ कर दें, तो वे साफ नहीं करने देंगे। क्योंकि जिसे बुद्ध धूल कहते हैं, सांप्रदायिक बुद्धि उसी को अपना धर्म कहती है। दर्पण को तो सांप्रदायिक बुद्धि जानती भी नहीं, जमी हुई धूल को ही जानती है; वह धूल को हीशृंगार मानती है, धूल ही आभूषण है। कैसे राजी हो सकती है सांप्रदायिक बुद्धि कि तुम धूल कोझाड़ दो! उसका तो अर्थ हुआ हमारा धर्म ही नष्ट हो जाएगा।

इस धूल के कारण बुद्ध को इस दर्पण को भी इंकार करना पड़ा; क्योंकि जब तक इस दर्पण को इंकार न किया जाए, दूसरे दर्पण के लिए लोगों को राजी नहीं किया जा सकता। लेकिन दूसरा दर्पण ठीक वैसा ही दर्पण है जैसा पहला दर्पण था। फर्क इतना ही है कि पहला पुराना हो गया, जराजीर्ण हो गया, उस पर धूल जम गई। सत्य संगठित हो गया, बस मर जाता है। अब यह दूसरा सत्य फिर नया है--नवजात; सुबह की ओस की भांति ताजा। नया सत्य भी थोड़े दिन में फिर पुराना हो जाएगा।

शंकर के पैदा होते-होते बुद्ध का सत्य भी वैसा ही पुराना हो गया। समय किसी को भी क्षमा नहीं करता। और समय तो हर चीज पर धूल जमा देता है। जो चीज आज नई है, कल पुरानी हो जाएगी; जो आज छोटा सा नवजात शिशु है, कल बूढ़ा हो जाएगा; जिसके स्वागत में आज बैंड-बाजे बजाए थे, कल उसको मरघट पर विदा कर आना पड़ेगा।

जैसे व्यक्ति पैदा होते हैं और मर जाते हैं, वैसे ही धर्म भी पैदा होते हैं और मर जाते हैं! समय की धारा में जो भी प्रवेश करता है, वह जराजीर्ण होगा, बूढ़ा होगा, व्यर्थ होगा, कचरा हो जाएगा। लेकिन जब घर में कोई मर जाता है--मां मर जाए--कितना प्रेम किया था उसे, लेकिन मर जाने पर कितना ही रोओ, फिर भी मरघट ले जाना पड़ता है। अब कोई नासमझ अगर मां की लाश को घर में रख कर बैठ जाए, तो जो जिंदा हैं, उनका जीना मुश्किल हो जाएगा। माना कि उससे बहुत प्रेम था; और माना कि बड़ी पीड़ा होती है उसे जाकर चिता पर जला आने में। लेकिन फिर भी मजबूरी है, चिता पर ले जाना ही पड़ेगा; रोते हुए जाएंगे, छाती पीटते हुए जाएंगे, लेकिन चिता पर तो ले जाना ही पड़ेगा। लाश को घर में रखने का उपाय नहीं।

लेकिन जो समझ हम शरीर के साथ करते हैं, वही समझ हम संप्रदाय के साथ नहीं कर पाते। धर्म जीवित धर्म है, और जब संप्रदाय हो जाता है तो लाश है। पर लाश को हम सम्हाल कर रख लेते हैं। संप्रदाय की दुर्गंध के कारण फिर जीना मुश्किल ही हो जाता है। संप्रदाय लड़ते हैं, लड़ाते हैं। धर्म तो एक करवाता है। संप्रदाय तोड़ते हैं, तुड़वाते हैं। मंदिर और मस्जिद में बड़ा बैर है। मंदिर और मस्जिद के परमात्मा में तो बैर नहीं हो सकता। मंदिर और मस्जिद के मानने वाले में बड़ी शत्रुता है। लेकिन वह जिसकी पूजा चली है मंदिर में और जिसकी पूजा चली है मस्जिद में--और किसी ने उसको राम कह कर पुकारा है और किसी ने अल्लाह कह कर--ये संबोधन अलग होंगे, लेकिन जिसे पुकारा है, वह तो एक ही है।

शंकर के समय तक आते-आते बुद्ध की धारा भी गंदी हो गई; गंगोत्री न रही, वह भी काशी आ गई। शंकर को फिर खंडन करना पड़ा। क्योंकि अब बुद्ध को मानने वाले बौद्ध थे; बड़ा संप्रदाय था; और वे धूल को न झाड़ने देंगे। फिर नये दर्पण को निर्मित करना पड़ा। आज फिर हालत वैसी हो गई है--शंकर के दर्पण पर फिर धूल जम गई है। यह सदा ही होता रहेगा।

धूल को मत पूजना, दर्पण को खोजना। तब तुम एक सा ही दर्पण सभी के भीतर पाओगे। और जब तुम्हें एक सा दर्पण सभी के भीतर दिखाई पड़ने लगे, तभी तुम जानना तुममें सदबुद्धि का जन्म हुआ है। बुद्धि और सदबुद्धि का यही भेद है। बुद्धि खंडन करती है, आलोचना करती है, विरोध करती है, विवाद करती है; सदबुद्धि संवाद करती है। बुद्धि बताती है कि भेद कहां-कहां है; सदबुद्धि बताती है कि अभेद कहां है। बुद्धि विश्लेषण करती है, सदबुद्धि संश्लेषण करती है। बुद्धि सीमाएं खींचती है, सदबुद्धि सीमाएं मिटाती है। और जब सभी सीमाएं मिट जाती हैं, तभी असीम की उपलब्धि होती है।

ऐसा मत सोचना कि तुम सीमाओं में बंधे-बंधे असीम को जान लोगे। जानेगा कौन? अगर तुम्हीं सीमा में बंधे हो तो असीम को कैसे जानोगे? तुम जो भी जानोगे, वह सीमित हो जाएगा। असीम को जानना हो तो एक ही उपाय हैः अपनी सीमाओं को तोड़ डालना। खिड़की के भीतर से आकाश को देखोगे, तो उतना ही आकाश दिखाई पड़ेगा, जितना खिड़की का ढांचा होगा; उससे ज्यादा आकाश दिखाई नहीं पड़ सकेगा; खिड़की आकाश को भी सीमित कर देगी। अगर पूरे आकाश को देखना हो तो बाहर निकल आना घर के खुले आकाश के नीचे। वहां तुम हिंदू भी न रह जाओगे, मुसलमान भी न रह जाओगे; क्योंकि ये नाम खिड़कियों के हैं। खुले आकाश के नीचे तुम मात्र रह जाओगे। और वह तुम्हारा मात्र रह जाना शुद्ध अस्तित्व ही असीम को जानने का उपाय है। असीम को जानना हो तो असीम होना पड़ेगा। वही एकमात्र शर्त है। क्योंकि समान ही समान को जान सकता है। तुम सीमाओं में बंधे असीम को जानने चलोगे--कैसे जान पाओगे? तुम अपनी सीमाएं तो अपने साथ ही लेकर चलोगे; उन्हीं के भीतर से झांकोगे। तुम्हें वही दिखाई पड़ेगा, जो तुम्हारी सीमाएं दिखा सकती हैं।

शंकर ही छिपे हुए बौद्ध नहीं हैं, बुद्ध भी छिपे हुए वेदांती हैं।

जो भ्रष्ट हो चुका है, उसे नष्ट करना होता है; जो विकृत हो गया है, उसे विनाश करना होता है; जो जराजीर्ण हो गया है, उसे चिता पर रखना होता है--ताकि नये के लिए स्थान रिक्त हो जाए।

मन कहता है, पुराने को बचा लो। मन कहता है, पुराने को सम्हाल लो। लेकिन अगर तुम पुराने को बहुत सम्हाले जाओगे, तो नये को जगह न मिलेगी। बूढ़े का जाना जरूरी है, ताकि बच्चे आ सकें। जराजीर्ण वृक्ष गिरेगा, ताकि नये अंकुर फूट सकें।

मैंने सुना है, एक बहुत पुराना चर्च था। वह जराजीर्ण हो गया था; हवा चलती तो लगता कि अब गिरा, तब गिरा। उसमें पूजा करने वाले लोग भी डरने लगे थे; कभी भी गिर सकता था। आखिर ट्रस्टियों ने बैठक की

कि अब कुछ करना ही होगा। अब तो पुजारी भी भीतर आने से डरता है, पूजा करने वाले भी डरते हैं, पास से गुजरने वाले भी चर्च के भयभीत होते हैं; क्योंकि कब गिर जाए! किसकी जान ले ले! रास्ता भी निर्जन हो गया है, उससे कोई गुजरता नहीं।

तो उन्होंने तीन प्रस्ताव स्वीकार किए। एक कि पुराने चर्च को गिराना पड़ेगा। अत्यंत दुख से, सर्वसम्मति से उन्होंने स्वीकार किया। और दूसरा कि नये चर्च को बनाना पड़ेगा।

यह बड़ी पीड़ा से स्वीकार किया, क्योंकि पुराने से मोह बन जाते हैं। नये से तो परिचय ही नहीं है अभी, नया तो अभी पैदा ही नहीं हुआ; तो नये से तो मोह कैसे हो सकता है! पुराने से मोह होता है। इसलिए तो अगर छोटा बच्चा मर जाए तो उतना दुख नहीं होता। जैसे-जैसे उसकी उम्र बड़ी होने लगी कि उतना ज्यादा दुख होगा; क्योंकि उतना परिचय हो जाएगा; उतना संबंध बन जाएगा; उतने राग निर्मित हो जाएंगे।

पुराने को गिराना है--दुख से; नये को बनाना है--मजबूरी है; और तीसरा प्रस्ताव उन्होंने पास किया कि नये चर्च को हम पुराने चर्च की जगह ही बनाएंगे। और जब तक नया न बन जाए, तब तक हम पुराने का उपयोग जारी रखेंगे! और नये चर्च में हम पुराने चर्च के ही पत्थरों का उपयोग करेंगे। और जब तक बन न जाए नया चर्च, तब तक हम पुराने का उपयोग जारी रखेंगे। और यह भी सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया उन्होंने!

वह चर्च अब भी खड़ा है! वह गिर नहीं सकता। मोह मन के बड़े गहरे हैं।

और मैं उसी व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं, जो पुराने को छोड़ कर नित-नूतन और नवीन में जागता चला जाए। जो सदा अपने कुंआरेपन को बचाने में समर्थ है, वही धार्मिक है। जो प्रतिपल अतीत से ऐसे ही बाहर निकल आता है, जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ कर बाहर निकल आता है; फिर पीछे लौट कर भी नहीं देखता।

अगर तुम सद्यःनूतन को साध लो, अगर तुम प्रतिपल नये में जीवित हो जाओ, अगर तुम पुराने कूड़े-कबाड़ को न ढोओ, तो उस नवीनता में ही तुम सनातन को पा लोगे। उस प्रतिपल नये होने में ही परमात्मा छिपा है।

दूसरा प्रश्नः शंकर और आप गोविन्द का भजन करने को कहने के पहले हमें हर बार मूढ़ कह कर क्यों संबोधित करते हैं?

क्योंकि तुम हो! कुछ अन्यथा कहना झूठ होगा। और शंकर जब कहते हैंः "भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।" तो बड़े प्रेम से कहते हैं; उनकी करुणा के कारण कहते हैं। वे तुम्हें गाली नहीं दे रहे हैं। क्योंकि शंकर तो गाली दे कैसे सकते हैं! शंकर से तो गाली निकल नहीं सकती; वह तो असंभव है। वे तुम्हें चेता रहे हैं, वे तुम्हें जगा रहे हैं, वे तुम्हें धक्का दे रहे हैं। वे कह रहे हैं--उठो! सुबह हुई बड़ी देर हो गई और तुम अभी तक सो रहे हो!

वे मूढ़ कहते हैं, क्योंकि जब तक वे कुछ कठोर शब्द न कहें, तुम्हारी नींद न टूटेगी। और वे मूढ़ कहते हैं, क्योंकि यही सत्य है, यही यथार्थ है।

मूढ़ता का अर्थ हैः मूर्च्छा। मूढ़ता का अर्थ हैः सोए-सोए जीना। मूढ़ता का अर्थ हैः विवेकहीनता। मूढ़ता का अर्थ हैः जागरण की कमी, होश का न होना।

जब तुम क्रोध में होते हो, तब तुम ज्यादा मूढ़ हो जाते हो; क्योंकि तब होश और भी खो जाता है। लेकिन कभी-कभी तुम होश में होते हो, तब तुम उतने मूढ़ नहीं होते। और तुम भी जानते हो कि कभी तुम कम मूढ़ होते हो, कभी ज्यादा मूढ़ होते हो। कभी मन में मोह भर जाता है तो मूढ़ता बढ़ जाती है; कभी मन में वासना भर जाती है तो मूढ़ता बढ़ जाती है।

तुलसीदास के जीवन में कथा है कि पत्नी मायके गई थी। तो वर्षा की रात में सांप को पकड़ कर वे चढ़ गए। घर के पीछे से प्रवेश कर रहे थे चोर की भांति। बड़ी गहरी मूढ़ता रही होगी कि सांप भी दिखाई न पड़ा, रस्सी समझ में आया। वासना बड़ी तीव्र रही होगी; कामना ने बिल्कुल अंधा कर दिया होगा; आंखें बिल्कुल अंधेरे से भर गई होंगी। नहीं तो सांप दिखाई न पड़े!

हालत तो ऐसी है कि अक्सर रस्सी में सांप दिखाई पड़ जाता है--भय के कारण। मौत आदमी को डराती है। राह पर रस्सी पड़ी हो तो सांप दिख जाता है। इससे उलटी हालत हुई--सांप था और तुलसीदास ने समझा कि रस्सी है और चढ़ गए! पकड़ा, तब भी स्पर्श से पता न चला। बिल्कुल मूर्च्छित रहे होंगे! कामवासना ने पागल कर दिया होगा!

पत्नी ने कहा देख कर यह दशा कि जितना प्रेम मुझसे है, अगर इतना ही प्रेम परमात्मा से होता, तो तुम अब तक महापद के अधिकारी हो जाते। पीछे लौट कर सांप को देखा--ख्याल आया, वासना अंधा बना देती है--जीवन में एक क्रांति घटित हो गई। पत्नी गुरु बन गई। वासना ने निर्वासिना की तरफ जगा दिया। संन्यस्त जीवन हो गया। परमात्मा को खोजने लगे। काम में जोशक्ति लगी थी, वह राम की तलाश करने लगी। जो ऊर्जा काम बनती थी, वही ऊर्जा राम बनने लगी।

मूढ़ता ही वही ऊर्जा है। जो आज सोई-सोई है, वही कल जागेगी; जो आज छिपी पड़ी है, वही कल प्रकट होगी। मूढ़ता ही प्रज्ञा बनेगी। वह जो तुम्हारी नींद है, वही तुम्हारा जागरण बनेगी। इसलिए उससे नाराज मत होना; और न ही मन में निंदा से भरना; और न ही अपनी मूढ़ता को छिपाने की कोशिश करना।

बहुत लोग वही कर रहे हैं! वे महामूढ़ हैं, जो मूढ़ता को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। तो तुम छोटी-मोटी जानकारी इकट्ठी कर लेते हो; अपनी मूढ़ता को जानकारी से ढांक लेते हो। भीतर घाव रहते हैं, ऊपर से तुम फूल लगा लेते हो। शास्त्र से उधार लिया ज्ञान ऐसे ही फूल हैं, दूसरों से उधार ली जानकारी ऐसे ही फूल हैं, जिनमें तुम ढांक लेते हो मूढ़ता को और भूल जाते हो।

मूढ़ता को भूलना नहीं है, मूढ़ता को याद रखना है। क्योंकि याद रखो तो ही उसे मिटाया जा सकता है; भूल गए तो मिटाना असंभव है। इसलिए शंकर पद-पद पर दोहराते हैंः भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते। तुम्हारी बेहोशी को देख कर करुणावश दोहराते हैं। तुम्हें याद रहे कि तुम मूढ़ हो, यह कहीं भूल न जाए। और तुम्हारी पूरी चेष्टा है कि भूल जाए। तुम पूरे उपाय करते हो कि किसी तरह यह बात भूल जाए कि मैं मूढ़ हूं! तुम मान कर चलते हो कि मैं ज्ञानी हूं।

सिर्फ ज्ञानी ही मानते हैं कि वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी तो सभी मानते हैं कि वे ज्ञानी हैं। अज्ञानी तो बड़ी अकड़ से संघर्ष करता है अपने ज्ञान का। वह तो मानने को राजी नहीं होता है कि मैं नहीं जानता हूं। सिर्फ परम ज्ञानी ही मानने को राजी होते हैं कि क्या हम जानते हैं!

एडीसन ने कहा है कि लोग कहते हैं कि मैं बहुत जानता हूं। और मेरी हालत ऐसी है, जैसे एक छोटे बच्चे ने सागर के किनारे कुछ शंख और सीप इकट्ठे कर लिए हों। इतना ही मेरा ज्ञान है--मुट्ठियों में थोड़े से शंख-सीप। और विराट सागर पड़ा है जिसको मैं जानता नहीं हूं।

तुम्हें अपना छोटा सा ज्ञान बहुत बड़ा मालूम पड़ता है! एक छोटा सा दीया जला लिया है, उसकी टिमटिमाती रोशनी पड़ती है चारों तरफ, थोड़ी सी जगह रोशन हो जाती है, इसको तुम ज्ञान कहते हो! और अनंत पड़ा है अंधकार से भरा, उसका तुम्हें कोई होश नहीं है! जब तुम समझोगे अपनी मूढ़ता को तो तुम कहोगे, यह भी कोई ज्ञान है--यह टिमटिमाती दीये की रोशनी! अनंत पड़ा है यात्रा के लिए, अनंत पड़ा है अन्वेषण के लिए, अनंत पड़ा है खोजने के लिए--और मैं इन शंख-सीपियों को हाथ में बटोर कर ज्ञानी हो रहा हूं! तब तुम इस ज्ञान को भी छोड़ दोगे। और जिस दिन तुम जानोगे कि तुम मूढ़ हो--इस होश से भरोगे--उसी दिन मूढ़ता पिघलने लगी। क्योंकि यह होश मूढ़ता के बाहर ले जाएगा। मूढ़ता बेहोशी है, तो होश के साथ टूटने लगेगी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर किसी पागल को यह समझ में आ जाए कि मैं पागल हूं, तो वह ठीक हो जाएगा। पागल को समझ में नहीं आता कि वह पागल है; वह तो यही समझता है कि दुनिया पागल है।

खलील जिब्रान ने लिखा है कि एक मित्र पागल हो गया, तो वह उससे मिलने पागलखाने गया। वह एक बेंच पर बैठा था बगीचे की, पागलखाने की। जिब्रान उसके पास जाकर बैठ गया और उसने बड़े दया-भाव से कहा कि मित्र, बड़ा दुख होता है तुम्हें यहां देख कर।

उसने बड़े गौर से जिब्रान को देखा और कहा, दुख! दुख किस बात का?

जिब्रान ने कहा, यह देख कर कि तुम्हें पागलखाने आना पड़ा।

वह पागल हंसने लगा। उसने कहा, तुम गलती में हो। जब से हम यहां आए हैं, तब से ही हमें गैर-पागलों का सत्संग हुआ; बाहर तो सब पागल हैं, और उनसे छुटकारा हो गया, यह हमारा सौभाग्य है। तुम इसे पागलखाना समझ रहे हो! पागलखाना बाहर है--दीवालों के बाहर; यहां थोड़े से चुने हुए बुद्धिमान लोग रहते हैं।

पागल को समझ में कैसे आए कि वह पागल है? इतनी ही समझ होती तो वह पागल कैसे होता? और पागल को इतना ही समझ आ जाए कि मैं पागल हूं, तो पागलपन टूटने लगा।

ऐसा समझो कि रात तुम्हें नींद में समझ में आ जाए कि तुम सपना देख रहे हो, तो सपना टूटने लगा। सपना देखने के लिए जरूरी है कि तुम्हें याद न आए कि तुम सपना देख रहे हो। सुबह याद आएगी, जब सपना टूट जाएगा। जब सपना चल रहा है, तब तो तुम ऐसा ही समझोगे कि सब सत्य हो रहा है। अगर वहीं बीच सपने में याद आ जाए कि यह सपना है, उसी वक्त टूट जाएगा।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि बड़े सपने को तोड़ने के पहले छोटे सपनों को तोड़ना सीखो। यह बड़ा संसार माया है, इसको तुम तोड़ न पाओगे, जब तक तुम छोटे सपने ही नहीं तोड़ सकते। रात का सपना ही नहीं टूटता, तो दिन का सपना क्या खाक टूटेगा! तो गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि रात सोते वक्त--प्रति रात सोते वक्त एक ही ध्यान करते हुए सोओ कि जब सपना आए, तो साथ मुझे याद भी आ जाए कि यह सपना है।

कोई तीन साल लगते हैं रात का सपना तोड़ने में। तीन साल निरंतर प्रति रात्रि यही विचार, यही चिंतन, यही मनन, यही ध्यान करते सोते-सोते एक दिन ऐसी घड़ी आती है--परम सौभाग्य की घड़ी है वह--जिस दिन अचानक रात में सपने के साथ याद भी आ जाती है कि यह सपना है। बस इतनी याद आते ही सपना टूट जाता है और नींद में भी होश प्रवेश हो जाता है। उसी दिन से सपने खो जाते हैं, फिर सपने नहीं आते। और तभी तुम बड़े सपने में जाग सकते हो।

यह जो खुली आंख का सपना है, यह बड़ा सपना है।

रात का सपना तो निजी है, प्राइवेट है, अकेले-अकेले का है। पति भी अपनी पत्नी को अपने सपने में नहीं बुला सकता; एकदम निजी है। मित्र अपने मित्र को सपने में नहीं बुला सकता। कोई अपने सपने में किसी को साझीदार नहीं बना सकता; बड़ा आत्यंतिक है; अकेले का है।

यह सपना सामूहिक है, सार्वजनिक है। यह तो टूटना बहुत मुश्किल है; क्योंकि तुम्हारा अकेले का है भी नहीं--सबका सामूहिक है, संयुक्त है। लेकिन अगर पहला सपना टूट जाए तो फिर वही याद इस सपने में भी काम आ जाती है। फिर यही याद पर्याप्त है--कि इस जागते हुए में भी मुझे याद बनी रहे कि यह सपना है।

तुम कभी ख्याल करो, किसी ने तुम्हें गाली दी और तुम सिर्फ स्मरण कर लो कि यह सपना है; क्रोध असंभव हो जाएगा। तुम्हारी कोई बहुमूल्य चीज गिर गई और टूट गई, जरा स्मरण कर लो कि सब सपना है; दुख विलीन हो जाएगा। पत्नी मर गई, या पति मर गया, या बेटा चल बसा--मुश्किल होगा याद करना कि सब सपना है, लेकिन काश, तुम कर लो--दुख विसर्जित हो गया। जिसने जान लिया कि सपना है, उसे न फिर मौत हिला पाती है, न जीवन डिगा पाता है; न सुख सुख मालूम होता; न दुख दुख मालूम होता। इसी को तो बुद्धत्व कहा है, इसी को जिनत्व कहा है। यही परम प्रज्ञा है कि न दुख छुए, न सुख छुए।

शंकर तुम्हें याद दिला रहे हैं बार-बार कि तुम मूढ़ हो। नाराज मत होना; क्योंकि नाराज होने से शंकर का कुछ न बिगड़ेगा, नाराज होने से तुम सिर्फ इतना ही सिद्ध करोगे कि शंकर बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि तुम मूढ़ हो! शायद तुम महामूढ़ हो, वे सिर्फ मूढ़ ही कह रहे हैं--संकोचवश। तुम जिद्द करने मत लग जाना कि मैं मूढ़ नहीं हूं; नहीं तो वही तुम्हारी मूढ़ता का रक्षण बन जाएगा। तुम स्वीकार कर लेना। तुम्हारे स्वीकार से ही मूढ़ता टूटेगी। तुम न केवल स्वीकार करना, बल्कि तुम स्वयं को स्मरण दिलाते रहना उठते-बैठते कि मैं मूढ़ हूं, मूर्च्छित हूं, नासमझ हूं, पागल हूं। तुम्हारे कृत्य बदल जाएंगे; तुम्हारा गुणधर्म बदल जाएगा; तुम्हारी चेतना एक नई दिशा में गतिमान हो जाएगी। काश, तुम याद रख सको कि तुम नासमझ हो, तो तुम में समझदारी का सूत्रपात हो गया।

अज्ञान की पहचान ज्ञान का पहला चरण है। और अंधेरे को ठीक से समझ लेना प्रकाश जलाने की पहली शुरुआत है। जो अंधेरे को ही अंधेरा नहीं समझता, जो अंधेपन को अंधापन नहीं समझता, वह आंख की तलाश क्यों करेगा?

तुम चिकित्सक के पास जाते हो, चिकित्सक इसकी फिक्र नहीं करता कि तुम्हें कौन सी औषधि दी जाए; पहले फिक्र करता है कि निदान किया जाए, डायग्नोसिस ठीक हो। निदान पहली बात है, चिकित्सा दूसरी बात है। औषधि को खोज लेना सरल है, अगर निदान बिल्कुल ठीक-ठीक हो जाए। अगर ठीक से बीमारी पकड़ में आ जाए तो औषधि बहुत बड़ी बात नहीं है। इसलिए बड़े चिकित्सक निदान का पैसा लेते हैं, औषधि बताने का नहीं। औषधि तो फिर कोई भी बता सकता है। अगर बीमारी पर हाथ पड़ गया तो औषधि ज्यादा दूर नहीं, वह तो बोतल में भरी रखी है। एक दफा साफ समझ में आ गया कि यह बीमारी है, तो औषधि तो अपने आप मिल जाएगी, कोई बड़ी अड़चन की बात नहीं है।

शंकर बार-बार कह रहे हैं तुमसे कि हे मूढ़, गोविन्द को भजो!

वे तुम्हारी बीमारी का निदान कर रहे हैं। मूढ़ता तुम्हारी बीमारी है, गोविन्द का भजन औषधि है। मगर मूढ़ ही अगर तुम नहीं हो तो भजन तुम गोविन्द का क्यों करोगे? अगर तुमने माना कि मैं बीमार ही नहीं हूं तो चिकित्सा तुम क्यों लोगे? अगर तुम अपनी बीमारी की ही रक्षा कर रहे हो और तुम दावा करते हो कि मेरी बीमारी मेरा स्वास्थ्य है, तो फिर तुम असाध्य हो, फिर तुम्हारा उपचार नहीं हो सकता।

तीसरा प्रश्नः रेचन करता हूं तो केवल क्रोध, ईर्ष्या, दुख आदि के नकारात्मक भाव ही बाहर आते हैं। प्रेम, भक्ति, आनंद और धर्म के भाव क्यों बाहर प्रकट नहीं होते? क्या वे मेरे भीतर नहीं हैं?

वे भीतर हैं, लेकिन जरा और भीतर हैं। जैसे कोई कुएं को खोदता है, तो पहले तो कंकड़-पत्थर, मिट्टी ही हाथ आती है, जल थोड़े ही एकदम से हाथ आ जाता है। फिर हर एक की जमीन भी अलग-अलग है--कहीं तीस फीट पर पानी निकल आता है, कहीं साठ फीट पर पानी निकलता है। पानी जरूर है। ऐसी कोई भी जमीन नहीं है, जिसके नीचे पानी न हो; गहराई का फर्क हो सकता है। अगर कोई सरल चित्त व्यक्ति खोदेगा, तो जल्दी ही पानी मिल जाएगा दो-चार-दस फीट की गहराई पर; अगर कोई जटिल चित्त व्यक्ति खोदेगा तो हो सकता है, पचास-साठ फीट की गहराई पर मिले। अगर कोई निर्दोष-मन व्यक्ति खोजेगा तो जल्दी पा लेगा, अगर कोई हिंसक, क्रोधी, तमसांध व्यक्ति खोजेगा तो देर लगेगी। पर एक बात तय है कि भेद मिट्टी की पर्त में होगा, जल सबके भीतर है; आत्मा सबके भीतर है; परमात्मा सबके भीतर है--भेद कर्मों की पर्त का होगा।

और जब तुम पहले-पहले खोदोगे तो सीधा परमात्मा हाथ नहीं लगेगा, पहले तो कर्मों की पर्त ही हाथ लगेगी; क्योंकि वही तुम्हारे चारों तरफ घिरी है। पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ लगते हैं कुआं खोदने में। उनसे घबड़ा मत जाना। वह अच्छी शुरुआत है। वे खबर दे रहे हैं कि ठीक है, यात्रा शुरू हुई। कंकड़-पत्थर हाथ लगेंगे, फिर कूड़ा-कर्कट हाथ लगेगा, फिर अच्छी भूमि हाथ आएगी, फिर गीली भूमि हाथ आएगी। तुम रोज कदम-कदम करीब पहुंच रहे हो। गीली भूमि जब करीब आ जाए, तब तुम समझना कि अब जल ज्यादा दूर नहीं है।

जल सबके भीतर है; क्योंकि जल न हो तो तुम जीओगे कैसे? जीवन सबके भीतर है; जीवन न हो तो तुम होओगे कैसे? कितना ही दूर छिपा रखा हो उसे तुमने, कितने ही आवरण तुमने अपने आस-पास बना लिए हों, लेकिन इससे तुम उसे नष्ट नहीं कर पाते। आत्मा तुम्हारे कर्मों से दब सकती है, नष्ट नहीं होती। अब यह तुम पर निर्भर है कि तुमने कितना दबाया है, उतना ही रेचन करना पड़ेगा। और जन्मों-जन्मों में हमने दबाया है, इसलिए घबड़ाना मत।

"रेचन करता हूं तो केवल क्रोध, ईर्ष्या, दुख आदि के नकारात्मक भाव ही हाथ आते हैं।"

ठीक है, शुभ लक्षण है। उलीच डालो इनको।

जब ये बिल्कुल उलीच डालोगे, तो इनके नीचे ही छुपी हुई तुम दूसरी धाराएं भी पाओगे। जिस दिन तुम्हारे भीतर से क्रोध बिल्कुल उखाड़ कर फेंक दिया जाएगा, उस दिन तुम पाओगे, करुणा हाथ आने लगी; क्योंकि करुणा क्रोध का दूसरा पहलू है। जिस दिन तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर से हिंसा बिल्कुल उखड़ गई, वहीं से अहिंसा की शुरुआत हो जाएगी।

जब तक तुम पाओ कि नकारात्मक भाव मिल रहा है, तब तक घबड़ाना मत, खोदते चले जाना। उसके ही नीचे कहीं विधायक भाव भी छिपा है। लेकिन खुदाई करनी पड़ेगी, आलस्य से नहीं हो सकेगा। सतत श्रम जरूरी है। और सतत जागरूकता जरूरी है; क्योंकि एक हाथ से तुम खोद सकते हो और दूसरे हाथ से पत्थर-मिट्टी वापस डाल सकते हो। सुबह ध्यान जब करोगे तो क्रोध को बाहर निकाल दोगे और दिन भर बाजार में क्रोध को फिर इकट्ठा कर लोगे। तब तो फिर यह खुदाई कभी न हो पाएगी। यह तो ऐसा हुआ कि किसी आदमी ने दिन भर कुआं खोदा और रात भर मजदूर लगा कर उसे वापस पुरवा दिया; फिर दूसरे दिन सुबह कुएं को खोदना शुरू कर दिया।

जीसस की एक कथा है कि एक आदमी ने गेहूं का खेत बोया। लेकिन अचानक पाया कि कोई व्यक्ति घास-पात के बीज उसमें फेंक गया है--उसके खेत को नष्ट करने को। नौकर बहुत चिंतित हुए। और जो प्रधान नौकर था, वह तो बहुत ही चिंतित हुआ। उन सबने बैठक की कि क्या करें, यह तो सारी फसल खराब हो जाएगी! मालिक से पूछा। मालिक ने कहा, अभी जल्दी मत करो। अब अभी अगर तुम घास-पात को उखाड़ने जाओगे, तो गेहूं के नन्हे पौधे मर जाएंगे। अब फसल जब काटेंगे, तभी दोनों को अलग कर लेंगे।

नौकरों को बात जंची नहीं। नौकरों ने आपस में सोचा कि यह बात तो ठीक नहीं है, बुराई को अभी मिटा देना उचित है। लेकिन मालिक अगर गलत भी कहे तो मानना पड़ता है। फिर भी उन्होंने कहा, हम खोज-बीन जारी रखें कि किसने यह शरारत की है? और हमारा मालिक इतना भला आदमी है, सज्जन है। किसने उसके साथ ऐसी शत्रुता की है?

उन्होंने बहुत खोजा, लेकिन कोई पता न चला। लेकिन एक सांझ एक नौकर आया प्रधान नौकर के पास और उसने कहा कि मुझे क्षमा कर दें, अब और ज्यादा देर मैं यह राज छुपाने में असमर्थ हूं। मैं जानता हूं कि किसने ये घास-पात के बीज फेंके हैं; क्योंकि मैं उस समय जाग रहा था, और मैंने उस आदमी को मेरी आंख के सामने से खेत में जाते देखा। लेकिन मुझे लगता है वह आदमी होश में नहीं था; क्योंकि मैं सामने खड़ा था और उसने न तो मुझे पहचाना और न मुझे देखा; वह जैसे नींद में था। अब तक मैं छिपाए रहा, अब छिपाना मुश्किल हो रहा है।

प्रधान नौकर तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा कि तुम इतनी देर क्यों छिपाए?

उस नौकर ने कहा, अभी भी मेरी हिम्मत नहीं थी आकर कहने की, लेकिन अब बरदाश्त के बाहर है; पहले मेरी पूरी कथा सुन लो।

प्रधान ने कहा, तुम पहले उस आदमी का नाम बताओ, वह कौन है? उसे सजा दी जाएगी।

वह नौकर जो रहस्य का उदघाटन करने आया था, सिर झुका कर बैठ गया। प्रधान ने पूछा, तुम बोलते क्यों नहीं, उसका नाम लो, डर क्या है?

उस नौकर ने कहा, तुम भरोसा न कर सकोगे, वह हमारे मालिक ने ही वे बीज फेंके हैं; वह घास-पात भी, हमारे मालिक ने ही वे बीज फेंके हैं।

तब दोनों ने तय किया कि इस बात को छिपा कर ही रखना उचित है, किसी से कहना उचित नहीं।

जीसस की यह कथा यह कहती है कि दिन में तुम जो बनाते हो, रात तुम मिटाते हो; रात नींद में, बेहोशी में तुम वही सब मिटा देते हो जो तुमने दिन में होश में बनाया था।

ऐसे लोग हैं, जिनको निद्रा में चलने का रोग होता है। ऐसे मामले पाए गए हैं, अदालतों में मुकदमे चले हैं। क्योंकि कोई स्त्री रात को उठ कर अपने ही कपड़ों में आग लगा देती है और रात सो जाती है। किसी को धोखा नहीं दे रही है, क्योंकि अपने ही कपड़े हैं, जिनका उसे बड़ा मूल्य और प्रेम है। और सुबह रोती-चिल्लाती है कि किसने कपड़े जला दिए?

अब कमरे में कोई आया नहीं। पति सोया है, पत्नी सोई है, कोई और आया नहीं। पति जला नहीं सकता, पत्नी के तो जलाने का सवाल ही नहीं है। जरूर कोई भूत-प्रेत है। लेकिन खोज-बीन से पाया गया कि नींद में उठ कर वह स्त्री ही जलाती रही है; उसको निद्रा में उठने की बीमारी है।

ऐसे लोग हैं, जो नींद में उठ कर अपने चौके में पहुंच जाते हैं; कुछ खा-पीकर वापस आकर सो जाते हैं! सुबह तुम उनको पूछो, वे कहेंगे, हमें कुछ पता नहीं; हम उठे ही नहीं! शायद ज्यादा से ज्यादा उन्होंने रात में

सपना देखा हो कि उठ कर चौके में गए--अगर ज्यादा से ज्यादा याद करेंगे। लेकिन वे कहेंगे, वह सपना था। वह भी याद में नहीं आता।

प्रत्येक व्यक्ति इस बीमारी का शिकार है--गहरे अर्थों में। एक हाथ से तुम बनाते हो, दूसरे हाथ से तुम मिटाते हो। जिसको तुम प्रेम करते हो, उसी को घृणा करते हो; जिसको तुम सम्मान करते हो, उसी का मन में निरादर भी रखते हो। तुम विपरीत हो, खंडित हो; खुद के भीतर टूटे हो टुकड़ों में। तुम अपने प्रेम को अपनी घृणा से नष्ट कर देते हो और अपनी करुणा को अपने क्रोध से मिटा डालते हो। तुम जाते हो मंदिर में परमात्मा का स्मरण करने और मंदिर में भी बैठ कर बाजार का स्मरण करते हो। जरूरत ही न थी जाने की; बाजार में ही बैठ सकते थे। लेकिन तुम्हारी तकलीफ यह है कि जब तुम दुकान पर बैठते हो, तब मंदिर की याद भी आती है; ऐसा भी नहीं कि याद नहीं आती। पर जब तुम मंदिर में होते हो, तब दुकान की याद आती है।

मैंने सुना है, एक संन्यासी मरा। जिस दिन मरा, उसी दिन एक वेश्या भी मरी; दोनों आमने-सामने रहते थे। देवदूत लेने आए, तो संन्यासी को नरक की तरफ ले जाने लगे और वेश्या को स्वर्ग की तरफ। संन्यासी ने कहा, रुको, कुछ भूल हो गई मालूम होती है! यह क्या उलटा हो रहा है? मुझ संन्यासी को नरक की तरफ, वेश्या को स्वर्ग की तरफ! जरूर संदेश में कहीं कोई भूल-चूक हो गई है। संसार का इतना बड़ा काम है, भूल-चूक हो सकती है। छोटी-मोटी सरकारें भूल करती हैं, तो पूरे विश्व की व्यवस्था में भूल हो जाना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। तुम फिर से पता लगा कर आओ।

शक तो देवदूतों को भी हुआ। उन्होंने कहा, भूल कभी हुई तो नहीं; लेकिन मामला तो साफ दिखता है कि यह वेश्या है और तुम संन्यासी हो। वे गए। लेकिन ऊपर से खबर आई कि कोई भूल-चूक नहीं है; जो होना था, वही हुआ है। वेश्या को स्वर्ग ले आओ, संन्यासी को नरक में डाल दो। अगर ज्यादा जिद करे, तो उसे समझा देना कि कारण यह है।

जिद संन्यासी ने की, तो देवदूतों को कारण बताना पड़ा। कारण यह था कि संन्यासी रहता तो मंदिर में था, लेकिन सोचता सदा वेश्या की था; पूजा तो करता था, आरती तो उतारता था भगवान की, लेकिन मन में प्रतिमा वेश्या की होती थी। और जब वेश्या के घर में रात राग-रंग होता, बाजे बजते, नाच होता, कहकहे उठते, नशे में डूब कर लोग उन्मत्त होते, तो उसको ऐसा लगता कि मैंने अपना जीवन व्यर्थ ही गंवाया। आनंद वहां है, मैं यहां क्या कर रहा हूं--इस निर्जन में बैठा, इस खाली मंदिर में, यह पत्थर की मूर्ति के सामने! पता नहीं, भगवान है भी! शक पैदा होता। और रात जाग कर वह करवटें बदलता; और वेश्या को भोगने के सपने देखता।

और वेश्या की हालत ऐसी थी कि वह वेश्या थी--लोगों को रिझाती भी, नाचती भी--पर मन उसका मंदिर में लगा था। वह सदा यह सोचती--जब मंदिर की घंटियां बजतीं--तो वह सोचती कि कब मेरे इस भाग्य का उदय होगा कि मैं भी मंदिर में प्रवेश कर सकूंगी। मैं अभागी, मैंने अपना जीवन गंदगी में बिता दिया। अगले जन्म में, हे परमात्मा, मुझे मंदिर की पुजारिन बना देना! मुझे मंदिर की सीढ़ियों की धूल भी बना देगा तो भी चलेगा--उनके पैरों के नीचे पड़ी रहूं जो पूजा को आते हैं, उतना भी बहुत है। जब मंदिर में सुगंध उठती धूप की, तो वह आनंदमग्न हो जाती। वह कहती, यह भी क्या कम सौभाग्य है कि मैं मंदिर के निकट हूं! बहुत हैं, जो मंदिर से दूर हैं। माना कि पापिनी हूं; लेकिन जब भी पुजारी पूजा करता, तब भी वह आंख बंद करके बैठ जाती।

पुजारी वेश्या की सोचता, वेश्या पूजा की सोचती। पुजारी नरक चला गया, वेश्या स्वर्ग चली गई।

आदमी बड़ी दुविधा में है। तुम जब बाजार में होते हो, मंदिर की सोचते हो। गृहस्थ संन्यस्त होने की सोचते हैं। और तुम्हारे साधु पछताते हैं कि पता नहीं, कोई भूल तो नहीं हो गई; कहीं चूक तो नहीं गए; कहीं

ऐसा तो नहीं कि यही जीवन सब कुछ है और हम नाहक ही सपने में बैठे हैं कि अगला जीवन होगा, स्वर्ग होगा, मोक्ष होगा--कौन देख आया है!

मेरे पास कभी-कभी संन्यासी आ जाते हैं--वृद्ध संन्यासी; ईमानदार लोग; क्योंकि बेईमान तो यह बात किसी को कहते नहीं, अपने भीतर ही रखते हैं। ईमानदार संन्यासी, वे मुझे कभी-कभी आकर कह जाते हैं कि हम सत्तर वर्ष के हो गए, चालीस साल संन्यस्त हुए हो गए, लेकिन अभी तक कुछ मिला नहीं। और अब तोशक भी होने लगा कि है भी, या हम यूं ही गंवा दिए जीवन को! जो भोगने को था, वह भी न भोगा; और जो है ही नहीं, उसकी आशा में जीवन गंवाया! ये ईमानदार लोग हैं। ये जो कह रहे हैं, ये प्रामाणिक हैं, ये छिपा नहीं रहे हैं।

तुम अगर अपने संन्यासियों की भीतरी कथा जान लो, तो तुम बड़े चकित होओगे; तुम्हारे सिर फिर उनके चरणों में झुकना मुश्किल हो जाएंगे। क्योंकि तुम तो सोच रहे हो कि उन्हें आनंद मिल गया, शांति मिल गई, परमात्मा मिल गया। उनमें से अधिक को कुछ भी नहीं मिला है; वे तुमसे भी बुरी हालत में हैं। उनका संसार तो खो गया है, यह बात पक्की है; परमात्मा नहीं मिला है।

अब यह थोड़ा जटिल है। संसार के खो जाने से ही परमात्मा नहीं मिलता। असलियत तो ऐसी है कि परमात्मा मिल जाए तो ही संसार खोता है। अंधेरे को हटाने से थोड़े ही प्रकाश पैदा होता है, प्रकाश आ जाए तो अंधेरा हटता है। तो संन्यास कोई नकार नहीं है, विधेय है। पाना पहले होता है, छूटना बाद में होता है। और यह ठीक भी है। जब तक तुम्हें सार्थक का दर्शन न हो जाए, तब तक तुम व्यर्थ को छोड़ोगे कैसे? सार्थक का दर्शन ही तो व्यर्थ के छोड़ने का साहस बनेगा। सार्थक को देख लोगे, तो व्यर्थ अपने से छूटना शुरू हो जाएगा; उसे छोड़ना भी न पड़ेगा, छोड़ने की पीड़ा भी न होगी; तुम्हारे कदम सार्थक की तरफ आनंद-भाव से बढ़ने लगेंगे, तुम पीछे लौट कर भी न देखोगे। और संन्यास वही है, जो पीछे लौट कर न देखे; पीछे लौट कर देखा तो संन्यास अधकचरा है।

शुरू में तो, नकारात्मक भाव तुम्हारे भीतर पड़े हैं, उन्हें निकालना है। शुरू में तो बीमारी उलीचनी है। स्वास्थ्य बीमारी में दबा है। जब बीमारी उलिच जाएगी, रेचन हो जाएगा, तो स्वास्थ्य का आविर्भाव होगा। इससे घबड़ाओ मत, इसे भी सौभाग्य समझो कि बीमारी को उलीचने का अवसर मिला है। अगर बीमारी उलीच दी गई, तो स्वास्थ्य का जल बहुत दूर नहीं है। जरा तुम्हारे ऊपर कचरा है, उसे हटाना है। और एक बार कचरा हट जाए तो तुम्हारे भीतर उतना ही शुद्ध जल है, जितना महावीर, बुद्ध, शंकर के भीतर है। स्वभाव से तुम ठीक वैसे ही हो। स्वभाव में रत्ती भर फर्क नहीं है। हो नहीं सकता। स्वभाव का अर्थ ही यही है कि उसमें कोई फर्क नहीं है। पर उस स्वभाव तक पहुंचने के लिए बड़ी खुदाई करनी जरूरी है। जितनी जल्दी शुरू कर दो, उतना श्रेयस्कर। और ध्यान यही रखना कि जो उलीचो, उसे फिर बार-बार भरते मत जाना। ध्यान में जिसे उलीचो, फिर ध्यान रखना दिन भर कि उसे वापस भर तो नहीं रहे हो गड्ढे में? अन्यथा जीवन भर श्रम भी करोगे, उपलब्धि भी कुछ न होगी। बहुत लोग बहुत बार खोदना शुरू करते हैं।

बहुत बड़ा सूफी फकीर हुआ, जलालुद्दीन रूमी। वह अपने विद्यार्थियों को एक दिन पास के खेत में ले गया। उसने वहां जाकर उनको बताया--सारा खेत खराब हो गया था। वह जो खेत का मालिक था, उसने पहले कुआं खोदना शुरू किया एक। कोई पंद्रह-बीस फीट खोदा, फिर पाया कि जल नहीं मिलता, तो दूसरी जगह खोदना शुरू किया। पागल रहा होगा। दूसरी जगह भी खोदा, वहां भी नहीं मिला, तो उसने तीसरी जगह खोदना शुरू कर दिया। उसने आठ गड्ढे खोद डाले, सारा खेत खराब हो गया। अब वह नौवां खोद रहा था।

जलालुद्दीन ने कहा, इस आदमी को देखो! अगर इसने यह सारा श्रम एक ही जगह लगाया होता, तो जल कितना ही दूर होता तो भी मिल गया होता। लेकिन यह दस-बीस फीट खोदता है और सोचता है कि जब इतने दूर तक नहीं मिला तो आगे कैसे मिलेगा! तो कहीं और खोदो, इस जगह जल नहीं है। फिर दस-बीस फीट खोदता है। ऐसे यह आठ गड्ढे खोद चुका है। सब मिल कर एक सौ साठ फीट की खुदाई हो चुकी है और जल नहीं मिला! अगर एक सौ साठ फीट यह एक ही जगह खोद लेता, तो जल मिलना सुनिश्चित है।

तुम जीवन में बहुत बार खुदाई शुरू करोगे। कभी ध्यान शुरू कर देते हो, जोश आ जाता है; पंद्रह दिन, महीना चला, फिर शांत हो गए! फिर दो-चार साल बाद ख्याल आया, फिर थोड़ी सी खुदाई की, फिर शांत हो गए! ऐसे तुम कई गड्ढे खोद लोगे, लेकिन जल तक न पहुंचोगे; तुम्हारा खेत खराब हो जाएगा। और अगर यह तुम्हारी आदत बन गई कि दस-पांच दिन कर लेना और छोड़ देना, इससे तो बेहतर है तुम खोदते ही न; क्योंकि वह व्यर्थ गया श्रम है। जब तक जल ही न मिल जाए, तब तक किया गया श्रम व्यर्थ है। सातत्य चाहिए।

और ध्यान रखना, जल की सतत धार पत्थरों को भी तोड़ देती है--कोमल जल की सतत धार पत्थरों को तोड़ देती है। ध्यान की सतत धार, कितनी ही बड़ी चट्टानें तुम्हारे आस-पास हों, उनको तोड़ देगी। आज लगे भला कि क्रोध बहुत तगड़ा है, मजबूत है; ध्यान से कैसे टूटेगा? लेकिन टूटता है; सदा टूटा है। चट्टान उसकी मजबूत है और ध्यान बड़ा कोमल है, लेकिन यही जीवन का रहस्य है कि अगर कोमल की सततता बनी रहे, तो कठोर से कठोर भी टूट जाता है।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं कि भजन में खो जाना नशा है। यह भी कहते हैं कि तैरने में, खेल में, ध्यान में आनंद खोजने से आनंद खो जाता है और उनमें डूबने से आनंद स्वयं हमें खोज लेता है। कृपया डूबने तथा होश और बेहोशी की सीमा-रेखाओं को स्पष्ट करें।

खो जाने के लिए भजन करना नशा है; भजन करते-करते खो जाना नशा नहीं है।

फिर से दोहरा दूं। थोड़ा जटिल है, बारीक है, लेकिन समझ में आ जाएगा। खो जाने के लिए भजन करना नशा है--सिर्फ खो जाने के लिए।

जीवन में चिंता है, दुख है, पीड़ा है, तनाव है, अशांति है, संताप है। इससे बचना है; इसको भूलना है; कहीं भी अपने को व्यस्त कर लेना है, ताकि यह भूल जाए। तो कोई सिनेमा में जाकर बैठ जाता है, दो घंटे भूल जाता है; कोई शराबघर में बैठ जाता है, दो घंटे भूल जाता है; कोई मंदिर में जाकर कीर्तन करने लगता है, वहां भूल जाता है। ये भूलने की अलग-अलग विधियां हुईं, लेकिन तीनों की नजर एक है--चिंता को भूलना है।

लेकिन घर लौट कर चिंता प्रतीक्षा कर रही है। फिर तुम वही के वही हो, वे दो घंटे व्यर्थ ही गए; उनसे कुछ सार न हुआ। उन दो घंटों के कारण चिंता मिटेगी नहीं।

भूलने की खोज करना नशा है, शराब है। और तुम चाहो तो धर्म की भी शराब बना सकते हो। लेकिन भजन करते खो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। तुम खोने गए नहीं थे; तुम्हारी कोई आकांक्षा अपने को भूलने की न थी; तुम किसी चिंता से बचने को न गए थे; तुम चिंता से उठने गए थे, जागने गए थे। चिंता को मिटाना है, भूलना नहीं है। तुम चिंता मिटाने गए थे; तुम जीवन का सार समझने गए थे; तुम जीवन की एक ऐसी घड़ी निर्मित करने गए थे, जहां चिंता उठनी असंभव हो जाए, जहां अशांति न उठे, जहां बेचैनी पैदा न हो। तुम स्वभाव की तलाश करने गए थे; तुम गहरे जल-स्रोत खोजने गए थे। तुम भूलने न गए थे, जागने गए थे।

लेकिन ध्यान करते-करते खो गए। यह खोना नशा नहीं है। या अगर यह नशा है, तो यह नशा होश का नशा है। इसमें तुम खो भी जाओगे और जागे भी रहोगे। तुम पाओगे कि तुम बिल्कुल मिट गए और साथ ही तुम पाओगे कि पहली दफा तुम हुए। एक तरफ तुम पाओगे कि सब खो गया और दूसरी तरफ से तुम पाओगे कि सब नया हो गया--तुम हो भी और नहीं भी हो।

इस बात को तो अनुभव से ही समझ पाओगे। एक ऐसी घड़ी है ध्यान की, जब तुम होते भी नहीं; मैं नहीं होता उस घड़ी में, सिर्फ अस्तित्व होता है; मात्र शुद्ध होना होता है; मैं तो खो गया होता है, सिर्फ अस्तित्व रह जाता है--न कोई विचार होता, न कोई अहंकार होता--चित्त का दर्पण पूरा स्वच्छ होता है, कोई धूल नहीं होती। उस स्वच्छ दर्पण में परमात्मा झलकता है। वह शांति का अपूर्व क्षण है; वह समाधि की अपूर्व घटना है।

लेकिन तुम खोने न गए थे, तुम रूपांतरित होने गए थे; तुम स्वयं को बदलने गए थे। तुम खोने नहीं गए थे, मिटने गए थे। तुम घड़ी भर के विश्राम के लिए न गए थे, तुम जीवन भर की क्रांति के लिए गए थे।

तो ध्यान दोढंग से किया जा सकता हैः एक--कि तुम सिर्फ अपने को भूलना चाहते हो; दो--कि तुम अपने को बदलना चाहते हो। और जो तुम्हारा भीतर कारण होगा, उसी के फल लगेंगे; तुम जो बोओगे, वही काटोगे। अगर तुमने ध्यान में अपने को मिटाने का बीज बोया, तो फसल में तुम पाओगे कि तुम मिट गए, परमात्मा बचा। अगर तुमने ध्यान में अपने को खोने का, सिर्फ भुलाने का बीज बोया, तो तुम पाओगे--ध्यान भी नशा बन गया; घड़ी भर को भूले, फिर वही का वही हो गया; फिर वापस अपनी जगह आ गए, शायद पहले से भी बदतर; क्योंकि यह घड़ी भर भी जीवन की व्यर्थ गई।

तो मैं निश्चित कहता हूं कि भजन में खो जाना नशा है, अगर तुम खो जाने के लिए ही गए। अगर तुम मिटने के लिए गए, तो नशा नहीं है--तो जागरण है, तो होश है, तो अमूर्च्छा है, तो अप्रमाद है।

और ध्यान रखना, तुम जब आनंद की तलाश को जाओगे तो आनंद को न पाओगे, क्योंकि वह तलाश ही बाधा बन जाएगी। तुम जब आनंद के पीछे पड़ जाते हो तो तुम चूकोगे; क्योंकि आनंद तभी आता है, जब तुम मांगते नहीं। आनंद सम्राटों के पास आता है, भिखारियों के पास नहीं। तुम जब भिक्षा का पात्र लेकर जाते हो, तब आनंद नहीं आता; जब तुम सम्राट की तरह खड़े हो जाते हो, तब आता है। जब तक तुम मांगोगे, तब तक न मिलेगा; जब तुम सब मांग छोड़ दोगे, तब तुम पाओगेः सब तरफ से दौड़ा चला रहा है। जीवन की गहरी से गहरी प्रतीति, जीवन का गहरा से गहरा नियम यही है--एस धम्मो सनंतनो--यही सनातन धर्म है कि जब तक तुम खोजने के लिए दौड़ोगे, तब तक न पा सकोगे।

थोड़ा समझने की कोशिश करो। तुम्हें किसी का नाम भूल गया। तुम कहते हो, जबान पर रखा है। जबान पर रखा है तो बोलते क्यों नहीं? तुम लाख उपाय करते हो कि नाम याद आ जाए। जितना तुम उपाय करते हो, उतना ही याद नहीं आता। और तुम जानते हो कि तुम्हें मालूम है! और तुम कहते हो, जबान पर रखा है! और तुम कहते हो, यह आया, यह आया। और नहीं आता और तुम बड़ी चेष्टा में हो, पसीने-पसीने हो जाओ और नहीं आता। क्या तकलीफ हो जाती है?

जब तुम बहुत ज्यादा खोजने लगते हो भीतर, तो तनाव से भर जाते हो। तनाव के कारण मन संकीर्ण हो जाता है, जगह नहीं रह जाती; सिक.ुड जाता है। फिर तुमने कहा कि अब नहीं आता, जाने भी दो। तुम अखबार पढ़ने लगे; या उठ कर बगीचे में चले गए; या चाय पीने लगे। और अचानक--जैसे ही तुम भूल गए कि याद करना है, नाम आ गया! क्या घटना घटती है? जब तुम चेष्टा करते हो, तब तुम बड़े अशांत हो जाते हो,

चेष्टा के कारण--लाना है और नहीं आ रहा है। जब तुम चेष्टा छोड़ देते हो, तुम शांत हो जाते हो। उस शांति के क्षण में अपने आप आ जाता है।

आनंद तुम्हारा स्वभाव है। जब तुम चेष्टा करते हो, सिकुड़ जाते हो। तुम्हारे भीतर है, कहीं से लाना नहीं है। लेकिन तुम इतने सिकुड़ जाते हो कि जगह नहीं रह जाती आने की।

तुमने देखा होगा, जितनी तुम जल्दी करो, उतनी देर हो जाती है। किसी दिन ट्रेन पकड़नी है, तो जल्दी करते हो तो बटन उलटी लग जाती है, नीचे की ऊपर लग जाती है! जितनी जल्दी करते हो--सूटकेस बंद नहीं होता! और भागा-दौड़ी करते हो--चाबी घर भूल आए, या टिकट ही नहीं ला पाए, स्टेशन भी पहुंच गए तो बेकार।

और तुम जानते होकि यही तुम अगर बिना बेचैनी के करो, तो इतने ही समय में इससे ज्यादा सुविधा से हो जाएगा। रोज तुम कोट की बटन लगाते हो, कभी उलटी नहीं लगती। लेकिन जिस दिन जल्दी हो, उस दिन उलटी लगती है। कोट कोई तुम्हारा दुश्मन है? कि कोट कोई बैठा है, राह देख रहा है कि जिस दिन जल्दी हो, उस दिन बताएंगे! कोट को क्या लेना-देना है?

लेकिन तुम्हारी जल्दी कंपा देती है, चिंतित कर देती है; हाथ उलटा-सीधा घूम जाता है; कुछ का कुछ हो जाता है। जितने तुम निश्चिंत भाव से करोगे, उतनी जल्दी होगी; जितनी चिंता से करोगे, उतनी देर हो जाएगी। जितने भागोगे, उतनी देर से पहुंचोगे; जितने आहिस्ता चलोगे, उतनी जल्दी पहुंच जाओगे। यह बात उलटी लगती है--है नहीं; क्योंकि धैर्य बड़ी शक्ति है और न मांगना बड़ा गहरा आत्मविश्वास है।

आनंद मिलता है तब, जब तुम आनंद की तलाश ही नहीं कर रहे होते। तभी चारों तरफ से, बाहर-भीतर से, सब तरफ से आनंद उत्सव शुरू हो जाता है।

तलाश छोड़ो; मांग मत रखो; ध्यान को साधन मत समझो, साध्य समझो। ऐसा मत सोचो कि आनंद मिलेगा, इसलिए कर रहे हैं; करने में आनंद लो। आनंद मिलेगा, इसलिए नहीं; करना ही आनंद है। और जब करना आनंद बन जाए, साधन साध्य हो जाए, तो राह पर ही मंजिल आ जाती है। तब तुम जहां बैठे हो, वहीं तुम्हारा परमात्मा प्रकट हो जाता है; तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ता।

और जाओगे भी तुम कहां? उसका कोई पता-ठिकाना भी नहीं; उसके घर का तुम्हें कुछ सूत्र भी नहीं तुम्हारे हाथ में है। कहां खोजोगे? आनंद को कहां खोजोगे? सत्य को कहां खोजोगे? मोक्ष को कहां खोजोगे? तुम शांत होकर बैठ जाओ।

बुद्ध की प्रतिमा देखी? महावीर की प्रतिमा देखी? शंकर की प्रतिमा देखी? चलते हुए नहीं मालूम पड़ रहे, भागते हुए नहीं मालूम पड़ रहे, कहीं जाते हुए नहीं मालूम पड़ रहे। बैठे हैं; शांत हैं; चेहरे पर इतना भी भाव नहीं दिखाई पड़ता कि कुछ खोज रहे हों! गौर से महावीर की प्रतिमा में देखना--चेहरे पर कोई जल्दी मालूम पड़ती है? चेहरे पर कोई ऐसा भाव मालूम पड़ता है कि कोई खोज कर रहे हैं? कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। बस बैठे हैं--न कोई खोज है, न कोई आकांक्षा है, न कोई फल है, न कोई भविष्य है, बस यहां और अभी।

अगर तुमने महावीर, बुद्ध और शंकर की प्रतिमाएं देखीं, तो तुम उनको पाओगे कि उनका पूरा संदेश इतना है कि अभी और यहां शांत बैठे हैं; न कहीं जाना है, न कुछ होना है, न कुछ पाना है; कोई दौड़ नहीं, कोई वासना नहीं। बस उसी घड़ी में सब घट जाता है; बरस जाता है आकाश।

आखिरी प्रश्नः क्या प्रार्थना की तरह भजन भी धन्यवाद-ज्ञापन मात्र है?

प्रार्थना बीज है, भजन वृक्ष। प्रार्थना अप्रकट है, भजन प्रकट। भजन नाचती हुई प्रार्थना है, गाती हुई प्रार्थना है। भजन अभिव्यक्ति है प्रार्थना की।

अगर प्रार्थना देखनी है, तो तुम्हें महावीर और बुद्ध में दिखाई पड़ेगी; अगर भजन देखना है तो मीरा और चैतन्य में। बुद्ध और महावीर में जो भीतर सम्हला हुआ है, मीरा और चैतन्य में बाहर बह गया है। बुद्ध और महावीर में जो थिर है, मीरा और चैतन्य में नाच उठा है। भजन प्रार्थना की अभिव्यंजना है।

ऐसा समझो कि तुम्हें किसी के प्रति प्रेम है। तुम इसे भीतर भी रख सकते हो, कोई जरूरत नहीं कहने की। कभी तुम ऐसा न भी कहो कि मुझे तुझसे प्रेम है, तो भी चलेगा; तुम भीतर ही भीतर रख सकते हो, सम्हाले रखते हो। अक्सर स्त्रियां किसी को कहती नहीं कि उन्हें प्रेम है; सम्हाल कर रखती हैं। है--कहना क्या; होना काफी है। लेकिन कभी प्रेम प्रकट भी होता है--कभी गीत में, कभी हाथ के स्पर्श में, कभी आंख की भाव-व्यंजना में, कभी मौन में भी। लेकिन जब भी प्रकट होता है, तब फूल खिल जाते हैं; बीज बीज नहीं रह जाता। दोनों सुंदर हैं।

दो तरह के लोग हैं दुनिया में। कुछ लोग हैं, जिन्हें प्रार्थना काफी है; कहने की कोई जरूरत नहीं है; जो अपने शून्य में और मौन में परमात्मा को साध लेंगे। फिर दूसरे तरह के लोग भी हैंः जिनको इतना काफी न होगा; जब तक काफी से ज्यादा न हो जाए, उन्हें काफी न होगा; जब तक उनके ऊपर से जलधार बहने न लगे; जब तक उनकी प्याली इतनी लबालब न हो जाए कि बंटने लगे, बाहर उलिचने लगे, तब तक काफी न होगा।

मीरा नाच उठती है; बुद्ध के प्याले से जो छलकता नहीं, मीरा से छलक जाता है। दोनों शुभ हैं।

तुम अपनी प्रकृति को पहचानना। अगर तुम भीतर रखना चाहो, कोई हर्जा नहीं है; लेकिन अगर बांटना चाहो, तो भी कोई हर्जा नहीं है। और दोनों में मैं कोई तुलना नहीं करता। बीज भी सुंदर है, क्योंकि फूल उसी से आता है; और फूल भी सुंदर है, क्योंकि फिर बीज बन जाते हैं। दोनों जुड़े हैं।

अभिव्यक्ति-अनभिव्यक्ति दोनों जुड़े हैं; प्रकट-अप्रकट दोनों जुड़े हैं। तुम अपनी प्रकृति को खोज लेना; तुम्हें जो रुचिकर लगे। लेकिन ध्यान रखना, भजन अभिव्यक्ति है, प्रार्थना मौन है।

पूछा है कि क्या प्रार्थना की तरह भजन भी धन्यवाद-ज्ञापन मात्र है?

नहीं। प्रार्थना धन्यवाद है, भजन अहोभाव। प्रार्थना कहती हैः जो दिया, वह बहुत है; जो दिया, उससे संतोष है; जो दिया, उससे गहन तृप्ति है। लेकिन भजन कहता हैः जो दिया, वह जरूरत से ज्यादा है; उसे बांटना है; वह सम्हलता नहीं, सम्हाले नहीं सम्हलता; उसे लुटाना है। भजन नाचता है, कहता नहीं; भजन बोलता है, अनबोला नहीं है। भजन का अपना सौंदर्य है।

प्रार्थना न गाया हुआ गीत है; चित्र है, चित्रकार के मन में छिपा, कैनवस पर नहीं आया; मूर्ति है पत्थर में दबी, अभी छैनी से काटी नहीं गई, प्रकट नहीं हुई।

भजन प्रकट मूर्ति है। पत्थर काटा गया है, छैनी ने काम कर दिया है। भजन गाया हुआ गीत है।

रवींद्रनाथ मरे। मरने के दो दिन पहले एक मित्र मिलने आया और उसने कहा कि चिंतित होने की तो कोई जरूरत नहीं, तुम्हारा जीवन तो सफलता का जीवन था। पुराने साथी हैं दोनों; बचपन के मित्र हैं; दोनों बूढ़े हो गए हैं। दूसरे ने कहा कि तुम तोशांति से मर सकते हो, दुख से मरें तो हम--कुछ पाया नहीं, ऐसे ही गंवा दिया जीवन। तुमने इतने गीत गाए! छह हजार गीत रवींद्रनाथ ने गाए। कहते हैं, इतने गीत संसार में किसी कवि ने नहीं गाए। पश्चिम में महाकवि शैली का नाम है, पर उसके भी गीत तीन हजार हैं। रवींद्रनाथ के गीत

छह हजार हैं। और छह हजार ही गीत संगीत में बांधे जा सकते हैं। नोबल पुरस्कार तुम्हें मिला, उस बूढ़े ने कहा; तुम सब तरह से सम्मानित हुए, तुम शांति से मर सकते हो; अशांति से मरें हम; तुम तो विदा हो सकते हो; तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सकते हो।

रवींद्रनाथ यह सब सुनते रहे, फिर उन्होंने कहा कि सुनो, मैं जो गीत गाना चाहता था, वह अभी तक गा नहीं पाया; वह अभी भी मेरे भीतर बीज की तरह पड़ा है। वे जो छह हजार मैंने गाए, वे मेरी असफल चेष्टाएं हैं उस एक गीत को गाने के लिए। वह जो गीत मेरे भीतर बीज की तरह पड़ा है, उसको गाने के लिए मैंने चेष्टाएं की हैं, हर बार असफल हुआ हूं। तुमने उन गीतों में कुछ पाया होगा, मेरी वे असफलता की कथाएं हैं। और मेरा गीत अभी गाया गया नहीं है, अभी मैं बिनगाया पड़ा हूं। और मैं परमात्मा से शिकायत कर रहा हूं कि तू उठाने को आ गया! अभी तो साज बिठा पाए थे, ठोंक-पीट की थी, तार बिठा पाए थे; सितार तैयार हुआ था। लोगों ने समझा हम गीत गा रहे थे, हम साज बिठा रहे थे। अब जब कि गीत गाने का क्षण करीब आ रहा था, जब अनुभव ने पका दिया था, और प्राण राजी हुए थे, और सब साज सम्हल गए थे, तब उठने का वक्त आ गया! यह भी कोई बात हुई! मैं शिकायत कर रहा हूं।

रवींद्रनाथ बुद्ध की तरह नहीं बैठ सकते वृक्ष के नीचे, वे भजन चाहते थे। रवींद्रनाथ ने बुद्ध की बड़ी आलोचना की है--कोई विरोध से नहीं, बड़े प्रेम और बड़े अहोभाव से। लेकिन रवींद्रनाथ को बुद्ध कभी जमे नहीं। परिपूर्ण समादर था मन में; लेकिन यह चुप होकर बैठ जाना, यह बोधिवृक्ष के नीचे पत्थर की मूर्ति हो जाना, उनको न जमा।

रवींद्रनाथ को जमे बाउल फकीर--इकतारा लेकर नाचते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के भेद हैं। रवींद्रनाथ का विरोध नहीं है बुद्ध से, बड़ा सम्मान है, लेकिन व्यक्तित्व अलग हैं। भजन का अलग व्यक्तित्व है, प्रार्थना का अलग। प्रार्थना मौन है, भजन मुखर। प्रार्थना चुपचाप है।

प्रार्थना करने वालों ने कहा है--सूफियों ने कहा है--कि तुम्हारा बायां हाथ प्रार्थना करे तो दाएं हाथ को पता न चले; रात के गहरे अंधेरे में चुपचाप उठ आना। पति प्रार्थना करे तो पत्नी को पता न चले, क्योंकि दिखावा न हो जाए। क्योंकि दिखावे में प्रदर्शन आ जाएगा, प्रदर्शन में अहंकार आ जाएगा। प्रार्थना करने वाला डरता है--पता न चल जाए किसी को!

भजन करने वाला बीच सड़क पर नाचता है। वह कहता है, पता चले या न चले। पता चल जाए तो क्या फर्क पड़ता है, पता न चले तो क्या फर्क पड़ता है। वह अपने नाच में ही अहंकार को गिरा देता है। उसके नृत्य में ही अहंकार खो जाता है। ये दो अलग-अलग ढंग हैं।

प्रार्थना, मात्र धन्यवाद है; भजन, अहोभाव की अभिव्यक्ति है।

तुम अपने भीतर को समझ लेना। प्रार्थना भी पहुंचा देती है परमात्मा तक, भजन भी पहुंचा देता है; दोनों पहुंचा देते हैं। मंजिल में कोई भेद नहीं है, मार्ग बड़ा अलग-अलग है।

और हमेशा जो तुम्हें जम जाए, उसी को चुनना; जो तुम्हें मौज पड़ जाए, जो तुम्हें मौजूं आ जाए, उसको ही चुनना। सदा अपने पर ध्यान रखना। क्योंकि कभी ऐसा हो सकता है कि तुम्हें कोई चीज दूसरे में जंचती हो और तुम्हारे साथ मेल न खाती हो; तब भूल कर भी उस भ्रांति में मत पड़ना। दूसरे के लिए जोशुभ है, वह जरूरी नहीं तुम्हारे लिए भी शुभ हो। दूसरे की औषधि तुम्हारे लिए जहर भी हो सकती है। तुम्हारी औषधि भी दूसरे के लिए जहर हो सकती है। न तो कोई औषधि औषधि है, न कोई जहर जहर है। जो जहर तालमेल खा

जाए, औषधि बन जाता है; जो औषधि तालमेल न खाए, जहर हो जाती है। सदा अपने भीतर तौलते रहना; अपने से संगीत बिठाते रहना, तालमेल बिठाते रहना; अपने पर कसते रहना। फिर जो भी ठीक पड़ जाए।

अगर तुम्हें बुद्ध की भांति चुप बैठ जाना, मौन में डूब जाना, कि अंग भी न हिले...

बुद्ध और महावीर की प्रतिमाएं संगमरमर की हमने बनाईं, अकारण नहीं। वे ऐसे ही संगमरमर जैसे बैठे थे। वे जब थे मौजूद, तब भी निष्कंप थे। अब मीरा की प्रतिमा तुम संगमरमर में बनाओ, जंचेगी न। बनाई है लोगों ने, जंचती नहीं। अगर मीरा की प्रतिमा बनानी हो तो जल की बनानी पड़ेगी; वह बनती नहीं--नाचती हुई, तरल--ठहरी हुई नहीं।

मीरा एक गति है; एक भावभंगिमा है; एक नृत्य है।

महावीर एक ठहराव हैं। महावीर एक सरोवर हैं, जहां तरंग भी नहीं उठती।

मीरा एक जलधार है पर्वत से गिरती--जलप्रपात है; जहां बूंद-बूंद नाच रही है।

बड़े भेद हैं, पर भेद मार्ग के हैं। अंततः सरोवर भी सूरज की किरणों पर चढ़ कर आकाश में खो जाता है और नदी भी समुद्र में गिर कर सूरज की किरणों पर चढ़ कर आकाश में खो जाती है।

मंजिल एक है, मार्ग अलग हैं। मंदिर एक है, द्वार अनेक हैं। अपना द्वार चुन लेना, दूसरे का अनुकरण मत करना।

अनुकरण करने से संप्रदाय पैदा होता है, स्वभाव के अनुकूल चलने से धर्म।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

आशा का बंधन

सूत्र

जटिलो मुण्डी लुंचतकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो ह्युदरनिमित्तं बहुकृतवेषः।।
अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुंचत्याशापिण्डम्।।
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षस्तरुतलवासः तदपि न मुंचत्याशापाशः।।
कुरुते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं नः भजति जन्मशतेन।।
सुरमंदिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः।।
योगरतो वा भोगरतो वा संगरतो वा संगविहीनः।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव।।

एक अति प्राचीन कथा है। घने वन में एक तपस्वी साधनारत था--आंख बंद किए सतत प्रभु-स्मरण में लीन। स्वर्ग को पाने की उसकी आकांक्षा थी; न भूख की चिंता थी, न प्यास की चिंता थी। एक दीन-दरिद्र युवती लकड़ियां बीनने आती थी वन में। वही दया खाकर कुछ फल तोड़ लाती, पत्तों के दोने बना कर सरोवर से जल भर लाती, और तपस्वी के पास छोड़ जाती। उसी सहारे तपस्वी जीता था। फिर धीरे-धीरे उसकी तपश्चर्या और भी सघन हो गई--फल बिना खाए ही पड़े रहने लगे; जल दोनों में पड़ा-पड़ा ही गंदा हो जाता--न उसे याद रही भूख की और न प्यास की। लकड़ियां बीनने वाली युवती बड़ी दुखी और उदास होती, पर कोई उपाय भी न था।

इंद्रासन डोला; इंद्र चिंतित हुआ; तपस्या भंग करनी जरूरी है; सीमा के बाहर जा रहा है यह व्यक्ति--क्या स्वर्ग के सिंहासन पर कब्जा करने का इरादा है?

लेकिन कठिनाई ज्यादा न थी, क्योंकि इंद्र मनुष्य के मन को जानता है। स्वर्ग से जैसे एक श्वास उतरी--सूखी, दीन-दरिद्र, काली-कलूटी वह युवती अचानक अप्रतिम सौंदर्य से भर गई; जैसे एक किरण उतरी स्वर्ग से और उसकी साधारण सी देह स्वर्णमंडित हो गई। पानी भर रही थी सरोवर से तपस्वी के लिए, अपने ही प्रतिबिंब को देखा, भरोसा न कर पाई--साधारण स्त्री न रही, अप्सरा हो गई; खुद के ही बिंब को देख कर मोहित हो गई! तपस्वी की सेवा उसने करनी जारी रखी।

फिर एक दिन तपस्वी ने आंख खोलीं। इस वनस्थली से जाने का समय आ गया--तपश्चर्या को और गहन करना है, पर्वत-शिखरों की यात्रा पर जाना है। उसने युवती से कहा कि मैं अब जाऊंगा, यहां मेरा कार्य पूरा हुआ। अब और भी कठिन मार्ग चुनना है, स्वर्ग को जीत कर ही रहना है।

युवती रोने लगी। उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, मैंने कौन सा दुष्कर्म किया कि मुझे अपनी सेवा से वंचित करते हो? और तो कुछ मैंने कभी मांगा नहीं!

तपस्वी ने सोचा, उस युवती के चेहरे की तरफ देखा। ऐसा सौंदर्य कभी देखा नहीं था। स्वप्न में भी ऐसा सौंदर्य कभी देखा नहीं था। युवती पहचानी भी लगती थी और अपरिचित भी लगती थी। रूप-रेखा तो वही थी, लेकिन कुछ महिमा उतर आई थी। अंग-प्रत्यंग वही थे, लेकिन कोई स्वर्ण-आभा से घिर गए थे। जैसे कोई गीत की कड़ी, भूली-बिसरी, फिर किसी संगीतज्ञ ने बांसुरी में भर कर बजाई हो।

तपस्वी बैठ गया। उसने पुनः आंख बंद कर लीं। वह रुक गया।

उस रात युवती सो न सकी--विजय का उल्लास भी था और साधु को पतित करने का पश्चात्ताप भी। आनंदित थी कि जीत गई और दुखी थी कि किसी को भ्रष्ट किया, किसी के मार्ग में बाधा बन गई, और कोई जो ऊर्ध्वगमन के लिए निकला था, उसकी यात्रा को भ्रष्ट कर दिया। रात भर सो न सकी--रोई भी, हंसी भी। सुबह निर्णय लिया, आकर तपस्वी के चरणों में झुकी और कहा, मुझे जाना पड़ेगा, मेरा परिवार दूसरे गांव जा रहा है।

तपस्वी ने आशीर्वाद दिया कि जाओ, जहां भी रहो, खुश रहो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

युवती चली गई। वर्ष बीते, तपस्या पूरी हुई। इंद्र उतरा, तपस्वी के चरणों में झुका और कहा, स्वर्ग के द्वार स्वागत के लिए खुले हैं।

तपस्वी ने आंखें खोलीं और कहा, स्वर्ग की अब मुझे कोई जरूरत नहीं!

इंद्र तो भरोसा भी न कर पाया कि कोई मनुष्य और कहेगा कि स्वर्ग की मुझे अब कोई जरूरत नहीं। इंद्र ने सोचा, तब क्या मोक्ष की आकांक्षा इस तपस्वी को पैदा हुई है। पूछा, क्या मोक्ष चाहिए?

तपस्वी ने कहा, नहीं, मोक्ष का भी मैं क्या करूंगा।

तब तो इंद्र चरणों में सिर रखने को ही था कि यह तो आत्यंतिक बात हो गई, तपश्चर्या का अंतिम चरण हो गया, जहां मोक्ष की आकांक्षा भी खो जाती है। पर झुकने के पहले उसने पूछा, मोक्ष के पार तो कुछ भी नहीं है, फिर तुम क्या चाहते हो?

उस तपस्वी ने कहा, कुछ भी नहीं, वह लकड़ियां बीनने वाली युवती कहां है, वही चाहिए।

हंसना मत; आदमी की ऐसी कमजोरी है। सोचना, हंसना मत; क्योंकि पृथ्वी का ऐसा प्रबल आकर्षण है। कहानी को कहानी समझ कर टाल मत देना, मनुष्य के मन की पूरी व्यथा है। और ऐसा मत सोचना कि ऐसा विकल्प उस तपस्वी के सामने ही था कि युवती थी, स्वर्ग था, दोनों के बीच चुनना था। तुम्हारे सामने भी विकल्प वही है; सभी के सामने विकल्प वही है--या तो उन सुखों को चुनो जो क्षणभंगुर हैं, या उसे चुनो जो शाश्वत है; या तो शाश्वत को गंवा दो क्षणभंगुर के लिए, या क्षणभंगुर को समर्पित कर दो शाश्वत के लिए।

और अधिकतम लोग वही चुनेंगे, जो तपस्वी ने चुना। ऐसा मत सोचना कि तुमने कुछ अन्यथा किया है। चाहे इंद्र तुम्हारे सामने खड़ा हुआ हो या न खड़ा हुआ हो; चाहे किसी ने स्पष्ट स्वर्ग और पृथ्वी के विकल्प सामने रखे हों, न रखे हों--विकल्प वहां हैं। और जो एक को चुनता है, वह अनिवार्यतः दूसरे को गंवा देता है। जिसकी आंखें पृथ्वी के नशे से भर जाती हैं, वह स्वर्ग के जागरण से वंचित रह जाता है। और जिसके हाथ पृथ्वी की धूल से भर जाते हैं, स्वर्ग का स्वर्ण बरसे भी तो कहां बरसे, हाथों में जगह नहीं होती! हाथ खाली चाहिए तो ही स्वर्ग उतर सकता है; आत्मा खाली चाहिए तो ही परमात्मा विराजमान हो सकता है।

तुम्हारी आत्मा में अगर कोई आसक्ति पहले से ही विराजमान है, अगर वहां सिंहासन पहले से ही भरा है, तो तुम यह मत कहना कि परमात्मा ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है; यह तुम्हारा ही चुनाव है। अगर परमात्मा

तुम्हें नहीं मिलता, तो इसमें परमात्मा को दोष मत देना, तुमने उसे अभी चुना ही नहीं; क्योंकि जिन्होंने भी, जब भी उसे चुना है, तत्क्षण वह मिल गया है--एक क्षण की भी वहां देरी नहीं है। लेकिन अगर तुम्हीं न चाहो तो परमात्मा तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती नहीं करता; सत्य तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती आरूढ़ नहीं होता। तुम्हें जन्मों-जन्मों तक सत्य को इंकार करने की स्वतंत्रता है।

यही मनुष्य की गरिमा है, यही मनुष्य का दुर्भाग्य भी। गरिमा है, क्योंकि स्वतंत्रता है, चुनाव की अप्रतिम स्वतंत्रता है; दुर्भाग्य, क्योंकि हम गलत को चुन लेते हैं।

लेकिन स्वतंत्रता में गलत का चुनाव समाहित ही है। ऐसी तो कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती, जिसमें ठीक ही चुनने की स्वतंत्रता हो और गलत को चुनने की स्वतंत्रता न हो। तब तो स्वतंत्रता न होगी, परतंत्रता होगी। स्वतंत्रता का अर्थ ही है कि भटकने की भी सुविधा है। स्वतंत्रता का अर्थ ही है कि पाप करने की भी सुविधा है। स्वतंत्रता का अर्थ ही है कि परमात्मा को इंकार करने की सुविधा है।

बुद्ध का जन्म हुआ। पांचवें दिन रिवाज के अनुसार श्रेष्ठतम पंडित इकट्ठे हुए। उन्होंने बुद्ध को नाम दिया--सिद्धार्थ। सिद्धार्थ का अर्थ होता हैः कामना की पूर्ति; आशा की पूर्ति; अर्थ की उपलब्धि; मंजिल का मिल जाना। बूढ़े शुद्धोधन के घर में बेटा पैदा हुआ था। जीवन भर प्रतीक्षा की थी, आशा की थी, सपने देखे थे; बहुत बार निराश हुआ था; और अब बुढ़ापे में बेटा पैदा हुआ था; निश्चित ही सिद्धार्थ था। पंडितों ने नाम ठीक ही दिया था। आठ बड़े पंडित थे। सम्राट पूछने लगा, इस नवजात शिशु का भविष्य भी कहोगे? सात पंडितों ने अपने हाथ उठाए और दो अंगुलियों का इशारा किया। सम्राट कुछ समझा नहीं। उसने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। इशारे में नहीं, स्पष्ट कहो। तो उन सात पंडितों ने कहा कि दो विकल्प हैं--या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और या सब छोड़ कर सर्वत्यागी, वीतरागी, संन्यस्त हो जाएगा; या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और या सर्व वीतरागी संन्यासी होगा।

सिर्फ एक पंडित चुप रहा। वह सबसे युवा था। कोदन्ना उसका नाम था। लेकिन वह सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली भी था। सम्राट ने पूछा, तुम चुप हो, तुमने दो अंगुलियां न उठाईं!

कोदन्ना ने कहा, दो अंगुलियां तो सभी के जन्म के साथ उठाई जा सकती हैं, क्योंकि दोनों विकल्प सभी के सामने होते हैं--या तो संसार की दौड़ का, या संन्यास का। संन्यास या संसार--ये तो दो विकल्प सभी के सामने होते हैं। इन पंडितों ने कुछ विशेष नहीं किया अगर बुद्ध के लिए दो अंगुलियां उठाईं; मैं एक अंगुली उठाता हूंः यह संन्यासी होगा।

लेकिन आदमी का अभागा मन, शुद्धोधन रोने लगा। यह कोदन्ना सर्वज्ञात ज्योतिषी है; युवा है, पर महातेजस्वी है; और उसके वचन कभी खाली नहीं गए। दूसरे पंडितों के साथ तो सुविधा थी थोड़ी कि चक्रवर्ती भी बन सकता है, कोदन्ना ने तो विकल्प ही तोड़ दिया। उसने तो कहा, यह निश्चित बुद्ध बनेगा। उन पंडितों के साथ तो सम्राट रोया न था, प्रसन्न हुआ था--चक्रवर्ती सम्राट होगा बेटा। और दूसरे विकल्प को उसने कोई मूल्य न दिया था, क्योंकि जब चक्रवर्ती सम्राट होने का विकल्प हो तो कौन संन्यासी होना चाहता है! लेकिन कोदन्ना ने तो मार्ग तोड़ दिया, उसने तो एक ही अंगुली उठाई है। लेकिन सम्राट ने अपने मन को समझाया, कोदन्ना अकेला है, विपरीत सात ज्योतिषी हैं। ऐसे ही तो आदमी अपने मन को सांत्वना देता है। सात ही ठीक होंगे, एक ठीक न होगा। लेकिन वह एक ही ठीक सिद्ध हुआ। और अच्छा हुआ कि वह एक ही ठीक सिद्ध हुआ।

तुम्हारे जन्म के समय भी, जन्म के बाद भी--चाहे पंडित बुलाए गए हों, न बुलाए गए हों--प्रकृति दो अंगुलियां उठाती है। सारी प्रकृति दो विकल्प सामने रखती है--या तो खो जाना मूर्च्छा में, या जाग जाना होश

में; या तो बाहर की संपदा को जुटाना, चक्रवर्ती होने की दौड़ में लगना; या भीतर की संपदा को जुटाना, आत्मवान होने में थिर होना। कोदन्ना की एक अंगुली याद रखना! कोई कोदन्ना तुम्हें न मिलेगा अंगुली उठाने को, तुम्हें ही अपनी अंगुली उठानी पड़ेगी।

शंकर के ये सूत्र त्याग और वैराग्य के सूक्ष्मतम इशारे हैं।

"जिसके माथे पर जटा है, जो सिर मुड़ाए है, जिसने अपने बाल नोच डाले हैं, जो काषाय पहने है, अथवा तरह-तरह के वेश धारण किए हैं, वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है। केवल पेट भरने के लिए उसने बहुत रूप बना रखे हैं।"

ध्यान रखना, आदमी का मन बड़ा खतरनाक है, वह संन्यास में भी संसार खोज लेता है। वह मंदिर में भी पाखंड खोज लेता है। वह साधना में भी भोग खोज लेता है। आवरण कुछ भी हो, भीतर मन अपनी पुरानी आदतों का जाल बुनता चला जाता है।

तो शंकर कहते हैं, जिसके माथे पर जटा है, उससे धोखा मत खा जाना। जटा होने से ही कुछ भी नहीं होता। जिसने सिर मुड़ा लिया है, धोखा मत खा जाना; और दूसरे धोखा खा जाएं तो खा जाएं, तुम खुद धोखा मत खा जाना--सिर मुड़ा कर या बाल बढ़ा कर या बाल नोच डाले हैं... जैन दिगंबर मुनि केश-लुंच कर लेते हैं, बालों को नोच डालते हैं--धोखा मत खा जाना। जो काषाय पहने है, जिसने गैरिक वस्त्र पहन लिया है, इससे धोखा मत खा जाना। और दूसरा खा भी जाए तो उसकी चिंता मत करना, खुद मत खा जाना। क्योंकि काषाय पहन लेना भी सरल है, बाल नोच लेने भी सरल हैं। थोड़े से अभ्यास की बात है। सिर मुड़ा लेने में क्या कठिनाई है? जटा-जूट बढ़ा लेने में क्या अड़चन है? थोड़े से अभ्यास की बात है। लेकिन भीतर ध्यान रखना कि यह सब किसलिए किया है? कहीं इसके भीतर भी तो संसार ही तो नहीं चल रहा? इसके भीतर भी कहीं व्यवसाय तो नहीं चल रहा? केवल पेट भरने के लिए तो ये सारे रूप नहीं बना रखे हैं?

सौ में निन्यानबे संन्यासी पेट को ही भर रहे हैं। और पेट ही भरना था तो संसार बेहतर था, कम से कम ईमानदारी तो थी; दुकान बेहतर थी, क्योंकि कम से कम साफ-सुथरा तो था। दुकान ही चलानी थी तो दुकान ही उचित थी, कम से कम मंदिर को भ्रष्ट न करते; साधारण वेश ही ठीक था, फिर गैरिक वस्त्रों को विकृत करने की कोई जरूरत न थी। नाई से ही बाल कटवा लिए होते, लोंचने का आग्रह न करते, वही उचित था। क्योंकि अंततः मन व्यापार कर रहा हो, तो बाहर के धोखे से कुछ भी नहीं होता। अंतिम निर्णायक तो भीतर का मन है कि तुम यह किसलिए कर रहे हो।

मुझे खबर मिली कुछ महीनों पहले, दो दिगंबर जैन मुनि--नग्न, जिन्होंने सब छोड़ दिया है, जिनके पास कुछ भी नहीं है--वे सुबह शौच के लिए गांव के बाहर गए थे, वहां उन दोनों में झगड़ा हो गया। दोनों गुरु-शिष्य थे। एक-दूसरे पर हमला कर दिया। झगड़े और हमले के कारण बात खुली। दोनों ने अपनी पिच्छी के डंडे में रुपये छिपा रखे थे। डंडा पोला कर लिया था, उसमें नोट छिपा रखे थे। बंटवारे पर झगड़ा हो गया कि कौन कितना ले।

दोनों पकड़ कर पुलिस स्टेशन लाए गए। गांव के उनके भक्त चिंतित हुए, दुखी हुए, क्योंकि उनकी ही प्रतिष्ठा का सवाल न था, उनके प्रेम करने वाले भक्तों की भी प्रतिष्ठा का सवाल था। पैसा देकर पुलिस को किसी तरह चुप किया कि यह खबर सब तरफ न फैल जाए।

नग्न खड़ा आदमी भी अंततः वही कर रहा है, जो दुकान पर बैठा कर रहा है। फिर दुकान पर ही बैठना उचित है। फिर कम से कम नग्नता को तो अपवित्र न करो। कोई नहीं कह रहा है कि छोड़ो संसार को। छोड़ना हो तो ही छोड़ो। ऊपर-ऊपर छोड़ो, भीतर-भीतर सम्हालो, इस धोखे से कुछ भी लाभ न होगा।

"जिसके माथे पर जटा है, जो सिर मुड़ाए है, जिसने बाल नोच डाले हैं, जिसने काषाय पहना है, अथवा तरह-तरह के वेश धारण किए हैं, वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है।"

क्यों शंकर कहते हैं, वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है?

क्योंकि वह किसको धोखा दे रहा है! यह सवाल दूसरों को धोखा देने का नहीं है, दूसरों का कोई प्रयोजन ही नहीं है; वह अपने को ही धोखा दे रहा है। क्योंकि अंतिम निर्णय में, तुम जो भीतर थे, उसी से निश्चित होता है; तुम जो बाहर थे, उससे कुछ निश्चित नहीं होता। जीवन, तुम जो भीतर हो, उससे निर्धारित होता है; तुम जो बाहर हो, उससे निर्धारित नहीं होता। वह जो तुम्हारे भीतर चल रहा है सतत, वहां तुम रुपये गिन रहे हो; ऊपर तुम राम-राम जप रहे हो। वह राम-राम व्यर्थ है। वह जो तुमने रुपये गिने हैं, वही सार्थक है। उससे ही निर्णय होगा। क्योंकि निर्णय कोई और करने वाला नहीं है, कोई दूसरा निर्णय करने वाला नहीं है। तुम जो भीतर कर रहे हो, उसी से प्रतिपल निर्णय हुआ जा रहा है। कोई निर्णायक भी होता तो समझा-बुझा लेते, हाथ जोड़ लेते, पैर जोड़ लेते, क्षमा मांग लेते। कोई निर्णायक भी नहीं है। कहीं कोई परमात्मा बैठा नहीं है, जिसको तुम समझा-बुझा लोगे। तुमने जो किया, तुम्हारा कृत्य ही तुम्हारी नियति है। तुम्हारे कृत्य में ही फल छिपा है। तुम्हारे सोचने में ही तुम्हारे होने का सारा आधार है। तुमने जैसा सोचा!

महावीर के जीवन में बड़ी प्यारी कथा हैः कि महावीर खड़े हैं एक वन-प्रांत में, ध्यानस्थ। उनका बचपन का एक साथी, जो सम्राट है, उनके दर्शन को आ रहा है। उसने राह में एक दूसरे सम्राट को भी जो महावीर का संन्यासी हो गया है, उसको एक शिलाखंड के पास तपश्चर्यारत खड़ा देखा। तीनों बचपन के साथी हैं। उसके मन में बड़ा ही पश्चात्ताप होने लगा कि मैं बड़ा पीछे रह गया हूं। यह सम्राट प्रशेनचंद्र खड़ा है--कितना शांत, कितना मौन, कितने अपूर्व आनंद में मग्न! और एक मैं हूं कि अभी भी रुपये-पैसे गिन रहा हूं। और महावीर परम अवस्था को उपलब्ध हो गए हैं! मैं अभागा हूं। उसके मन में बड़े त्याग का भाव उठा।

जब वह महावीर के पास गया तो उसने पूछा कि मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। मैंने सम्राट प्रशेनचंद्र को राह में तपश्चर्या करते देखा, वे आपके शिष्य हो गए हैं; उन्हें देख कर मेरे मन में त्याग के बड़े भाव उठे। एक प्रश्न पूछना हैः जब मैं प्रशेनचंद्र के सामने खड़ा था, अगर उनकी उसी समय मृत्यु हो जाए, तो उनका कहां जन्म होगा?

महावीर ने कहा, अगर उसी वक्त मृत्यु हो तो वे सातवें नरक में पैदा होंगे।

सम्राट तो हैरान हो गया! इतने शांत, इतने मौन, इतने ध्यानस्थ वे खड़े थे--और मौत हो तो सातवें नरक में जन्म होगा!

महावीर ने कहा, चिंतित मत होओ। लेकिन अब अगर मृत्यु हो--अभी कोई घड़ी भर ही बीती है दोनों के बीच, घटनाओं में--तो वे सातवें स्वर्ग में प्रवेश पाएंगे।

सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी पहेली हो गई, आप सुलझा कर कहें।

महावीर ने कहा, तुम्हारे पहले तुम्हारे सैनिक प्रशेनचंद्र के पास से गुजरे थे। उन्होंने कहा, देखो ये मूरख खड़ा है। ये यहां आंख बंद किए खड़े हैं और जिन मंत्रियों के हाथ में ये राज्य सौंप आया है--इसके बेटे तो अभी छोटे हैं, नाबालिग हैं--वे मंत्री सब लूट-खसोट कर रहे हैं और ये मूरख की तरह यहां खड़े हैं! सैनिक, साधारण

सैनिक बात करते हुए निकल गए। प्रशेनचंद्र ने यह सुना कि मंत्री लूट-खसोट कर रहे हैं! जिन पर मैंने भरोसा किया, वे धोखा दे रहे हैं! क्षण भर को भूल गया कि मैं त्यागी हूं। भूल ही गया, बेहोशी छा गई, मन में ख्याल उठा कि मैं अभी जिंदा हूं, तुमने समझा क्या है, नासमझो! अभी मैं जिंदा हूं, सिर धड़ से अलग कर दूंगा मंत्रियों का! और उसका हाथ तलवार पर चला गया। कोई तलवार नहीं है अब, लेकिन पुरानी आदत। म्यान से तलवार खींच ली--सपने में। और जैसी उसकी आदत थी सदा की, जब भी वह क्रोध में आ जाता--जैसे तुम्हारी या बहुतों की आदत होती है, कोई अपना सिर खुजलाता है, कोई अपनी चैंथी खुजलाता है--उसकी आदत थी कि जब भी वह क्रोध में आ जाता, तो अपने मुकुट को सम्हालता था। उसने मुकुट को सम्हालने की कोशिश की--वहां सिर घुटा था, वहां कुछ भी न था, मुकुट वगैरह कुछ भी न था! उसे होश आ गया कि यह मैं क्या कर रहा हूं? न कोई तलवार है और न अब मैं सम्राट प्रशेनचंद्र हूं! मैं तो सब छोड़ चुका! मेरे मन में यह कैसे हत्या का विचार उठा?

महावीर ने कहा, जब तुम प्रशेनचंद्र के सामने खड़े थे, तब भीतर उसने तलवार खींची हुई थी, उसी समय मरता तो सातवें नरक में जाता। अब उसे होश फिर आ गया है, वह हंस रहा है, उसने अपनी मूढ़ता पहचान ली है, इस समय मर जाए तो सातवें स्वर्ग में उत्पन्न होगा।

प्रत्येक कृत्य निर्णायक है। और कृत्य का निर्णय तुम्हारे अंतस में है, तुम्हारे बाहर नहीं। तुम बाहर से मौन खड़े हो सकते हो और भीतर तूफान उठा हो सकता है। तुम बाहर शांत दिखाई पड़ सकते हो और भीतर अशांति का दावानल हो। तुम बाहर चुप और भीतर ज्वालामुखी तैयार हो रहा हो विस्फोट पाने को। तुम्हारा बाहर मूल्यवान नहीं है, तुम्हारा भीतर ही तुम्हारा अस्तित्व है। और तुम्हारा प्रत्येक कृत्य निर्णय करता है, तुम्हारी आत्मा के स्वरूप की। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य तुम्हें निर्मित करता है। कोई निर्णायक नहीं है, तुम्हीं हो।

इसलिए शंकर कहते हैंः वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है। जो सोचता है, मैं दूसरों को धोखा दे रहा हूं। धोखा, सब धोखा, अपने को ही दिया गया धोखा है। सब प्रवंचना अपने को ही दी गई प्रवंचना है। गंवाओगे तुम अपना ही, किसी और का तुम कुछ गंवा नहीं सकते हो। शायद दूसरे की जेब से थोड़े पैसे खींच लो। लेकिन उन्हीं पैसों में तुम्हारी जेब से पूरी आत्मा बिखर जाएगी। तुम खोओगे बहुत, पाओगे कुछ भी नहीं। दूसरे को धोखा भी दोगे तो क्या धोखा दोगे? चार पैसे उससे छीन लोगे। वे पैसे तो पड़े ही रह जाने वाले हैं। न जिससे तुमने छीने हैं, वह ले जाने वाला था; न तुम ले जाओगे। वे पैसे किसकी जेब में रहे, बहुत फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुमने छीना, तुमने आकांक्षा की, तुम विकृत हुए, तुमने अपने मन को धूमिल किया, तुमने भीतर पाप को जगह दी, तुमने पाप का बीज बोया। फिर तुम आशा मत करना कि उस पाप के बीज से कोई स्वादिष्ट फल लगने वाले हैं, या कोई सुगंधित फूल लगेंगे।

"वह मूढ़ आंख रहते भी अंधा है। केवल पेट भरने के लिए उसने बहुत रूप बना रखे हैं। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"अंग गल गए हैं, बाल सफेद हो गए हैं, मुंह में एक दांत नहीं; ऐसा वह वृद्ध छड़ी पकड़ कर चलता है। फिर भी वह आशा के पिंड से बंधा हुआ है।"

मरने के आखिरी क्षण तक भी आशा नहीं छूटती। तुम मर जाते हो, आशा नहीं मरती। मरते-मरते भी आशा सजग रहती है--जीती है, जवान रहती है। मरने वाला आदमी भी सोचता हैः कल सब ठीक हो जाएगा। मरते-मरते भी कल का सपना देखता रहता है। सपने देखते-देखते ही लोग मरते हैं।

आशा समझ लेने की बात है। आशा है क्या?

जो नहीं है, वह मिलेगा--इसकी भ्रांति। जो नहीं है, वह कभी होगा--इसका सपना आशा है।

और आशा से जागना क्या है?

जो है, उसका बोध। जो है, उसके प्रति जाग जाने में आशा टूट जाती है। और जो नहीं है, उसकी मांग में आशा बनी रहती है। गरीब भी आशा में जीता है, अमीर भी आशा में जीता है।

सिकंदर भारत आता था, तो एक फकीर डायोजनीज से मिलने गया; क्योंकि उस फकीर की बड़ी चर्चा सुनी थी। और अनेक बार ऐसा हुआ है कि सम्राट भी ईर्ष्या से भर जाते हैं फकीरों से। वह डायोजनीज फकीर भी ऐसा था, महावीर जैसा नग्न ही रहता था। अनूठा फकीर था, हाथ में भिक्षा का एक पात्र भी नहीं रखता था। जब शुरू-शुरू में फकीर हुआ था तो एक पात्र रखता था। लेकिन फिर उसने एक दिन एक कुत्ते को पानी पीते देखा नदी में। उसने कहा, अरे मैं भी पागल हूं, यह पात्र नाहक ढोता हूं। कुत्ता बिना पात्र के पानी पी रहा है! कुत्ता हमसे ज्यादा समझदार है। और जब यह काम चला लेता है बिना पात्र के, तो हम आदमी होकर न चला पाएंगे? उसने पात्र वहीं फेंक दिया।

उसकी बड़ी खबर सिकंदर के पास पहुंचती थी कि वह परम आनंदित है। सिकंदर उससे मिलने गया। सिकंदर जब उसे मिलने गया तो डायोजनीज ने पूछा, कहां जा रहे हो?

सिकंदर ने कहा, एशिया मायनर जीतना है।

डायोजनीज ने पूछा, फिर क्या करोगे? और डायोजनीज लेटा था नदी की रेत में। सर्दी की ऐसी ही सुबह रही होगी, धूप ले रहा था। वह लेटा ही रहा, वह उठ कर बैठा भी नहीं। फिर क्या करोगे?

सिकंदर ने कहा, फिर भारत जीतना है।

डायोजनीज ने कहा, फिर?

सिकंदर ने कहा कि फिर और जो थोड़ी-बहुत दुनिया बचेगी, वह जीत लेनी है।

डायोजनीज ने कहा, और फिर?

सिकंदर ने कहा, फिर क्या, फिर आराम करेंगे।

डायोजनीज हंसने लगा, उसने कहा, आराम तो हम अभी कर रहे हैं। तुम तब करोगे? अगर आराम ही करना है, अगर आखिर में आराम ही करना है, तो इतनी दौड़-धूप किसलिए? आराम, देखो हम अभी कर रहे हैं। वह लेटा ही था। और इस नदी के तट पर बहुत जगह है, कोई ऐसा भी नहीं कि जगह की कमी है, तुम भी आराम कर सकते हो, कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है।

सिकंदर निश्चित ही गहन रूप से प्रभावित हुआ था। झेंप गया क्षण भर को। बात तो सच थी। अंत में आराम ही करना है और अंत के आराम के लिए इतना इंतजाम कर रहा है। और डायोजनीज निश्चित आराम कर रहा है। यह कह भी नहीं सकते कि वह गलत बोल रहा है--वह आराम कर ही रहा है। और सिकंदर से ज्यादा प्रफुल्लित है, सिकंदर से ज्यादा उसका खिला कमल है। सिकंदर के पास सब कुछ है और भीतर कुछ भी नहीं। डायोजनीज के पास बाहर कुछ भी नहीं है और भीतर सब कुछ।

सिकंदर ने डायोजनीज से कहा कि तुम मुझे ईर्ष्या से भरते हो। अगर दुबारा मुझे कोई जन्म मिला तो परमात्मा से कहूंगा, मुझे सिकंदर मत बना, डायोजनीज बना दे।

डायोजनीज ने कहा, यह फिर तुम अपने को धोखा दे रहे हो। परमात्मा को क्यों बीच में लाते हो? अगर तुम्हें डायोजनीज बनना है, तो अभी बनने में कौन सी अड़चन है? मुझे अगर सिकंदर बनना हो तो अड़चन हो सकती है; क्योंकि सारी दुनिया जीत पाऊं, न जीत पाऊं; इतना फौज-फाटा इकट्ठा कर पाऊं, न कर पाऊं। लेकिन तुम्हें डायोजनीज बनने में क्या अड़चन है? कपड़े फेंक दो, विश्राम करो।

सिकंदर ने कहा, बात जंचती है, लेकिन आशा नहीं मानती। मैं आऊंगा, मैं जरूर लौट कर आऊंगा। लेकिन अभी तो मुझे जाना होगा, अभी तो यात्रा अधूरी है। तुम्हारी बात शत-प्रतिशत सही है।

यही मजा है। बात ठीक भी लगती है, फिर भी आशा खींचे चली जाती है!

कुछ दिन पहले, जापान में हुए एक बड़े कवि ईशा की कुछ पंक्तियां मैं सुना रहा था। उसकी पत्नी मर गई, बहुत दुख हुआ; फिर उसकी बेटी मर गई, बहुत दुख हुआ; और जब वह तैंतीस साल का था, तभी उसके पांचों बच्चे मर गए; वह अकेला रह गया। वह बड़ी पीड़ा में था और कवि हृदय था, कंप गया। यह दुख इतना क्यों है--पूछने लगा। सो न सके रात, दिन होश न रहे--बस एक ही बात पूछे कि इतना दुख क्यों है संसार में? और मैंने ऐसा क्या बुरा किया है? किसी ने कहा कि तुम मंदिर जाओ, मंदिर में एक फकीर है, शायद वह तुम्हारी समस्या हल कर दे। वह मंदिर गया। मंदिर के फकीर ने कहा, दुख क्यों है? यह बात ही व्यर्थ है। जीवन तो ओस की बूंद की भांति है--अब गया, तब गया। तुम भी जाओगे। पांच बच्चे गए, पत्नी गई, अब तुम समय खराब मत करो। जीवन तो घास के पत्ते पर ठहरी ओस की भांति है--अभी गया, तभी गया। लौट आया ईसा घर। बात तो जंची। जीवन ऐसा ही है। उसने एक हाइकू लिखा, एक छोटी सी कविता लिखी। कविता हैः

लाइफ इ.ज ए ड्यू ड्रॉप
यस आई एम कनविंस्ड परफेक्टली--लाइफ इ.ज ए ड्यू ड्रॉप
एंड यट, एंड यट...

निश्चित ही जीवन एक ओस का कण है
और मैं पूर्णतया सहमत हूं कि जीवन एक ओस का कण है
फिर भी, फिर भी...

"फिर भी" आशा है। समझ में भी आ जाए, तो भी आशा समझने नहीं देती; बुद्धि भी पकड़ ले, तो भी प्राण से संबंध नहीं जुड़ता; विचार में झलक भी जाए, तो भी भावना में नहीं झलकता और आशा अपना जाल बुने जाती है।

"अंग गल गए हैं, बाल सफेद हो गए हैं, मुंह में एक दांत नहीं; ऐसा वह वृद्ध छड़ी पकड़ कर चलता है। फिर भी वह आशा के पिंड से बंधा हुआ है।"

आशा धागा है, जिसके सहारे हम जीते हैं। बड़ा महीन धागा है, कभी भी टूट सकता है, लेकिन टूटता नहीं। मजबूत से मजबूत जंजीर बन गया है। एक तरफ से टूटता है तो हम दूसरी तरफ से सम्हाल लेते हैं। अगर संसार से भी टूट जाता है तो हम मोक्ष की आशा करने लगते हैं, स्वर्ग की आशा करने लगते हैं। आशा जारी रहती है। आशा संसार से भी बड़ी है। संसार छूट जाए, टूट जाए, संसार का दुख दिखाई पड़ जाए, तो आदमी स्वर्ग की आशा करने लगता है। आशा चलती रहती है। तुम थक जाते हो, गिर जाते हो, आशा घसीटती चली जाती है।

तुम्हें भी कई बार सवाल उठा होगा--राह के किनारे किसी भिखमंगे को न हाथ हैं, न पैर हैं, न आंख हैं, शरीर गल रहा है--कभी तुम्हें भी सवाल उठा होगाः क्योंकि जीए जा रहा है? अब क्या है जीने को? लेकिन ऐसा मत सोचना कि यह गलती वही कर रहा है; अगर यही दशा तुम्हारी भी आ जाए तो तुम सोचो, क्या

करोगे? फिर भी तुम जीओगे। तुम किसी चमत्कार की आशा करोगे--कि कौन जाने, कल सब ठीक हो जाए! आदमी कितने ही दुख को स्वीकार कर लेता है, फिर भी जीए जाता है।

एक बहुत अनूठी घटना तुमसे कहना चाहता हूंः आदमी दुख में तो आशा छोड़ता ही नहीं, कितना ही दुख हो। तर्कतः ऐसा लगता है कि दुख आशा को तोड़ देगा। नहीं लेकिन, दुख आशा को नहीं तोड़ पाता; जितना दुखी आदमी होता है, उतनी ही बड़ी आशा करता है। दुख आशा को जगाता है, तोड़ता नहीं। हां, सुख में कभी-कभी आशा टूट जाती है, लेकिन दुख में नहीं टूटती। इसलिए तो राजपुत्र--महावीर, बुद्ध--उनकी आशा टूट गई; भिखमंगों की नहीं टूटती। जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजपुत्र हैं, बुद्धों के चौबीस बुद्ध राजपुत्र हैं, हिंदुओं के सब अवतार राजपुत्र हैं। क्या कारण होगा? सुख में आशा टूट जाती है, दुख में नहीं टूटती।

यह बड़ी विडंबना है। लगता ऐसा है कि दुख में टूटनी चाहिए। जब आदमी इतने दुख में है, तो क्यों नहीं छोड़ देता आशा को? लेकिन जितना ज्यादा दुख होता है, उतना ही मन आशा पैदा करता है। दुख में आशा खिलती है, उसका अंकुरण होता है। लेकिन सुख में टूट जाती है।

इसलिए जितना सुखी समाज हो, उतना धार्मिक हो जाता है। और जितना दुखी समाज हो, कम्युनिस्ट हो सकता है, धार्मिक नहीं हो सकता। अमेरिका में संभावना है कि धर्म का उदय हो, भारत में नहीं। कभी भारत में धर्म का उदय हुआ था; वे बड़े सुख के दिन थे--मुल्क सुखी था; लोग तृप्त थे, संतुष्ट थे--आशा टूट गई।

जब तुम्हारे पास सब होता है, तब तुम्हें दिखाई पड़ता हैः सब व्यर्थ है। और यह ठीक भी है, क्योंकि जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी व्यर्थता तुम्हें दिखाई कैसे पड़ेगी? जिसके पास धन है, उसको दिखाई पड़ सकता है कि धन व्यर्थ है। जिसके पास धन नहीं है, उसे कैसे दिखाई पड़ेगा कि धन व्यर्थ है? व्यर्थता दिखाई पड़ने के पहले होना तो चाहिए। जिसके पास ज्ञान है, उसे दिखाई पड़ सकता है कि ज्ञान व्यर्थ है। जिसके पास ज्ञान नहीं है, उसे कैसे दिखाई पड़ेगा कि ज्ञान व्यर्थ है? कोहिनूर तुम्हारे हाथ में हो तो समझ में आ सकता है कि न खा सकते हो, न पी सकते हो, करोगे क्या--व्यर्थ है। लेकिन हाथ में न हो तो सिर्फ सपना है। सपने कभी व्यर्थ नहीं होते। सपने को जांचने का कोई उपाय नहीं है।

दुख में आशा जीती है, सघन होती है; सुख में टूट जाती है।

इसलिए दुखी आदमी सड़क के किनारे पड़ा मरता रहे नरक में, तो भी आशा करता रहता है। अगर तुम कभी नरक जाओ तो तुम्हें वहां दुनिया के सब से बड़े आशा करने वाले लोग मिलेंगे। वे नरक में सड़ रहे होंगे, लेकिन वे आशा कर रहे हैं कि आज नहीं कल छुटकारा होने वाला है।

मैंने सुना है कि एक जेलखाने में एक नया कैदी आया। जिस कोठरी में उसे लाया गया, कोठरी में एक आदमी पहले से था। उस आदमी ने पूछा कि कितने साल की सजा हुई है? उस कैदी ने कहा कि दस साल की। तो उसने कहा कि तू दरवाजे के पास ही बैठ, क्योंकि हमें तीस साल की हुई है। हम दीवाल के पास रहेंगे, तू दरवाजे के पास; तुझे जल्दी जाना है। दस साल की सजा हुई है, तू दरवाजे के पास ही बैठ!

कारागृह में भी आशा है, कौन कब छूटने वाला है। उस छूटने के दिन के लिए लोग जी लेते हैं।

जीवन में एक बात समझ लेनाः जो सुख तुम्हें मिला हो, उसको गौर से देखना; क्योंकि उससे ही मुक्ति का उपाय है। अगर सुंदर पत्नी तुम्हारे पास हो, तो सौंदर्य में ठीक से उतरना; अगर धन तुम्हारे पास हो, तो धन का ठीक से स्वाद लेना; अगर पद तुम्हारे पास हो, तो उसकी परिक्रमा करके ठीक से निरीक्षण करना। जो तुम्हारे पास हो, उसे गौर से देखना, तो ही आशा टूटेगी। और जो तुम्हारे पास नहीं है, अगर उसका तुमने ध्यान रखा, तो आशा कभी नहीं टूट सकती। और जिसकी आशा न टूटी, उसके जीवन में धर्म का कोई प्रवेश नहीं होता।

आशा अधर्म का द्वार है; आशा का टूट जाना, धर्म का प्रवेश है।

और एक बात और समझ लोः आशा का टूट जाना निराशा नहीं है, ध्यान रखना। निराशा तो आशा का हारना है, टूटना नहीं। निराशा में तो आशा जिंदा रहती है। अभी निराश हो गए, फिर आशा से भर जाओगे। निराशा तो आशा का ही हारा हुआ पहलू है। वह तो थकी हुई, हारी हुई आशा है। वह तो गिर गई आशा है, मिट गई आशा नहीं। जब आशा मिटती है, तो निराशा नहीं छूटती।

इस बात के कारण पश्चिम में बड़ी चिंता पैदा हुई। क्योंकि पश्चिम में महावीर, बुद्ध लोगों को निराशावादी मालूम होते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, आशा छोड़ दो। भूल हो रही है। महावीर और बुद्ध निराशावादी नहीं हैं, वे पेसिमिस्ट नहीं हैं। वे आशावादी भी नहीं हैं, निराशावादी भी नहीं हैं। वे कहते हैं, जब आशा छूट गई तो निराशा तो अपने आप छूट जाती है; निराशा तो आशा की छाया है। जब तुम चलते हो तो छाया बनती है; जब तुम चलते ही नहीं धूप में तो छाया किसकी बनेगी? जब आशा होती ही नहीं तो निराशा अपने आप मिट जाती है।

इसलिए जितनी तुम आशा करोगे, उतनी ज्यादा निराशा होती है; क्योंकि उतनी ही हार मिलती है, उतना ही विषाद मिलता है, उतना ही संताप मिलता है। फिर निराशा से नई आशा पैदा होती है। और यह खेल दिन-रात की तरह चलता रहता है।

आशा टूट जाए तो न आशा होती है, न निराशा होती है। और तभी तुम शांत होते हो। आशा और निराशा के झंझावात में तुम्हारी चेतना की लौ कंपती रहती है। जब न आशा रहती, न निराशा--हवा के झोंके आने बंद हो जाते हैं--स्थितप्रज्ञता उपलब्ध होती है; थिर होता है चैतन्य। उस थिरता में ही परम सौभाग्य है। उस थिरता में ही परम धन्यता है। वह थिरता ही समाधि है।

"सर्दी के मारे सुबह वह सामने आग रख कर या सूर्य की तरफ पीठ करके गरमाई लेता है, रात में जानुओं के बीच ठुड्डी दबाए सोता है, हाथ पर भीख लेता है, पेड़ के नीचे वास करता है, फिर भी आशा का बंधन नहीं छोड़ता। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"चाहे वह गंगा या समुद्र की यात्रा करे, चाहे अनेक व्रतों का पालन करे, अथवा दान करे; लेकिन यदि ज्ञान नहीं है, तो सर्वमत यही है कि सौ जन्मों में भी मुक्ति न हो सकेगी।"

चाहे गंगा या समुद्र की यात्रा करे, चाहे अनेक व्रतों का पालन करे, अथवा दान करे; लेकिन यदि ज्ञान नहीं है, तो सौ जन्मों में भी मुक्ति नहीं होगी।

इसे समझें। क्योंकि यह आसान लगता है--व्रत कर लेना, दान कर देना, उपवास साध लेना; नियम-अनुशासन जीवन का बना लेना, संयम-मर्यादा से जीना, थोड़ी तपश्चर्या कर लेना--यह आसान है। क्योंकि कृत्य सदा आसान है; तुम बदलते नहीं और कृत्य हो जाता है।

ज्ञान कठिन है, क्योंकि ज्ञान का अर्थ है--रूपांतरण। ज्ञान का अर्थ है--तुम बदलो, तुम्हारी चेतना का ढंग बदले। ज्ञान का अर्थ है--तुम्हारी चेतना की गति और दिशा बदले। ज्ञान का अर्थ है--तुम्हारी चेतना थिर हो; डगमगाए न, निष्कंप हो। कठिन है।

कर लेना तो आसान है। ज्यादा खाते हो तो भी शरीर को कष्ट देते हो, उपवास कर लिया तो भी शरीर को कष्ट देना है; दोनों हालत में कोई बहुत अंतर नहीं पड़ता। पहले ज्यादा खाकर कष्ट देते रहे, फिर उपवास करके कष्ट दे दिया। धन को पकड़ते हो, छोड़ भी सकते हो। क्योंकि धन को पकड़ने में ही तुम्हें पता चलेगा, कुछ भी नहीं है, व्यर्थ है। व्यर्थ का दान कर देना कोई बहुत बड़ी क्रांति है?

कठोपनिषद की कथा है, उस कथा के कारण ही उस उपनिषद का नाम कठोपनिषद हैः कथा-उपनिषद। नचिकेता के बाप ने बड़ा यज्ञ किया। यज्ञ के बाद उसने बड़ा दान किया। नचिकेता पास ही बैठा है, छोटा सा बच्चा है, वह बार-बार पूछने लगाः क्या सभी आप दे डालोगे?

बाप ने कहा कि सभी दान करना पड़ेगा। जो भी मेरा है, सभी दान करना है।

लेकिन नचिकेता ने देखा कि बाप ऐसी गऊएं दान कर रहा है जिनका दूध कभी का खो चुका, जिनसे दूध निकलता ही नहीं। लोग ऐसी चीजों का दान करते हैं, जो व्यर्थ हो जाती हैं। उन चीजों को दे रहा है, जिनका कोई उपयोग ही नहीं है; जिनका कोई उपयोग हो भी नहीं सकता। और बड़े उत्साह से बांट रहा है और बांटने में बड़ा मजा ले रहा है। वह नचिकेता की ताजी बुद्धि, बाप की बूढ़ी बुद्धि; जो बाप को नहीं दिखाई पड़ रहा, वह उसे दिखाई पड़ रहा है। वह कहने लगा कि इन सबको देने से क्या होगा? ये गऊएं तो दूध देना बंद कर चुकी हैं। ये तो जिन ब्राह्मणों को तुम दे रहे हो, उनको और इनके लिए घास-पात जुटाना पड़ेगा, और व्यर्थ की मुसीबत होगी। इससे पुण्य नहीं हो सकता।

बाप ने उससे कहा, तू चुप रह!

लेकिन तब नचिकेता पूछने लगा--जैसे छोटे बच्चे होते हैं--कि ठीक है, जब सभी आप दे रहे हैं, तो मुझे किसको दोगे? मैं भी तो तुम्हारा हूं! तुम कहते हो कि सभी जो तुम्हारा है, बांट दोगे। मुझे किसको दोगे? वह बार-बार बाप को पूछने लगा कि मुझे किसको दोगे?

बाप ने क्रोध में कहा, तुझे मौत को दे देंगे।

आदमी देता है, जो व्यर्थ हो गया। तुम भी बांटते हो चीजों को, जब वे तुम्हारे काम की नहीं होतीं। मैं ऐसा देखता हूंः कुछ चीजें ऐसी हैं जो घूमती ही रहती हैं एक-दूसरे से दूसरे के पास। किसी के काम की नहीं हैं। उनको लोग बांटते रहते हैं। तुम जिसको देते हो, वह भी किसी को दे आता है। जब देने ही का मजा लेना है, तो ठीक है।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके एक मित्र ने शराब की एक बोतल दी। पूछा बाद में, कहो, कैसी रही? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः कहना चाहिए, करीब-करीब ठीक। उसने कहा, कुछ समझे नहीं। करीब-करीब ठीक! क्या मतलब? या तो कहो ठीक या कहो गलत। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, करीब-करीब ठीक। अगर ठीक से थोड़ी ज्यादा ठीक होती तो तुम हमें देते नहीं; और अगर ठीक से थोड़ी कम ठीक होती तो हम किसी और को देते। करीब-करीब ठीक थी, पी गए।

लोग करीब-करीब ठीक चीजें दे रहे हैं, जिनका कोई मूल्य नहीं है।

दान में कुछ भी नहीं बिखरता, व्यर्थ को तुम बांट देते हो; उपवास में भी कुछ नहीं लगता, शरीर को थोड़ा सता लेते हो; तपश्चर्या भी चल सकती है, क्योंकि उससे भी अहंकार तृप्त हो सकता है। इसलिए क्रांति तो केवल एक है, और वह क्रांति है--आत्मज्ञान की क्रांति। उस क्रांति के अतिरिक्त न कभी कोई मुक्त हुआ है, न कभी हो सकता है।

ज्ञान एकमात्र मुक्ति है। ज्ञान मोक्ष है।

लेकिन ज्ञान से तुम शास्त्र-ज्ञान मत समझ लेना; क्योंकि वह तो बिल्कुल आसान है; वह तो उपवास से भी ज्यादा आसान है; वह तो दान से भी ज्यादा आसान है। शास्त्र पढ़ लेने में क्या कठिनाई है? और बुद्धि को शास्त्र से भर लेने में भी क्या अड़चन है? गीता कंठस्थ हो सकती है और जीवन में जरा भी गीत न हो। और जब गीत ही न हो जीवन में तो भगवत-गीत कैसे हो सकता है? गीता हो सकती है कंठस्थ और गीत बिल्कुल न हो। गीत

चाहिए। और गीत इतना सघन होता चला जाए कि तुम गीत में संपूर्ण डूब जाओ, तो गीत भगवत-गीत हो जाता है। फिर न तो कृष्ण याद रहते हैं, न अर्जुन याद रहता है; न गीता में क्या कहा है, वह याद रहता है। लेकिन जो कहा है, तुम वही हो गए होते हो। तुम स्वयं ही वही बन गए होते हो। फिर उस सब कचरे को याद रखने की जरूरत भी नहीं होती।

शास्त्र मूल्यवान है उन्हें, जो कचरे को इकट्ठा करने में रस लेते हैं। जो स्वयं शास्त्र बन जाते हैं, उनके लिए शास्त्र का फिर कोई भी मूल्य नहीं है। और जब तक तुम स्वयं शास्त्र न बन जाओ, तब तक ज्ञान नहीं है। ज्ञान तब है, जब तुम्हारा इशारा-इशारा सत्य की तरफ हो जाए। जब तुम्हारी आंख झपके तो सत्य का इशारा प्रकट हो; तुम बोलो तो सत्य का इशारा प्रकट हो; तुम न बोलो तो तुम्हारे न बोलने में सत्य प्रकट हो।

चाहे तुम गंगा की यात्रा करो...

गंगा का बेचारी का क्या कसूर है? तुम उसे क्यों सताते हो?

रामकृष्ण से कोई पूछा कि मैं गंगा जा रहा हूं। आपका क्या ख्याल है--गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं या नहीं?

रामकृष्ण बड़े सरल व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि जरूर धुल जाते हैं; जब गंगा में स्नान करोगे, डुबकी लगाओगे, पाप अलग हो जाते हैं। लेकिन निकलोगे बाहर कि नहीं?

निकलेंगे तो जरूर।

उन्होंने कहा, वे वृक्ष जो गंगा के किनारे खड़े हैं, इसीलिए खड़े हैं कि उन पर पाप बैठ जाते हैं। तुम निकले, वे फिर उचक कर तुम पर सवार हो गए। गंगा की वजह से छूटे थे, तुम्हारी वजह से तो छूटे भी नहीं थे। अगर तुम डूबे ही रहो गंगा में तो मुक्त हो जाओगे। निकलना मत।

उस आदमी ने कहा, लेकिन निकलना तो पड़ेगा!

तो फिर बेकार मेहनत कर रहे हो।

गंगा का गुण है, छुड़ा देगी। लेकिन किए तुमने हैं, तो गंगा कैसे छुड़ा देगी? और गंगा ऐसे सबके पाप छुड़ाने का काम करती रहे, तो आखिर में गंगा बड़ी महापापी हो जाएगी; क्योंकि कोई भी करे पाप और गंगा छुड़ा दे, तो अंत में सारे पाप गंगा की ही जिम्मेवारी हो जाएंगे। तो गंगा का ऐसा क्या कसूर है?

लेकिन आदमी बहाने खोजता है। आदमी करता है पाप, फिर कोई बहाने खोजता है, ताकि पाप का बोझ न रह जाए। तो गंगा में डुबकी लगा आता है, फिर निश्चिंत हो जाता है। फिर पाप करने को तैयार होकर आ गए वे। अब वे फिर पाप करेंगे; फिर गंगा में स्नान कर आएंगे। गंगा ने तुम्हें पाप से मुक्त करवाया, ऐसा नहीं; तुम्हें और भी पाप करने में कुशल बना दिया। क्योंकि तुम्हें एक तरकीब मिल गई कि जब भी पाप होगा, गंगा में स्नान कर आएंगे। सस्ता है मामला; कोई टिकट बहुत मंहगी नहीं है। और बिना टिकट ही जाते हैं अक्सर तीर्थयात्री। क्योंकि जब इतने पाप ही गंगा छुड़ा रही है तो और टिकट की झंझट क्या करनी, वह भी छूट जाएगी।

"चाहे वह गंगा की यात्रा करे, चाहे अनेक व्रतों का पालन करे, अथवा दान करे; लेकिन यदि ज्ञान नहीं है, तो सर्वमत यह है कि सौ जन्मों में भी मुक्ति न हो सकेगी। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"देवता के मंदिर या वृक्ष के नीचे निवास हो, भूमि ही शय्या हो, मृगछाला ही वसन हो, सब प्रकार के परिग्रह और भोग का त्याग हो; ऐसा वैराग्य किसको सुखी नहीं करता?"

यह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है और बड़ी गंभीर समस्या शंकर उठा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि अगर तुम सचमुच त्यागी हो तो आनंद सबूत होगा कि तुम्हारा त्याग सच है या नहीं। त्यागी और दुखी दिखाई पड़े, तो त्याग झूठा। तुम कहो कि मेरे घर में दीया जला है और सब तरफ अंधेरा हो, तो तुम्हारा दीया झूठा। दीया जला हो तो घर में रोशनी होनी चाहिए।

शंकर कहते हैं, देवता के मंदिर या वृक्ष के नीचे निवास हो--और तुम दुखी! और तुम उदास! तो देवता से पहचान नहीं हुई, तो मंदिर अभी मिला नहीं।

"भूमि ही शय्या हो।"

ऐसी जिसकी मुक्ति हो कि आकाश ही ओढ़नी और भूमि ही शय्या! इसलिए तो महावीर को दिगंबर कहा। आकाश ही जिनकी ओढ़नी हो गई, भूमि ही जिनकी शय्या हो गई।

"भूमि जिसकी शय्या हो, मृगछाला ही वसन हो, सब प्रकार के परिग्रह और भोग का त्याग हो; ऐसा वैराग्य किसको सुखी नहीं करता?"

सुख कसौटी है। सुख की रोशनी तुममें प्रकट हो, वही सबूत है कि तुम विरागी हो। और कोई सबूत नहीं है। तुमने घर छोड़ा, तुमने धन छोड़ा, तुम नग्न हो गए, तुमने सिर मुड़ा लिया, तुमने जटा-जूट बढ़ा लिए, तुमने गैरिक वस्त्र पहन लिए, तुम भाग गए हिमालय, तुम गंगा के किनारे बैठ गए, लेकिन अगर सुख में तुम विराजमान न हुए, तो सब धोखा है। कसौटी पर तुम न उतर पाओगे। तुम सोने जैसे दिखाई पड़ते हो, सोना तुम हो नहीं, पीतल हो। सोने को कसने की कसौटी जैसे है, वैसे ही त्याग को कसने की कसौटी है--वह है तुम्हारा आनंद। त्यागी और आनंदित न हो, और भोगी दुखी न हो, यह असंभव है। दुखी जहां तुम किसी को पाओ, समझना भोगी; आनंदित तुम जहां किसी को पाओ, समझना त्यागी।

इसलिए शंकर कहते हैंः "चाहे वह भोग में रत हो या योग में, चाहे वह किसी के संग हो या अकेला, यदि उसका चित्त ब्रह्म में रमण करता है, तो वही आनंदित है, वही आनंदित है, वही आनंदित है।"

फिर चाहे तुम घर में हो या बाहर, तुम सिंहासन पर बैठे हो कि पहाड़ के किसी शिलाखंड पर।

"चाहे वह भोग में रत हो या योग में।"

योगरतो वा भोगरतो वा।

"चाहे वह किसी के संग हो या अकेला।"

संगरतो वा संगविहीनः।

परिवार में हो, संग-साथ में हो, समाज में हो, या एकांत में हो; तुम उसे महल में पाओ या झोपड़े में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

"यदि उसका चित्त ब्रह्म में रमण करता है, तो वही आनंदित है, वही आनंदित है, वही आनंदित है। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

ब्रह्म में रमण। ब्रह्म की हमने परिभाषा की है सच्चिदानंद--सत्य में रमण, चैतन्य में रमण, आनंद में रमण। जो प्रामाणिक हो; जो वैसा हो जैसा है; जो वही हो जैसा है; जो अन्यथा प्रकट न करे; जो बाहर-भीतर एकरस हो--सत्। चैतन्य हो; मूर्च्छित न हो; होशपूर्ण हो; जागा हुआ हो--चित। और आनंदित हो, कि उसके रोएं-रोएं में सुवास हो परमात्मा की, कि उसकी श्वास-श्वास में संगीत हो, कि उसके उठने-बैठने में अज्ञात के घूंघर बजें, कि तुम उसके पास आओ तो उसकी शीतलता तुम्हें घेर ले, कि तुम्हारे हृदय में भी उसका आनंद नृत्य करने लगे;

उसकी मौजूदगी परमात्मा की याद दिलाए; उस पर आंखें टिक जाएं तो सब दुख विसर्जित हो जाएं; उसका आशीष मिल जाए तो सब पा लिया--ऐसी प्रतीति हो; गहन परितोष आ जाए; तो ही सबूत है।

अब यहीं बड़े मजे की घटना घट जाती है। महावीर की प्रतिमा तुमने देखी, परम आनंदित। उनकी देह तुमने देखी? फिर तुम जैन मुनि को खोजो, वह तुम्हें दुखी और दीन दिखाई पड़ेगा। आनंद प्रकीर्ण होता नहीं मालूम होता, बल्कि उदासी। जैसे सिकुड़ गया है, फैला नहीं; कली खिल कर फूल नहीं बनी है, कली और सिकुड़ गई है। लेकिन तुम इस सिकुड़ने को त्याग कहते हो! तुम्हें उसके पास चाहे पसीने की बदबू आ जाए, क्योंकि वह स्नान नहीं करता; और चाहे बातचीत तुम उससे करो तो उसके मुंह से दुर्गंध तुम्हें मिल जाए, क्योंकि वह दतौन नहीं करता। इसको उसने त्याग समझा है। लेकिन उसके पास तुम नाचते हुए न अनुभव होओगे। और उसके पास ऐसा नहीं होगा कि तुम जाओ तो एक गीत तुम्हें घेर ले, कोई बांसुरी बजने लगे जो तुमने कभी न सुनी थी। उसके पास से तुम थोड़े बेचैन होकर लौटोगे। शायद उसकी मौजूदगी तुम्हें अपने प्रति निंदा से भर दे; शायद उसकी मौजूदगी में तुम्हें ऐसा लगने लगे कि मैं पापी हूं; लेकिन उसकी मौजूदगी तुम्हें तुम्हारे भीतर के परमात्मा के बोध से न भरेगी।

और यही फर्क हैः वास्तविक संन्यासी के पास तुम निंदित होकर न लौटोगे, तुम आनंदित होकर लौटोगे। वास्तविक संन्यासी के पास तुम अहोभाव से भर कर लौटोगे। वास्तविक संन्यासी तुम्हें तुम्हारा अंधकार नहीं दिखाएगा, वह तुम्हें तुम्हारे भीतर की रोशनी की तरफ इशारा करेगा। तुम कितने ही पापी होओ, वास्तविक संन्यासी का इशारा तुम्हारे पाप की तरफ नहीं, क्योंकि वह भी कोई बात करने की बात है? वह दो कौड़ी की चीज है। तुम्हारे भीतर की महिमा ही असली बात है। तुम पापी भी हो तो इसलिए कि तुम्हें अपनी महिमा का अब तक पता नहीं चला। तुम्हारे पाप का बोध तुम्हें और करवा दिया जाए तो तुम्हारी महिमा और दब जाएगी। नहीं, पाप तो जैसे है ही नहीं। वह तो जैसे सपना है रात का। उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारे भीतर का परमात्मा--उसका स्मरण तुम्हें आ जाए।

लेकिन उसका स्मरण तुम्हें वही दिला सकता है, जो उसमें रत हो; जो ब्रह्म में रमण कर रहा हो। उसकी मौजूदगी में तुम्हारे भीतर भी कोई जागने लगेगा। उसकी मौजूदगी में--जैसे आकाश में मेघ घिरते हैं और मोर नाचने लगते हैं, ऐसे उसके भीतर...

बुद्ध ने कहा है कि जब उस परम के मेघ किसी के भीतर घिरे होते हैं तो अनेकों के भीतर के मोर नाचने लगते हैं।

बस उसकी मौजूदगी में तुम नाच उठोगे। जहां तुम्हें आनंद की अनुभूति हो, जानना कि वहीं ब्रह्म का निवास है, जानना वहीं मंदिर है।

"चाहे वह भोग में रत हो या योग में, चाहे वह किसी के संग हो या अकेला, यदि उसका चित्त ब्रह्म में रमण करता है, तो वही आनंदित है, वही आनंदित है, वही आनंदित है।"

और वही लक्ष्य है, वही साध्य है; सब तरफ से उसी तरफ जाना है।

"अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

तर्क का सम्यक प्रयोग

पहला प्रश्नः आपने बहुत बार कहा है कि तर्क और विवाद से कभी भी संवाद संभव नहीं होता। लेकिन शंकर ने अपनी विश्व-विजय की घोषणा की तथा विवाद और शास्त्रार्थ में सैकड़ों मनीषियों को पराजित किया। हारने पर उन्हें शंकर का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ता था। कृपया समझाएं कि शंकर का यह कैसा शास्त्रार्थ था?

तर्क और विवाद, तर्क और खंडन से न तो कभी कोई संवाद हुआ है, न हो सकता है। संवाद का अर्थ हैः दो हृदयों की बातचीत; विवाद से अर्थ हैः दो बुद्धियों का टकराव। संवाद का अर्थ हैः दो व्यक्तियों का मिलन; विवाद से अर्थ हैः दो व्यक्तियों का संघर्ष। संवाद में कोई हारता नहीं, दोनों जीत जाते हैं; विवाद में कोई जीतता नहीं, दोनों हार जाते हैं। लेकिन मजबूरी थी और शंकर को विवाद करना पड़ा; क्योंकि विवाद के पूर्व संवाद का कोई उपाय ही न था। शंकर ने सत्य को समझाने के लिए विवाद नहीं किया। लेकिन लोग अपनी बुद्धियों में, अपने अहंकारों में, अपने पांडित्य में इस भांति भरे थे कि जब तक उनका पांडित्य तोड़ा न जाए, उनकी बुद्धि पराजित न हो, वे धूल-धूसरित होकर गिरें न, तब तक वे हृदय की बात सुनने को राजी भी न थे। तो शंकर ने विवाद से उन्हें सत्य नहीं समझाया, विवाद से केवल उनके अहंकार को झुकाया। और जो झुकने को राजी हो जाए, उससे फिर संवाद हो सकता है।

शंकर का शास्त्रार्थ तो केवल निषेधात्मक था; वह तो एक लगे कांटे को दूसरे कांटे से निकालना था। तर्क से भरे हुए मन हैं, वे केवल तर्क की भाषा ही समझते हैं। पांडित्य से भरा हुआ मन केवल पांडित्य की भाषा समझता है; प्रेम की भाषा उसे सुनाई भी नहीं पड़ती। सुनाई भी पड़े तो उसमें कोई अर्थ नहीं मालूम होता। और मौन की भाषा का तो कोई सवाल ही नहीं है।

शंकर जब पैदा हुए, तब इस देश का पांडित्य अपने शिखर पर था। उसी पांडित्य ने इस देश को बर्बाद भी किया। यह देश खोपड़ी में अटक गया; और हृदय तक जाने के इसके द्वार बंद हो गए। गर्दनें काटनी जरूरी थीं, अन्यथा हृदय तक आने का कोई उपाय न था। और बीमारी इतनी भयंकर हो गई थी कि औषधि काम नहीं कर सकती थी; शल्य-चिकित्सा जरूरी थी, आपरेशन जरूरी था; काटे बिना कोई उपाय न था। मलहम-पट्टी से इलाज होने वाला न था। बीमारी काफी दूर आगे निकल जा चुकी थी।

तो शंकर को विवाद करना पड़ा; वह मजबूरी थी। शंकर विवादी नहीं हैं। शंकर और विवादी हों, यह संभव ही नहीं है। शंकर का रस तर्क में नहीं है, अन्यथा वे भज गोविन्दम जैसा गीत न गाएं। उनके प्राण तो भजन गाने को बने थे। शंकर को ठीक अवसर मिलता तो वे नाचते; समय परिपक्व होता, लोग हृदय की भाषा समझते, तो शंकर ने तर्क किया ही न होता। लेकिन देश बीमार था; पांडित्य अपनी आखिरी अवस्था में था; लोगों के सिर भारी थे; उनका बोझ उतारना जरूरी था। और पंडित केवल तर्क ही समझ सकता था। तर्क से पराजित हो, तर्क से हारे, तो शायद राजी हो हृदय की भाषा सुनने को। झुकाया शंकर ने लोगों को।

और ध्यान रखना, जिसने सत्य को जाना हो, वह तर्क का भी उपयोग कर सकता है--हितकर दिशा में। जिसने सत्य को न जाना हो, उसके हाथ में तो तर्क का उपयोग खतरनाक है। जिसने सत्य को न जाना हो, उसके

लिए तर्क ही सब कुछ हो जाता है--साध्य। जिसने सत्य को जाना हो, वह तर्क को भी सत्य की सेवा में संलग्न कर देता है। जिसने सत्य को जाना हो, वह तर्क को अनुचर बना लेता है। सत्य तर्क पर भी सवारी कर सकता है। साधारणतया तर्क छोटे बच्चों के हाथ में पड़ गई तलवार है। उससे वे दूसरों को भी नुकसान पहुंचा देते हैं और अंततः अपने को भी नुकसान पहुंचाएंगे। लेकिन ज्ञानी के हाथ में तर्क, समझदार के हाथ में तलवार है; उससे किसी को नुकसान न पहुंचेगा। हां, दुर्घटना के क्षणों में किसी की रक्षा हो सकती है।

शंकर ने तर्क का सम्यक उपयोग किया। जहर भी औषधि बन जाता है समझदार के हाथ में। जहर जहर नहीं है, अगर समझदारी हो; तो उसका भी उपयोग हो सकता है। और शंकर ने बहुमूल्य उपयोग किया। देश में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक वे घूमे। और जहां-जहां उन्हें लगा कि कोई रुग्ण चित्त बुद्धि में अटक गया है और हृदय की भाषा विस्मृत हो गई है, जहां-जहां उन्हें लगा कोई प्रतिभा शब्दों में उलझ गई है और शून्य के फूल तक पहुंचने का द्वार बंद हो गया है, जहां-जहां उन्हें लगा कि कोई शास्त्र में दब गया है और छटपटा रहा है, वहीं-वहीं उन्होंने विवाद किया, तर्क का उपयोग किया, शास्त्रार्थ किया। यह सिर्फ भूमिका है।

जैसे ही कोई शास्त्रार्थ में हारा, वैसे ही शंकर ने उसे शिष्यत्व में नियोजित किया। वह दूसरी बात मूल्यवान है; असली बात वही है। तर्क में जैसे ही कोई हारा, उसकी हार का उन्होंने उपयोग कर लिया। उस हार के क्षण में जब अहंकार बिखरा, चौंका व्यक्ति, तर्क काम न आए, बुद्धि ने साथ न दिया, असहाय हुआ, डूबने लगा, शंकर ने दूसरी नाव सामने कर दी--कि तर्क की नाव डूबती है, डूबने दो; मेरे पास और भी नाव है--हृदय की नाव, प्रेम की, भक्ति की। ऐसे ही क्षणों में उन्होंने गाया होगा--भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

यह "मूढ़" पंडितों से ही कहा है उन्होंने। अगर तुम ठीक से समझो तो शास्त्रार्थ किया, ताकि तुम्हारी मूढ़ता काटी जा सके। कटते ही, भ्रम टूटते ही, उस संधि का उन्होंने उपयोग कर लिया--जब तुम क्षण भर को निर्भार होते हो, और जब तुम्हें खुला आकाश दिखाई पड़ता है, बादल हट गए होते हैं--उसका उन्होंने उपयोग कर लिया। शंकर ने विवाद से सत्य को नहीं समझाया, विवाद से केवल बादल छांटे, हटाए, ताकि सत्य का सूरज दिखाई पड़ सके।

सत्य को तो सिद्ध करने की कोई जरूरत ही नहीं है, सत्य तो स्वयंसिद्ध है। और ध्यान रखना, जिसे सिद्ध करना पड़े तर्क से, उसे तर्क से ही असिद्ध भी किया जा सकता है। तर्क का कोई बल थोड़े ही है, तर्क तो खेल है। ऐसी कोई भी चीज नहीं जो तर्क से सिद्ध की गई हो और तर्क से ही तोड़ी न जा सके। तर्क तो वकील है, तर्क तो वेश्या है; उसका किसी से कुछ लगाव नहीं है; वह तो दोनों तरफ हो सकता है। कोई भी तर्क ले लें, वह अपने विपरीत भी उतना ही बलशाली है।

तलवार को कोई प्रयोजन थोड़े ही होता है कि किसके हाथ में है। किसी के हाथ में हो! जिसके हाथ में हो, वहीं से काटती है। तुम्हारी तलवार भी दुश्मन के हाथ में पड़ कर तुम्हारी गर्दन को काट सकती है। तुम यह न कह सकोगे कि मेरी तलवार और मुझे ही काटती है! तलवार किसी की नहीं है। तर्क भी किसी का नहीं है। इसलिए तर्क पर जिन्होंने भरोसा किया, एक न एक दिन वे पाएंगे कि कागज की नाव में सवार थे; एक न एक दिन वे पाएंगे कि जिस तर्क के सहारे खड़े थे, उसी तर्क ने गिराया।

तुम अगर मानते हो ईश्वर को, तो तुम कहते हो, कोई बनाने वाला होना चाहिए संसार का। यह तुम्हारा तर्क है कि बिना बनाए संसार कैसे बनेगा! नास्तिक पूछता है, परमात्मा को किसने बनाया? तर्क उसका भी वही है। तुम कहते हो, बिना बने संसार कैसे बनेगा, इसलिए परमात्मा होना चाहिए। वह कहता है, फिर परमात्मा

को किसने बनाया? क्योंकि बिना बनाए परमात्मा भी कैसे हो सकता है! वही पूछ रहा है, कुछ भेद नहीं है तुम्हारे-उसके तर्क में। तुम आस्तिक मालूम पड़ते हो, वह नास्तिक मालूम पड़ता है। मेरे देखे, दोनों समान हैं; क्योंकि दोनों का भरोसा एक ही तर्क पर है; और वह तर्क यह है कि कोई चीज बिना बनाए कैसे हो सकती है!

नास्तिक से तुम नाराज हो जाते हो; तुम कहते हो--चुप रहो! परमात्मा को किसी ने भी नहीं बनाया। नास्तिक यही कहता है, जब परमात्मा को किसी के बिना बनाए बनने की सुविधा है, तो संसार को बिना बनाए बनने की सुविधा क्यों नहीं है? तर्क वही है। नास्तिक-आस्तिक में इसलिए कोई भी जीत नहीं पाता। जीतोगे कैसे? तुम दोनों के तर्क समान हैं।

तर्क से कभी कुछ सिद्ध नहीं होता। जो है, वह अतर्क्य है; जो है, वह सिद्ध ही है; वह सेल्फ-इविडेंट है, स्वयंसिद्ध है।

लेकिन अगर तुम तर्क लेकर शंकर के पास जाओगे, तो शंकर तुम्हारा तर्क काटने को तैयार हैं। शंकर जैसे तर्कनिष्ठ लोग कम ही हुए हैं। तुम्हें ऐसे लोग तो मिल जाएंगे, जिन्होंने परमात्मा को जाना--रामकृष्ण--लेकिन तुम्हें ऐसे लोग बहुत मुश्किल से मिलेंगे, जिन्होंने परमात्मा को जाना और जो नास्तिक के तर्कों को भी तोड़ सकते हों। रामकृष्ण नास्तिक का तर्क नहीं तोड़ सकते। तर्क के जगत में उनकी कोई गति नहीं है। वे सीधे, शुद्ध भाव के व्यक्ति हैं। विवेकानंद तोड़ सकते हैं; लेकिन विवेकानंद को सत्य का कोई अनुभव नहीं है। शंकर ऐसे हैं, जैसे रामकृष्ण और विवेकानंद एक साथ--एक ही व्यक्तित्व में। उन्होंने जाना है, जैसा रामकृष्ण ने जाना; और जो उन्होंने जाना है, उसके पक्ष में वे सारे तर्क संयोजित कर सकते हैं, जो विवेकानंद कर सकते हैं बिना जाने। शंकर जैसे व्यक्ति अनूठे हैं।

पर ध्यान रखना, शंकर को समझने में भूल हो गई है। जिन पंडितों को तोड़ने में शंकर ने जीवन भर श्रम किया, उन्हीं पंडितों ने शंकर को भी पंडित समझ लिया है। वे पंडित यही कहे चले जाते हैं कि शंकर ने दिग्विजय की। शंकर सुनते होंगे तो हंसते होंगे।

तर्क की जीत भी कोई जीत है? किसी को तर्क से हराना भी कोई हराना है? क्योंकि तर्क से हारा हुआ चुप हो जाता है, हारता नहीं है, ध्यान रखना। तुम किसी के सामने बड़े तर्क खड़े कर दो तो हो सकता है वह उतने बड़े तर्क न जुटा पाए, तो वह चुप हो जाता है। लेकिन वह भीतर-भीतर कहता है, ठहरो, खोजेंगे कोई उपाय। तर्क से हराना ऐसा ही है, जैसे किसी की छाती पर तलवार रख दो और वह झुक जाए। लेकिन भीतर? भीतर तो अड़ा ही रहेगा। प्रतीक्षा करेगा उचित, अनुकूल समय की--जब तुम्हारी छाती पर तलवार रख दे।

तलवार से हारा हुआ कहीं हारता है? सिर्फ प्रेम से हारा हुआ हारता है। क्योंकि जब तक भीतर न झुक जाए हृदय, तब तक सब झुकना व्यर्थ है।

तो शंकर ने तर्क से तो केवल तर्क ही काटा; जो तर्क से जी रहे थे, उनको तर्क से पराजित किया। लेकिन उस पराजय के क्षण में शंकर ने बता दिया कि तुम्हारे तर्क भी व्यर्थ हैं, मेरे भी व्यर्थ हैं; तुम्हें कांटा लगा था, इसलिए मैंने कांटे से कांटा निकाल दिया; मेरा कांटा तुमसे ज्यादा मूल्यवान नहीं है। और भूल कर भी मेरे कांटे को अपने घाव में मत रख लेना, अन्यथा यह भी उतनी ही पीड़ा देगा जितना तुम्हारा कांटा दे रहा था। कांटा भी कोई मेरा-तुम्हारा होता है? दोनों को फेंक दो।

यही था उनका शिष्यत्वः बुद्धि से हट जाओ, भाव के निकट आओ। सत्य को खोजना है विचार करके नहीं; सत्य को खोजना है भावना से। सत्य को खोजना है--तर्क, शास्त्र, सिद्धांत से नहीं; सत्य को खोजना है हृदय को खोल कर। हृदय का फूल जब खिलता है, तो सत्य का सूर्य उस पर चमकता है; खिले हुए हृदय के फूल पर सत्य

की किरणें नाचती हैं। शिष्यत्व का यही अर्थ था। लेकिन जो और तरह से न समझ सकते थे, शंकर ने उन्हें उनकी ही भाषा में समझाया।

शंकर अनूठे व्यक्ति हैं। और अनूठे व्यक्तियों के संबंध में नासमझी बहुत आसान है; क्योंकि वे तुम्हारी समझ की सामान्य कोटियों के पार पड़ते हैं। लोगों को लगा कि ये भी तार्किक हैं, महातार्किक हैं। लेकिन महातार्किक कहेगा, भज गोविन्दम्? कि नाचो-गाओ? परमात्मा का गीत गाओ--तार्किक कहेगा? महातार्किक कहेगा? संभव नहीं है। यह तो बड़े ही गहन हृदय से उठी हुई वाणी है। यह तो कोई परमात्मा का प्रेमी कह सकता है, तार्किक नहीं। इसे स्मरण रखो।

"आपने बहुत बार कहा कि तर्क और विवाद से कभी संवाद संभव नहीं होता।"

कभी संभव नहीं होता। तर्क और विवाद से शंकर ने संवाद की भूमि साफ की। तुम विवाद से भरे थे, विवाद से गिराया; तुम तर्क से भरे थे, तर्क से तोड़ा। इससे केवल भूमि को साफ करना है। फिर भाव के, भक्ति के बीज बोए।

अनेक लोगों को यह विचार उठता रहा है कि शंकर विरोधाभासी हैं। विरोधाभासी नहीं हैं। विरोधाभासी ऐसे ही लगते हैं, जैसे कि तुम्हारे पड़ोस में कोई आदमी अपना मकान गिरा रहा हो। तो एक दिन तुम देखते हो कि वह मकान गिराने में लगा है। महीनों मेहनत करके मकान गिराता है, कूड़ा-कबाड़ साफ करता है, भूमि तैयार करता है। फिर नींव भरता है और मकान उठाने लगता है। क्या तुम कहोगे यह आदमी विरोधाभासी है? एक दिन मकान तोड़ता है, दूसरे दिन बनाता है! विरोधाभासी तो है--लेकिन क्या तुम कहोगे यह विरोधाभासी है? नहीं, क्योंकि तुम जानते हो, नया मकान बनाना हो तो पुराना गिराना पड़ता है। इस विरोध में भी विरोध नहीं है। पुराने मकान को गिरा कर ही नया मकान बन सकता है।

शंकर विरोधाभासी नहीं हैं, तर्क से जूझ रहे हैं। और जब पुराना मकान गिर जाता है, तो निमंत्रण दिया है नाचने का। तुम कहोगे यह विरोधाभासी है--पहले विचार और तर्क की बात करता था, अब नाचने और भाव की बात!

नहीं, तर्क से केवल पुराने को गिराया था, भाव से नये को बना रहे हैं; तर्क से जमीन साफ की थी, भाव के बीज बो रहे हैं। कुछ विरोध नहीं है।

"लेकिन शंकर ने अपनी विश्व-विजय की घोषणा की।"

और यह घोषणा भी शंकर ने नहीं की; यह घोषणा उन्होंने की जो शंकर के पीछे थे, लेकिन शंकर को समझ नहीं पाए। पीछे होने से ही कोई समझ नहीं लेता। किसी के भी पीछे चलना बहुत आसान है, अनुयायी होना बहुत कठिन है। पीछे चलने में भी कोई बड़ी कला है? पीछे तो तुम किसी के भी चल सकते हो। अनुकरण में कोई कला नहीं है; अनुगमन आसान है। लेकिन वस्तुतः किसी को समझ लेना और उस समझ के अनुरूप अपने जीवन को विकसित करना बहुत कठिन है।

तो जो शंकर के पीछे चले, उन्होंने घोषणा की है शंकर की विश्व-विजय की; वे अब भी कर रहे हैं। शंकराचार्य पुरी के अब भी कर रहे हैं; करपात्री अब भी कर रहे हैं। वे अब भी कहे जाते हैं कि शंकर ने सारी दुनिया को हरा दिया; पुरी के शंकराचार्य अब भी कहे चले जाते हैं कि वे जगतगुरु हैं।

शंकर की वह घोषणा नहीं है। क्योंकि शंकर तो भलीभांति जानते हैं कि तर्क से न कभी कोई जीतता है और न कभी कोई हारता है। तर्क से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि दूसरे का तर्क तुमसे कमजोर था, तुम थोड़े ज्यादा कुशल हो। लेकिन दूसरा कल ज्यादा कुशल होकर आ सकता है; तर्क की जीत कोई जीत नहीं है। शंकर

भलीभांति जानते हैं कि तर्क की जीत कोई जीत नहीं है, जीत का धोखा है। और शंकर की चेष्टा भी नहीं है कि वे तर्क से किसी को जीत लें। उनकी चेष्टा तो बड़ी अनूठी है। लेकिन वह अनूठी चेष्टा, जो पीछे चल रहे हैं, उन्हें दिखाई नहीं पड़ेगी; उन्हें तो इतना ही दिखाई पड़ता है कि देखो एक आदमी को और हराया। वे जो पीछे चल रहे हैं, वे तो अहंकार की भाषा समझते हैं। वे यह नहीं देख रहे कि शंकर ने एक आदमी को हराया नहीं, एक आदमी को और जिताया; एक आदमी को हृदय के मार्ग पर लगाया; एक आदमी तर्क में डूबा-डूबा हार रहा था, उसे उबारा और उसे जीत का मार्ग दिया। अब जीतेगा यह आदमी।

इसलिए तो जिन्होंने--जैसे कुमारिल भट्ट ने--जो शंकर से हारे और शिष्य हो गए... कुमारिल भट्ट दुख और पीड़ा में शिष्य नहीं हुए। कुमारिल भट्ट अगर हार कर शिष्य होते तो भीतर दंश रह जाता। कुमारिल भट्ट को अगर पराजय प्रतीत होती तो वे पराजय का बदला लेने की कोई चेष्टा करते। नहीं, कुमारिल उतने ही तर्कनिष्ठ थे जैसे शंकर। शंकर से विवाद में कुमारिल को एक बात स्पष्ट दिखाई पड़ गईः तर्क व्यर्थ है। शंकर नहीं जीते, कुमारिल नहीं हारे--तर्क हारा, भाव जीता।

इसे थोड़ा समझने की कोशिश करनी जरूरी है।

शंकर से विवाद करते-करते, कुशल खिलाड़ी के साथ खेलते-खेलते कुमारिल को साफ दिख गया कि जिन चीजों पर मैंने बहुत भरोसा कर लिया था, वे हवा के झोंके में गिर जाती हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने शंकर का तर्क स्वीकार कर लिया। शंकर की कुशलता यही है कि विवाद में उन्होंने दिखा दिया कि तुम्हारे तर्क भी व्यर्थ हैं, मेरे तर्क भी व्यर्थ हैं; तर्क गिर गया; न कुमारिल हारे, न शंकर जीते--तर्क हारा। और चूंकि वह हार शंकर के माध्यम से आई तर्क की, कुमारिल झुके और शंकर के चरणों में गिर पड़े।

और ये बड़े माधुर्य से भरे हुए विवाद थे, बड़े प्रेम से भरे हुए विवाद थे; कहीं कोई लेशमात्र भी कटुता न थी। कोई दुश्मन की तरह नहीं लड़ रहे थे। जैसे दो व्यक्ति शतरंज खेलते हैं, वैसे तर्क की पूरी की पूरी सेना खड़ी की थी; दांव पर लगा दिया था जो भी बुद्धि में था। लेकिन शंकर हर एक चीज को काटते चले गए। उन्होंने काट-काट कर, जो अपना तर्क था, वह विरोधी के मन में नहीं रखा; वे केवल काटते चले गए। खाली जगह छूट गई। उस खाली जगह में शिष्यत्व उभरा। विरोधी ने देखा कि सामने जो खड़ा है, वह कोई सिद्धांत लेकर नहीं आया है, सत्य लेकर आया है। विरोधी ने देखा कि मेरे सब तर्क तोड़ दिए हैं, लेकिन कोई दूसरा तर्क उनकी जगह स्थापित करने को नहीं दिया है। रिक्त स्थान छूट गया--अंतराल है, खाली है, शून्य है। यह अवस्था ध्यान की बन गई। इस ध्यान के क्षण में वह झुका।

ध्यान रखना, वह कोई शंकर के प्रति झुक रहा है, यह भी तुम मत समझना; वह शंकर में जो सत्य प्रकट हुआ, उसके प्रति झुक रहा है। शंकर तो सिर्फ एक प्रतिमा हैं, एक प्रतीक हैं। वह जो सत्य सामने आया है, उसके प्रति झुक रहा है। और झुक रहा है, क्योंकि जगाया। झुक रहा है, इसलिए नहीं कि हराया; झुक रहा है, क्योंकि जगाया।

लेकिन जो पीछे खड़े हैं, उन्होंने देखा कि हार गया, झुक गया। उन पीछे चलने वालों ने घोषणा की कि शंकर की दिग्विजय हो गई; सारे संसार को हरा दिया। इन नासमझों के कारण शंकर की प्रतिमा भ्रष्ट हो गई; शंकर का वह जो आविर्भाव था, जो अनूठा भाव था, वह खो गया; एक साधारण परंपरा, एक सड़ा-संकीर्ण गलियारा बन गया; वह जो विराट पथ था खुले आकाश का, वह खुलापन न रहा।

इसलिए तुम पाओगे कि अगर शंकर को मानने वाला संन्यासी तर्कनिष्ठ है, तो वह कभी "भज गोविन्दम्" इस तरह की बातों में नहीं पड़ेगा। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि ये भज गोविन्दम जैसे गीत शंकर के नाम पर

दूसरों ने लिखे हैं, शंकर के नहीं हैं। क्योंकि शंकर और ऐसे गीत लिखेंगे! मीरा लिखे, समझ में आता है; चैतन्य कहें, समझ में आता है। शंकर? तर्क की ऐसी प्रखर धारा, वह ऐसे भक्ति के गीत गाए--संभव नहीं है। वे कहते हैं, ये सब दूसरों के द्वारा मिश्रित कर दिए गए हैं; शंकर की प्रतिष्ठा और नाम का लाभ उठाया है। वे इन गीतों को अलग काट देते हैं। वे तो केवल उन्हीं तर्कों पर भरोसा करते हैं, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है।

शंकर ने तर्क दिए कि पुराना भवन गिरे, और फिर गीत बोए कि नया भवन उठे। उनकी प्रक्रिया को तुम विरोधाभासी मत मान लेना, अन्यथा तुम शंकर को समझ ही न पाओगे।

शंकर ने अपनी विश्व-विजय की घोषणा कभी नहीं की। जानने वाले महत्वाकांक्षी नहीं होते; जानने वाले अहंकारी नहीं होते।

ये विजय की घोषणाएं बड़ी बचकानी हैं। ये छोटे-छोटे बच्चों की बातें हैं। यहां कौन जीतने को है और कौन हारने को है? शंकर को दिखाई पड़ता है, एक ही परमात्मा है। अनेकता भ्रम है, एकता सत्य है। कौन जीतेगा, कौन हारेगा? हारेगा तो भी परमात्मा हारेगा, जीतेगा तो भी परमात्मा जीतेगा। जब वही जीत रहा है और वही हार रहा है, तो विश्व-विजय की घोषणा कौन करेगा?

नहीं, शंकर ऐसी भूल नहीं कर सकते। और की हो तो शंकर दो कौड़ी के हैं; फिर कोई मूल्य नहीं रह जाता। शंकर ने जगाया है, हराया नहीं।

"और विवाद और शास्त्रार्थ में सैकड़ों मनीषियों को पराजित किया।"

नहीं, सैकड़ों मनीषियों को मनीषी बनाया। उसके पहले तक झूठी मनीषा से उलझे थे, खोटे सिक्के को सम्हाले बैठे थे, असली सिक्का दिखाया। स्वभावतः, असली सिक्का दिख जाए तो खोटा खोटा हो जाता है। और कोई उपाय भी नहीं है खोटे को खोटा करने का। अगर तुम हाथ में एक खोटा सिक्का लिए बैठे हो, तो क्या उपाय है समझाने का कि यह खोटा है? असली चाहिए। असली की तुलना में ही खोटा हो सकेगा। शंकर ने असली प्रकट किया। उसके प्रागट्य में खोटा खोटा हो गया।

ये विवाद पश्चिम में चलते विवादों जैसे नहीं थे। ये विवाद, आज पूरब में भी जो विवाद चलते हैं, ऐसे विवाद न थे। ये विवाद बड़ी मधुरिमा से भरे थे। ये विवाद बड़े सत्यान्वेषणियों के विवाद थे।

विवाद दो तरह से हो सकता है। एक तो तुम जो कहते हो, वह सही है; क्योंकि तुम कहते हो। तुम और गलत हो सकते हो! जो कहते हो, उसका बहुत मूल्य नहीं है; तुमने कहा है, इसलिए सही होना ही चाहिए। तब विवाद व्यर्थ विवाद है। लेकिन तुम सत्य की जिज्ञासा करते हो। तुम यह नहीं कहते कि मैंने जो कहा है, वह सत्य होना चाहिए। तुम कहते हो, अब तक मैंने जैसा जाना है, उसमें मुझे यह सत्य मालूम पड़ता है; मैं तैयार हूं, अगर और जानने को आगे कुछ हो तो मैं खुला हूं; बंद नहीं हो गया हूं; निर्णय ले नहीं लिया है; लेकिन अब तक जो भी मैंने खोजा है, उसमें यह मुझे सत्यतर मालूम होता है। मैं तैयार हूं बदले जाने को; रूपांतरित होने को; जो मैं जानता हूं, उसे छोड़ने को; अगर सत्य मेरे सामने प्रकट हो तो उसे अंगीकार करने की मेरी पूरी तैयारी है। तब विवाद भी सत्योन्मुख हो जाता है। तब विवाद भी एक प्रक्रिया बन जाती है।

पूरब ने इस विवाद का उपयोग किया था। हजारों साल की परंपरा थी, तब ऐसा हो पाया था। हजारों साल तक मनीषी विचार किए, विवाद किए--सत्यान्वेषण के लिए। सत्य पा लिया है, ऐसा नहीं; सत्य की खोज कर रहे हैं, ऐसा। और जब किसी ने तुम्हारे असत्य को दिखा दिया, तो इतना साहस रखा कि उसके चरणों में झुकें। क्योंकि सत्य की खोज थी, तो जिसने भी दिखाया, वही गुरु। इसलिए शंकर से जो हारे, वे शिष्य हो गए।

शिष्यत्व का अर्थ ही इतना है कि हम जहां तक गए थे, वहां तुम एक कदम आगे ले गए; जहां तक हमारी आंखें देखती थीं, तुमने हमें और आगे का दर्शन कराया; जहां तक हम पहुंच सकते थे, तुमने अपने कंधों पर हमें उठा लिया और दूर तक का आकाश दिखाया।

सत्यान्वेषण बड़ी और बात है। और सत्यान्वेषण पर दृष्टि हो, तो विवाद का भी उपयोग हो सकता है। इसलिए मैं कहता हूं, जहर भी औषधि हो सकती है।

पश्चिम में भी विवाद चलते रहे हैं, लेकिन उन विवादों में पूरब का मजा नहीं है। वहां लड़ने वाले लड़ते ही रहे हैं, वे कभी किसी के शिष्य नहीं बने। वे विवाद करते रहे हैं, हारे हों कि जीते हों, प्रत्येक अपना राग अलापता रहा है। कोई तय ही नहीं कर पाया कि कौन जीता, कौन हारा।

यह भी थोड़े सोचने जैसी बात है।

शंकर मंडला पहुंचे। मंडन मिश्र का नगर था। मंडन के नाम पर ही मंडला का नाम है। गांव में प्रवेश पर उन्होंने कुएं पर पानी भरती स्त्रियों से पूछा कि मंडन मिश्र का घर कहां है?

वे हंसने लगीं। उन्होंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है? तुम पहचान ही लोगे। उस घर की हवा बता देगी। उस घर के सामने टंगे तोते भी उपनिषद के वचन बोलते हैं। उस घर के पास की हवा पुरातन है, प्राचीन है, पावन है। यह कोई पूछने की बात है? स्त्रियां हंसने लगीं। उन्होंने कहा, अजनबी, तुम जाओ, वह घर तुम्हें अपने आप बुला लेगा। उस घर को कोई पूछता है?

शंकर उस द्वार पर पहुंचे। बात सच थी। पक्षी द्वार पर बैठे गीत गा रहे थे, जिनमें उपनिषद और वेदों के वचन थे। शंकर भीतर गए और उन्होंने निमंत्रण दिया। मंडन ख्यातिलब्ध व्यक्ति थे। शंकर से उम्र में बड़े थे। शंकर से ज्यादा उनका यश था। शंकर से ज्यादा उनके शिष्य थे। शंकर ने निमंत्रण दिया कि मैं विवाद के लिए आया हूं; सत्यान्वेषण के लिए आपसे जूझना चाहता हूं।

स्वागत हुआ, घर में ठहराए गए। यह कोई दुश्मन तो न था। मंडन ने कहा, तुम युवा हो, इसलिए हम समतुल नहीं हैं। मेरा अनुभव बहुत है, तुम अभी जवान हो। शंकर की उम्र कोई तीस साल रही होगी; मंडन कोई पचास पार कर चुके थे। मैं तुम्हारे पिता की उम्र का हूं, इसलिए यह लड़ाई समतुल नहीं है। तो मैं तुम्हें एक सुविधा देता हूं, न्यायाधीश तुम चुन लो। कौन निर्णय करेगा--कौन जीता, कौन हारा। तुम अभी जवान हो, तो तुम चुन लो जो भी तुम ठीक समझो, वह निर्णय देगा।

यह बड़े प्रेम की लड़ाई थी, इसमें कोई झगड़ा न था। बूढ़े ने ज्यादा सुविधा दी जवान को, बेटे की तरह स्वागत किया। शंकर ने बहुत खोजा, लेकिन कोई जो मंडन की प्रतिष्ठा का हो, उसी को न्यायाधीश बनाया जा सकता है। मंडन की पत्नी के सिवा कोई समझ में न आया। तो कहा कि आपकी पत्नी--भारती उसका नाम था--वही निर्णय करे।

यह कोई झगड़ा था? इसको तुम झगड़े की भाषा में समझ सकते हो? क्योंकि पत्नी अगर निर्णय करेगी तो पति की तरफ झुक सकती है। यह डर बिल्कुल स्वाभाविक होना चाहिए, अगर विवाद दुश्मनी का हो। लेकिन विवाद बड़े प्रेम का था, सत्यान्वेषण का था।

पत्नी निर्णायक बनी। और विवाद के बाद पत्नी ने निर्णय दिया कि मंडन हार गए, शंकर जीत गए। लेकिन पत्नी ने कहा, रुको! यह हार अभी अधूरी है, क्योंकि मैं अर्धांग हूं; तुमने अभी आधे मंडन को जीता, अब तुम्हें मुझसे विवाद करना पड़ेगा। यह बात बड़े मजाक की थी, लेकिन बड़ी मधुर थी। बात तो ठीक थी, शंकर भी इनकार न कर सके; क्योंकि पत्नी अर्धांग है, तो अभी आधे मंडन हारे हैं। अब यह झंझट हो गई। पत्नी ने निर्णय

तो दे दिया कि मंडन हार गए। जिस पत्नी ने यह निर्णय दिया होगा, वह भी अनूठी रही होगी; क्योंकि पति को हराना इतना आसान! लेकिन उसने कहा कि एक बात रह गई अधूरी, तुम्हें मुझे भी हराना पड़ेगा।

शंकर ने स्वीकार किया विवाद को। और भारती ने जो सवाल पूछे, शंकर मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि उसने कोई ब्रह्मज्ञान की बात न पूछी; वह तो समझ गई, इस विवाद को देख लिया था कि मंडन हार गए। यह युवा दिखाई युवा पड़ता है, यह सनातन, पुरातन मालूम होता है। यह तो सनातन पुरुष है; इससे ब्रह्म की बात करनी फिजूल है। उसमें तो मंडन को हारते उसने देख ही लिया था। और मंडन निश्चित ही भारती से ज्यादा जानते थे। भारती इसीलिए तो उनके प्रेम में पड़ी थी; उनकी पत्नी बनी थी; उनके चरणों की सेवा की थी। उनको हारते देख कर यह तो साफ ही हो गया था। उसने प्रश्न पूछे कामवासना के संबंध में।

शंकर युवा हैं; तीस साल उनकी उम्र है; अविवाहित हैं। मुश्किल में डाल दिया। शंकर ने कहा, छह महीने की सुविधा चाहिए। क्योंकि मैं तो अविवाहित हूं, ब्रह्मचारी हूं। प्रेम जाना नहीं, काम जाना नहीं। तो अभी जो भी उत्तर दूंगा, वे अनुभव से आए हुए न होंगे। और अनुभव से जो उत्तर न आए, वह भी कहीं सार्थक हो सकता है? शास्त्र मैंने पढ़े हैं। शंकर ने कहा कि जैसे मंडन ने शास्त्रों से पढ़ कर ब्रह्म के संबंध में बातें कीं और हारे, ऐसा ही अगर मैं कामवासना के संबंध में बातें करूंगा, वे शास्त्रों की होंगी और पक्का है कि मैं हारूंगा, तू जीत जाएगी। तू जानती है, हमने केवल सुना है; हमारा ज्ञान शास्त्रीय है, तेरा अनुभव का है। छह महीने का वक्त चाहिए, ताकि मैं भी अनुभव लेकर लौट आऊं।

ये विवाद बड़े प्रेमपूर्ण थे। भारती ने कहा, यह बिल्कुल उचित है; तुम छह महीने की छुट्टी पर हो; तुम जाओ और अनुभव करके लौट आओ।

कहानी बड़ी अजीब है। शंकर बड़ी दुविधा में पड़ गए। ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है, गुरु को वचन दिया है। अब जाकर विवाह करें या कोई स्त्री खोजें, तो सारा जीवन का ढांचा बदल जाए! तो कथा कहती है कि शंकर ने शरीर को छोड़ा और एक मृतक की देह में प्रविष्ट हुए--एक राजा मर रहा था, उसके प्राण निकले और शंकर प्रविष्ट हुए। छह महीने उसकी देह में रह कर उन्होंने शरीर और कामवासना का अर्थ समझा।

जब छह महीने बाद वे वापस लौटे, तो भारती ने उनकी तरफ देखा और कहा, विवाद की कोई जरूरत नहीं; तुम जान कर ही आए हो, बात खत्म हो गई। मुझे भी अपना शिष्य स्वीकार कर लो।

ये कोई दुश्मनी की बातें न थीं। ये बड़े प्रेम में, बड़ी गहन सहानुभूति में, एक-दूसरे के प्रति अपार श्रद्धा, अपार भाव से हुई घटनाएं थीं। मंडन और भारती शंकर के शिष्य हो गए।

शंकर ने किसी मनीषी को पराजित किया, ऐसा नहीं; मनीषियों को मनीषा दी; वे जो हारे हुए बैठे थे, उन्हें जगाया और चेताया; जिनके घरों में अंधेरा था, उनके घरों में रोशनी की। इसलिए जो उनके चरणों में झुका, वह हार कर नहीं झुका; हारने की पीड़ा वहां न थी; अहोभाव से झुका, धन्यवाद से झुका, गहन अनुकंपा के भाव से झुका।

"और हारने पर उन्हें शंकर का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ता था।"

ऐसा मत कहो। करना पड़ता था? हम अहंकार की भाषा से बच नहीं पाते। अगर इनकार भी करते शंकर तो भी वे शिष्यत्व स्वीकार करते। करना पड़ता था? किया! अहोभाव से किया! नाचते हुए किया! वह झुकना कोई हार का झुकना न था, वह झुकना तो बड़ी समझ में हुआ था। वह समर्पण था, पराजय न थी। उस झुकने में वे आनंदित हुए थे। उस झुकने में पहली बार वे प्रतिष्ठित हुए थे। उस झुकने में उन्होंने पहली बार जाना जीवन का अर्थ; परमात्मा की पहली झलक पाई। उन चरणों में उन्हें परमात्मा के चरण मिले।

नहीं, "झुकना पड़ा", इस तरह की विवशता के शब्द उपयोग मत करो। वे झुके--अहोभाव से! परम आनंद से! गहन कृतज्ञता से!

दूसरा प्रश्नः साधारण जन के पतन की बात तो समझ में आती है। लेकिन त्याग, वैराग्य, तप और साधना के पथ पर चलने वाला व्यक्ति भी, जो कि मंजिल के करीब पहुंच चुका है, क्यों कर उसका पतन की खाई में गिरना संभव हो पाता है?

साधारण जन तो पतित हो ही नहीं सकता। गिरेगा कहां? समतल भूमि पर चलने वाला गिरेगा भी तो गिरेगा कहां?

पहाड़ों के शिखरों पर जो चढ़ने की कोशिश करता है, वही गिर सकता है। गिरने के लिए पर्वत शिखर चाहिए। और पर्वत शिखरों के पास छिपी हुई खाइयां हैं, खड्ड हैं। समतल भूमि पर, राजपथ पर चलने वाला गिरेगा भी तो क्या गिरेगा? गिरा ही हुआ है।

साधारण जन कभी पतित नहीं होता, क्योंकि अब और पतित होने को जगह कहां? इसलिए तुम जब पूछते हो कि साधारण जन के पतन की बात तो समझ में आती है--तब तुम समझे नहीं। साधारण जन का पतन कैसे होगा? साधारण जन तो जीता ही उस बिंदु पर है, जिसके नीचे और पतन संभव नहीं है। वह तो शून्य डिग्री पर जीता ही है। वह तो आखिरी जगह जीता ही है। खाई-खड्ड को ही उसने घर बनाया है। सिर्फ गिरते हैं असाधारण जन--जो शिखर पर चढ़ने का अभियान करते हैं; जो ऊंचाइयों पर जाने का प्रयत्न करते हैं; जो स्वीकार करते हैं चुनौती ऊंचाई की, जो खाई में रहने को राजी नहीं होते; और जो कहते हैं, जब तक हम स्वर्ण-मंडित शिखरों को न पा लें, तब तक जीवन व्यर्थ है; जो खाई के अंधेरे में सरकने को, घर बनाने को राजी नहीं होते; जो कहते हैं, हम तो पंख खोलेंगे और उड़ेंगे आकाश में; दूर की यात्रा पर जो जाते हैं। जितनी दूर की यात्रा, उतना ही खतरा पतन का।

हमारे पास एक शब्द है, योगभ्रष्ट। तुमने कभी भोगभ्रष्ट शब्द सुना? भोगभ्रष्ट का कोई अर्थ ही नहीं होता। योगभ्रष्ट सार्थक है। योगभ्रष्ट का अर्थ हैः ऊंचाई पर चढ़ने की कोशिश की थी, चूक गए।

चूकने का खतरा सदा साथ है। शायद उसी डर से तो बहुत से लोग ऊंचाई पर चढ़ने की कोशिश नहीं करते। अपने को समझा लेते हैं, खाई-खड्ड को ही ऊंचाई मानने लगते हैं। ऊंचाई की बात ही भूल जाते हैं। शिखरों की तरफ देखते ही नहीं, क्योंकि उनके देखने से चुनौती मिल सकती है।

मैंने सुना है कि जिन देशों में पक्षी दूर से--पहाड़ी पक्षी, जंगली पक्षी--दूर की यात्रा करके आते हैं। जब वे आते हैं, तो घरेलू पक्षी, पले-पुसे पक्षियों में भी चुनौती सवार हो जाती है। जैसे यूरोप के दक्षिण भागों में बतखें आती हैं साइबेरिया से उड़ कर, शीतकाल काटने। जब शीतकाल पूरा हो जाता है तो बतखें वापस जाती हैं। लेकिन घरों में पली हुई बतखें भी हैं, वे भी कभी पीढ़ियों दर पीढ़ियों पहले जंगली थीं; वे भी मुक्त थीं। जब ये पहाड़ी और जंगली बतखें वापस लौटने लगती हैं--झुंड के झुंड आकाश में उड़ते हैं--तब खेतों-खलिहानों में बैठी बतखें भी तड़फड़ाती हैं; वे भी पंख फैलाती हैं; वे भी दस-पांच फीट उड़ने की चेष्टा करती हैं और गिर-गिर जाती हैं। उनके पंख अब समर्थ नहीं रहे। लेकिन जब पहाड़ी पक्षियों को उड़ते देखती हैं--अपने ही जैसे पक्षियों को उड़ते देखती हैं--तो उनके प्राणों में भी कोई चुनौती समा जाती है; कोई अभियान, कोई अनजाना देश उन्हें भी याद आ जाता है--कोई आकाश की ऊंचाई। उनके छोटे-छोटे मनों में भी दूर साइबेरिया का खुला आकाश एक

चोट करता है। यद्यपि वे गिर पड़ती हैं वापस, अपने खेतों-खलिहानों में फिर दौड़ने लगती हैं, लेकिन एक बार चेष्टा करती हैं।

जब कभी कोई बुद्ध, कोई शंकर तुम्हारे बीच से गुजरता है, तब तुम भी अपने खेत-खलिहानों में थोड़े तड़फड़ाते हो, तुम भी थोड़े पंख मारते हो। क्योंकि उसकी मौजूदगी तुम्हें खबर देती है; उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर भी किसी सोए स्वर को जगा देती है; तुम भी पहचानते हो कि यह तो मेरी भी नियति है, यह अभियान मेरा भी है; इतनी ही ऊंचाइयों पर मैं भी उड़ सकता हूं। लेकिन फिर तड़फड़ा कर गिर जाते हो, फिर भूल जाते हो।

या, तुममें जो बहुत चालाक हैं, वे कहेंगे, यह बात हो ही नहीं सकती। वे बुद्ध की तरफ देखते ही नहीं; वे पीठ ही किए रहते हैं। वे बुद्ध के संबंध में अफवाहें सुनते हैं, बुद्ध को सीधा नहीं देखते। वे आंख से आंख नहीं मिलाते, क्योंकि आंख मिलाने में खतरा है। वे अपनी दुकानों पर बैठे रहते हैं। वे कहते हैं, यह सब बकवास है। कहीं कोई परमात्मा को पाया है? कि कहीं कोई ब्रह्म है? यह सब कुछ बेकार है; यह सब लोगों को उलझाने की बातें हैं। या हो सकता है यह आदमी पागल हो गया हो। या ज्यादा से ज्यादा सुंदर कविता है।

वे स्वीकार नहीं कर सकते कि ऐसे पहाड़ हैं, ऐसी ऊंचाइयां हैं, ऐसे हिम-शिखर हैं--ऐसे स्वच्छ और कुंवारे, जहां कोई कभी नहीं पहुंचा--अछूते। क्योंकि घबड़ाहट है। अगर उनका ख्याल आ गया, तो अपने पंखों पर भरोसा नहीं है--उड़ सकेंगे? पहुंच सकेंगे? गिर तो न जाएंगे?

उड़ने के साथ ही गिरना जुड़ा है; बढ़ने के साथ ही फिसलना जुड़ा है। जमीन पर सरकने और रेंगने वाले जानवर गिरते नहीं। गिरेंगे कहां?

तो ध्यान रखो, यह तुम मत कहो कि साधारण जन के पतन की बात समझ में आती है। साधारण जन का कभी कोई पतन सुना है तुमने? नहीं; त्याग, वैराग्य, तप और साधना के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति ही--और जितने वे मंजिल के करीब पहुंचने लगते हैं, उतना ही खतरा बढ़ता है; मंजिल के जितने करीब आने लगते हैं, उतने ही खतरे बढ़ने लगते हैं। तब इंच-इंच खतरा है, क्योंकि इंच-इंच गिर जाने का सवाल है। जरा से चूके और गिरना हो सकता है। चूक जरा सी, गिरना बहुत बड़ा होता है। भूल छोटी... तुम भी वही भूल करो तो कुछ हर्जा नहीं है, महावीर वही भूल करें तो बहुत बुरी तरह गिरेंगे। तुम्हारी भूल से क्या होने वाला है? तुम तो भूलों में ही जी रहे हो। तुम्हारी उन बड़ी भूलों में छोटी-मोटी भूलों का तो कोई पता ही नहीं चलता। लेकिन अगर बुद्ध से वही भूल हो...

बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं, आनंद उनके साथ है। वे कुछ बात कर रहे हैं; एक मक्खी आकर उनके कंधे पर बैठ गई, उन्होंने उसे उड़ा दिया--जैसे कि कोई भी उड़ा दे। फिर रुक गए, सहम गए, जैसे कि कोई बड़ी भूल हो गई हो। फिर उन्होंने हाथ उठाया, होशपूर्वक कंधे के पास ले गए और मक्खी को उड़ाया--जो अब वहां थी ही नहीं! आनंद ने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं?

बुद्ध ने कहा, मैंने बेहोशी में उड़ा दी; होशपूर्वक उड़ाना चाहिए। मक्खी भी होशपूर्वक उड़ानी चाहिए; क्योंकि अगर मक्खी उड़ाने में बेहोशी हो सकती है, तो किसी और चीज में भी हो सकती है।

इतनी छोटी सी बात कि मक्खी उड़ाने में बेहोशी--कि बात करते रहे और मक्खी उड़ा दी। अब इसमें भूल भी क्या हो गई थी? न तो मक्खी मर गई, न कोई हिंसा हो गई, न कुछ हुआ--इसमें क्या चिंता की बात है? लेकिन चिंता की बात बुद्ध को है। इतनी सी कालिख भी उनकी शुभ्र चादर पर बहुत कालिख हो जाएगी। तुम्हारी काली चादर पर कुछ भी पता न चलेगा। इसीलिए तो लोग ऐसे कपड़े खरीदते हैं, जो गंदे हो जाएं तो

पता न चले। सफेद कपड़े पर तो कालिख तत्क्षण दिखाई पड़ती है। बुद्ध की सफेद चादर पर तो जरा सी भी कालिख दिखाई पड़ जाएगी। मक्खी भी होशपूर्वक उड़ानी है।

बुद्ध रात सोते हैं तो एक ही करवट सोते हैं। आनंद ने पूछा कि कई बार देखता हूं रात में उठ कर, आप जिस करवट सोते हैं, उसी करवट सोए रहते हैं! हाथ जहां रखते हैं पैर पर, वहीं रखे रहते हैं! हिलते भी नहीं! क्या रात भर सम्हल कर सोते हैं? कम से कम सोएं तो विश्राम से।

बुद्ध ने कहा, जिसे जागना हो, फिर सोना कहां! होशपूर्वक ही सोना है; जागते हुए ही सोना है; भीतर कोई जागता ही रहे। क्योंकि भीतर अगर जागरण खोया, सपने शुरू हो जाते हैं। और अगर भीतर सपने चलें, तो दिन में विचार चलेंगे। रात में अगर जागना न रहा, तो दिन में भी जागना असंभव है; क्योंकि जागना तो स्वाभाविक हो जाना चाहिए--रात हो कि दिन, सोना हो कि जागना। लेकिन जागना जारी ही रहे; उसकी अंतर्धारा बन जाए।

तो रात भी होशपूर्वक सोते हैं; हाथ जहां रखा है, वहीं रखे रहते हैं; नींद में भी बेहोशी को पकड़ने नहीं देते। अगर नींद में भी बेहोशी पकड़ जाए, तो बुद्ध इसको गिरना समझेंगे।

जितना तुम करीब आओगे मंजिल के, उतना ही खतरा बढ़ता जाता है। गौरीशंकर के करीब जितना पहुंचोगे, उतना ही खतरा बढ़ता जाता है। ऊंचाई बढ़ गई, और शिखर छोटा होने लगा, संकीर्ण होने लगा। ठीक गौरीशंकर पर तो एक ही आदमी खड़ा हो पाता है--इतनी ही जगह है।

अभी जो जापानी महिलाओं का दल गौरीशंकर पर गया, उसके बाद चीन ने दावा किया कि हमारा भी एक दल वहां पहुंचा दो दिन पहले, और दल में सात यात्री थे, सातों गौरीशंकर पर पहुंचे। तो जापानी महिलाओं ने इस बात का इनकार किया, क्योंकि वहां सात आदमी एक साथ खड़े ही नहीं हो सकते। शिखर छोटा होता जाता है।

तो यह तो तुम्हारा साधारण गौरीशंकर है, बुद्धों के गौरीशंकर की क्या कहोगे! वहां तो इतनी संकीर्ण जगह हो जाती है कि तुम अकेले भी खड़े नहीं हो सकते। तुम्हारा अहंकार भी बचेगा तो उस जगह से गिर जाओगे। वहां तो तुम भी शून्य हो जाओगे तो ही खड़े हो पाओगे। उस पूर्णता के शिखर पर केवल शून्य ही टिक सकता है। जरा सा अहंकार, जरा सी अस्मिता, और पतन हो जाएगा।

इसे स्मरण रखोः जितना बढ़ते हो, उतना गिरने का खतरा लेते हो। लेकिन यह चुनौती स्वीकार करने जैसी है। इसी से तो तुम्हारी गरिमा प्रकट होगी; इसी से तो तुम महिमावान बनोगे। गिरने का डर है, कोई हर्जा नहीं; हजार बार गिरना भी पड़े तो भी कोई हर्जा नहीं; शिखरों को छूना ही है! क्योंकि जब तक तुम छू न लोगे, तब तक कोई तृप्ति संभव नहीं है। जब तक तुम परमात्मा को अपने भीतर न पा लोगे, तब तक तुम कुछ और पा लो, तुम भिखारी ही रहोगे--तुम्हारी तृप्ति न होगी, संतुष्टि न होगी। सुख असंभव है, जब तक कि तुम वह न हो जाओ, जो कि तुम अंततः हो सकते हो; जब तक कि तुम्हारा पूरा भविष्य वर्तमान न बन जाए; जब तक कि तुम्हारे सब फूल खिल न जाएं--एक भी अनखिला फूल न रह जाए--तब तक तुम आनंद को उपलब्ध न हो सकोगे।

इसलिए आनंद के लिए हमारा एक शब्द हैः प्रफुल्लता। प्रफुल्लता का अर्थ हैः फूल का पूरा खिल जाना। उस पूरे खिलाव में ही आनंद है। उससे रत्ती भर कम पर भी राजी मत होना, अन्यथा तुम दुखी रहोगे और नरक में रहोगे।

साधारण जन गिरने से बच जाता है, लेकिन जीता अंधेरे में, पीड़ा में, दुख में है। गिरने का खतरा मोल लो। दुख में सड़ने की बजाय सुख की एक झलक भी बहुमूल्य है। जमीन पर सरकने की बजाय आकाश में एक बार का उड़ना भी पर्याप्त तृप्तिदायी है। एक बार भी तुम आकाश में उड़ लो, तो तुम्हें अपने पंखों पर भरोसा आ जाए। निश्चित ही बहुत बार गिरना होगा, बहुत बार उठना होगा। लेकिन हर गिरना एक शिक्षण है और हर उठना नया बल है। जितनी बार तुम गिरोगे, उतनी ही गिरने की संभावना कम होती जाएगी, क्योंकि तुम उठने में कुशल होते जाओगे।

लंबी यात्रा है, और परमात्मा मंजिल है। छोटे से राजी मत हो जाना; जल्दी संतुष्ट मत हो जाना; राह के किनारे बैठ कर आंख बंद मत कर लेना और सोचने मत लगना कि मंजिल आ गई। बहुतों ने यही किया है; क्योंकि यात्रा कष्टपूर्ण है, सुविधापूर्ण है राह के किनारे बैठ जाना। चलने में तपश्चर्या है, श्रम है, खून पसीना बनेगा, अपने को दांव पर लगाना पड़ेगा। जीवन एक जुआ है, उसमें जो बड़े जुआरी हैं, वही परमात्मा तक पहुंच पाते हैं।

तीसरा प्रश्नः तथाकथित संन्यासी धर्म के नाम पर दुकानदारी करते हैं। और आपने अपने संन्यासियों को अपनी-अपनी दुकानें चालू रखने को कहा है। यह विरोधाभास जैसा है। कृपया इस स्पष्ट करें।

जरा भी विरोधाभास नहीं है। तथाकथित संन्यासी धर्म के नाम पर दुकानदारी करते हैं, क्योंकि उनको उनकी दुकान से तोड़ लिया गया है। और अभी वे पके न थे; अभी दुकान करने का मन था और मंदिर में बिठा दिए गए। वे मंदिर को दुकान में बदल देते हैं।

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को उनकी दुकान से नहीं तोड़ता; मैं कहता हूं, अगर मंदिर को दुकान में बदलना हो, तो बेहतर है दुकान को मंदिर में बदल लेना। मैं उन्हें दुकान से नहीं तोड़ता, क्योंकि तोड़े गए संन्यासियों को मैं देख रहा हूं कि उन्होंने मंदिर को दुकान बना लिया है। जब तक तुम्हारे भीतर से दुकान का रस ही न चला जाए, दुकान से तोड़ना व्यर्थ है। और रस ही चला गया हो तो तोड़ने की जरूरत क्या है? तुम दुकान पर बैठे-बैठे ही मंदिर बना लोगे।

ध्यान रहे, अगर मंदिर दुकान में बदल सकता है, तो दुकान मंदिर में क्यों नहीं बदल सकती है? दोनों प्रक्रियाएं एक जैसी हैं। मैं दूसरी पर जोर दे रहा हूं कि अगर बदलनी ही हो, तो दुकान को मंदिर में बदलना। और अगर अभी दुकान में रस हो, तो हर्जा कुछ भी नहीं है, जारी रखना। कम से कम मंदिर तो भ्रष्ट होने से बचेगा।

मैं चाहता हूं, तुम परिपक्व हो जाओ; तुम जहां हो, वहीं परिपक्वता आ जाए। और परिपक्वता मूल चीज है, बाकी तो सब ठीक है। और जीवन में बड़े सवाल हैं। सबसे बड़ा सवाल यही है कि तुम जहां से भी कच्चे हटा लिए जाओगे, तुम वहां से हट तो जाओगे शारीरिक दृष्टि से, मानसिक दृष्टि से कैसे हटोगे? और मन में जो तुम रस ले जाओगे, वह रस तुम्हारे साथ रहेगा। और तुम जहां भी रहोगे, वह रस अपने संसार को फिर खड़ा कर लेगा। बीज तुम्हारी वासना में है; तुम्हारी परिस्थिति में नहीं है, तुम्हारी मनःस्थिति में है।

संन्यास आंतरिक क्रांति है। वह इस बात की उदघोषणा है कि मैं भीतर अपने को अब बदलूंगा। और मैं मानता हूं कि जितनी सुविधा बाजार में है बदलने की, उतनी हिमालय पर नहीं है। क्योंकि बाजार में प्रतिपल मौके हैं, जहां चुनौती है; और बाजार में प्रतिपल अवसर हैं, जहां गिरने की सुविधा है; और बाजार में प्रतिपल

संघर्ष है, जहां तुम ज्यादा देर अपने को धोखा नहीं दे सकते। बाजार दर्पण है। हर आदमी जिससे तुम मिलते हो, तुम्हारे भीतर तुम्हारे किसी मन के कोने को रोशन कर देता है।

इसे थोड़ा समझो। बहुत सी बातें तुम्हें अपने संबंध में कभी पता ही न चलेंगी, अगर तुम लोगों से न मिलो। समझो कि गाली देने वाला तुम्हें कभी मिले ही न, तो तुम्हें अपने भीतर के क्रोध का पता न चलेगा। कैसे पता चलेगा? गाली देने वाला तुम्हें कभी मिले ही न, अपमान करने वाला कभी मिले ही न, तो तुम यही समझोगे कि तुम अक्रोधी हो। गाली देने वाला मिले, तब तुम्हारे भीतर के क्रोध का तुम्हें पहली दफा संस्पर्श होगा।

तो गाली देने वाले ने तुम्हारे आत्म-दर्शन में सहायता दी; उसने तुम्हारे एक पहलू को रोशन किया; तुम्हारा एक अंधेरा हिस्सा दबा पड़ा था, उसे जगाया; उसने तुम्हें बताया कि तुम्हारे भीतर क्रोध है; उसने तुम्हें स्वयं को समझने के लिए सुविधा दी।

जंगल में भाग गए संन्यासी की सुविधाएं खो जाती हैं--न कोई गाली देता, न कोई सम्मान करता, न कोई धन का प्रलोभन देता--कोई कुछ मौका नहीं देता। वह अकेला पड़ा रह जाता है; आत्म-दर्शन कठिन हो जाता है। संसार में आत्म-दर्शन का उपाय है। नहीं तो परमात्मा ने जंगल ही जंगल बनाए होते और एक-एक आदमी को एक-एक जंगल दिया होता। परमात्मा तुमसे थोड़ा ज्यादा समझदार है, इतना तो मानोगे? परमात्मा की सुनो, महात्माओं से बचो। महात्मा कोशिश कर रहे हैं परमात्मा से भी ज्यादा समझदार होने की। वे ज्यादा चालाकी दिखला रहे हैं। वे कहते हैं, हम जंगल में चले जाएंगे, वहीं साधना करेंगे।

साधना संसार में है, जंगल में तो साधना का सवाल ही नहीं है। जंगल में तो तुम सड़ोगे, साधना क्या करोगे? साधना यहां है, जहां प्रतिपल कांटे हैं। और कांटों के बीच जिस दिन तुम चलना सीख लो, और कांटों के बीच तो चलो और कांटे चुभें न--बस उसी दिन तुम समझ लेना, अब तुम योग्य हुए जंगल जाने के। अब जाना हो तो चले जाओ। फिर मैं तुम्हें रोकता नहीं। लेकिन फिर तुम खुद ही कहोगे, अब जंगल जाने की जरूरत भी क्या है; यहीं भीड़ में जंगल हो गया है।

अगर तुम्हारे भीतर प्रौढ़ता आ जाए, प्रज्ञा का जन्म हो। और कैसे होगा जन्म? संघर्षण से होता है; प्रतिपल जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करने से होता है; हारने, गिरने, उठने से होता है। हजार बार गाली दी जाएगी, तुम क्रोधित होओगे। एक बार तो ऐसा क्षण पाओगे, जब गाली दी जाएगी और तुम क्रोधित न होओगे। हजार बार के अनुभव से तुम्हें समझ में आ जाएगा, अपने को जलाना व्यर्थ है; गाली कोई दूसरा दे रहा है, दंड अपने को देना व्यर्थ है। एक दिन तो ऐसा आएगा कि कोई दूसरा गाली देगा और तुम्हारे भीतर क्रोध न होगा। उसी दिन तुम्हारे भीतर एक कांटा फूल बन गया; आदमी तुम दूसरे हो गए। उस दिन तुम्हें जो शांति मिलेगी, कोई जंगल नहीं दे सकता। जंगल की शांति मुर्दा है। अगर यहां गालियों के बीच तुम शांत हो गए, तो तुम्हारी शांति में एक जीवंतता होगी। जंगल की शांति मरघट जैसी है; सन्नाटा है, क्योंकि वहां कोई है ही नहीं। वह नकारात्मक है। संसार में अगर तुम शांत हो जाओ तो विधायक है। जंगल की शांति मरने जैसी है, संसार की शांति बड़ी जीवंत है।

और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा को पाना हो तो तुम भागना मत। भगोड़ों से परमात्मा का कभी कोई संबंध नहीं जुड़ता। कायरों से संबंध जुड़ भी कैसे सकता है? चुनौती स्वीकार करने वाला साहस चाहिए। माना कि साहस में गिरना भी होता है, चोट भी खानी होती है। लेकिन वही मार्ग है, वही एकमात्र मार्ग है, और कोई मार्ग नहीं है।

तुमने कभी ख्याल किया, बहुत सुविधा-संपन्न घरों के बच्चे बुद्धिमान नहीं होते। हो नहीं सकते; चुनौती नहीं है। सारे बुद्धिमान बच्चे उन घरों से आते हैं, जहां बड़ा संघर्ष करना पड़ता है; जहां छोटी-छोटी बात को पाना मुश्किल है। करोड़पतियों के बच्चे अक्सर व्यर्थ होते हैं।

हेनरी फोर्ड अपने लड़कों को सड़क पर जूता पालिश करने भिजवाता था; वह कहता था, अपने जेब का खर्च तुम खुद ही पैदा करो। दुनिया का सबसे बड़ा अरबपति! पड़ोसियों ने भी उससे कहा कि यह ज्यादती है, यह तुम क्या करवा रहे हो?

उसने कहा कि मैंने खुद जूते पालिश कर-कर के पैसा कमाया है। जो मेरे जमाने में धनपति थे, भीख मांग रहे हैं। मैं भिखमंगा था; मैं आज दुनिया का सबसे बड़ा करोड़पति हो गया हूं। मैं अपने बच्चों को भिखमंगा नहीं बनाना चाहता, इसलिए उन्हें जूते पर पालिश करने सड़क पर भेजता हूं।

वह आदमी होशियार था। वह आदमी कुशल था। धनपतियों के बच्चे अक्सर मुर्दा हो जाते हैं, गोबर-गणेश हो जाते हैं। उनको खोदो तो गोबर ही गोबर पाओगे, गणेश कहीं भी न मिलेंगे; क्योंकि जीवन की चुनौती नहीं है, संघर्षण नहीं है।

अगर बहुत सुरक्षा मिले और कोई संघर्ष न हो, तो रीढ़ टूट जाती है। रीढ़ बनती ही संघर्ष में है। जितना तुम संघर्ष लेते हो, उतनी ही रीढ़ पैदा होती है; उतने ही तुम मजबूत होते हो।

संसार से भागने को मैं नहीं कहता, मैं संसार से जागने को कहता हूं। संन्यास भगोड़ापन नहीं है, संन्यास महान संघर्ष है जागरण का। और जहां चुनौती है, वहां से हट मत जाना। हां, जब तक चुनौती का काम ही पूरा न हो जाए, तब तक तो टिके ही रहना। और जल्दी ही काम पूरा हो सकता है। अगर भागने की वृत्ति न हो, तो जल्दी ही जागना हो सकता है; क्योंकि वही शक्ति जो भागने में लगती है, वही जागने में लग जाती है।

मैं तुमसे उस शांति को नहीं कहता जो मरघट पर है, मैं तुमसे उस शांति को कहता हूं जो श्रम से अर्जित की जाती है; मर कर नहीं, जो महान रूप से जीवंत होकर उपलब्ध होती है--विधायक।

चौथा प्रश्नः ऐसा लगता है कि भज गोविन्दम वानप्रस्थ अवस्था के लिए कहा गया है। लेकिन आप उसे सबके लिए कह रहे हैं!

वानप्रस्थ का अर्थ क्या होता है? वानप्रस्थ का अर्थ होता हैः जंगल की तरफ मुंह।

सभी का है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, उस परम एकांत को खोज लेना है, जिसका नाम परमात्मा है। सभी वानप्रस्थ हैं; देर-अबेर सभी को उस परम एकांत में प्रवेश करना है, उस भीतर के वन को खोज लेना है। वानप्रस्थ से कोई शारीरिक उम्र का नाता नहीं है। नहीं तो शंकराचार्य को क्या करोगे? तैंतीस साल में तो वे चल ही बसे। तो तैंतीस साल में--उसके पहले ही वानप्रस्थ भी हो गए, संन्यस्त भी हो गए।

तुम होशियार हो। होशियारी ही तुम्हारा दुख है। तुम चालाक हो। तुम कहते हो, यह तो बूढ़ों के लिए है। वानप्रस्थ के लिए, यानी जब संसार में कुछ करने योग्य बचेगा ही नहीं--कि जब लोग ही तुम्हें जबरदस्ती रिटायर कर देंगे; तुम चिल्लाते ही रहोगे कि अभी कहां भेज रहे हो और लोग ही तुम्हारी अरथी बांधने लगेंगे--तब तुम सोचते हो कि भज गोविन्दम करोगे? लोग मरते दम तक भी छोड़ना नहीं चाहते। मर कर भी नहीं छोड़ना चाहते!

लंदन में एक मेडिकल कालेज है, जिसमें एक आदमी की लाश रखी है। दो सौ साल पहले उस आदमी ने कालेज को दान दिया था। और दान के साथ वह यह शर्त कर गया कि जब तक जिंदा रहूंगा, तब तक तो ट्रस्टियों के बोर्ड की अध्यक्षता करूंगा ही--मरने के बाद भी! तो जब भी ट्रस्टियों के बोर्ड की अध्यक्षता होती है, उसकी लाश चेयरमैन की जगह बैठी रहती है--अभी भी। मर कर भी नहीं लोग वानप्रस्थ होते, तुम तो जिंदा की पूछ रहे हो! वह अभी भी प्रिसाइड करता है; अभी भी अध्यक्ष वही रहता है; और अभी भी ट्रस्टियों को खड़े होकर कहना पड़ता है--अध्यक्ष महोदय! तब वे दूसरों से कुछ कह पाते हैं। वह ट्रस्ट डीड है, उसको बदला भी नहीं जा सकता। वह कानूनन उसका हक है। लाश में से सब निकाल दिया गया है, भूसा भर दिया गया है, लेकिन बैठे हैं! भूसा भरा है, लेकिन पद को पकड़े हुए हैं!

वानप्रस्थ तो तुम होना ही नहीं चाहते। वह तो मन में बड़ी पीड़ा लगती है--वानप्रस्थ! संन्यस्त! ये सब आखिरी बातें हैं; अंत में कर लेंगे।

अंत में जिसने करना चाहा, वह कभी न कर पाएगा; अभी जिसने करना चाहा, वही कर सकता है। अभी के अतिरिक्त कोई समय भी नहीं है। और छोटी-छोटी बातें बाधा डाल देती हैं।

कल ही एक मित्र ने आकर कहा--संन्यास लेकर गए थे--पत्नी गेरुआ वस्त्र नहीं पहनने देती; माला नहीं पहनने देती। और वे राजी हो गए! उनकी हालत देख कर मैंने भी कहा कि अब ठीक है, अब जब पत्नी से ही हार गए तो अब और किससे जीतने की तुम सोचते हो?

जरा सा भी संघर्षण, जरा सी चुनौती--और आदमी बस चारों खाने चित्त है।

मैं तुमसे कह रहा हूं कि अभी समय है--और केवल अभी समय है! समय किसी और ढंग में आता ही नहीं। अगर तुम इस क्षण का उपयोग कर सको, और तुम्हारी चेतना वन की तरफ उन्मुख हो सके--वन तो प्रतीक है--एकांत की तरफ उन्मुख हो सके, परमात्मा की तरफ उन्मुख हो सके, तो संन्यास का फल लगेगा।

वानप्रस्थ तैयारी है संन्यस्त होने की। संसार की तरफ पीठ हो जाए; संसार में धीरे-धीरे रस खो जाए; सुख हो कि दुख संसार का, बराबर मालूम होने लगे; जीतो कि हारो, कोई फर्क न रह जाए--तुम वानप्रस्थ हो गए।

इसका शारीरिक उम्र से कोई भी संबंध नहीं है, इसका तुम्हारी मानसिक प्रौढ़ता से संबंध है; यह मानसिक उम्र की बात है। कई लोग हैं, जो अस्सी वर्ष की उम्र में भी, मानसिक उम्र उनकी आठ-दस साल से ज्यादा नहीं होती। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आठ-दस साल के बच्चे में भी अस्सी साल की मानसिक उम्र होती है। यह तो चेतना की त्वरा और तीव्रता पर निर्भर है।

शंकराचार्य ने दस वर्ष की उम्र में जो वचन बोले, वे लोग सौ वर्ष की उम्र में नहीं बोल पाते। शंकराचार्य ने दस वर्ष की उम्र में उपनिषदों की जो परिभाषा की, वह सौ वर्ष का आदमी भी नहीं कर पाता। यह तो त्वरा की बात है, तीव्रता की बात है, सघनता की बात है।

अपने प्राण को पूरा जगाओ और अपनी पूरी शक्ति को उंडेल दो, तो तुम पाओगे इसी क्षण वानप्रस्थ हो गया, इसी क्षण संन्यस्त हो गया। लेकिन अगर तुम भागते रहे और बचते रहे और टालते रहे और स्थगित करते रहे कि कल देख लेंगे--आज सिनेमा देख लें, कल मंदिर हो आएंगे। अगर स्थगित ही करना हो तो सिनेमा को कर दो, बुढ़ापे में देख लेना। सिनेमा ही है, बुढ़ापे में देख लेना। लेकिन परमात्मा को तुम बुढ़ापे के लिए स्थगित कर रहे हो। जवानी तुम संसार को देते हो, बुढ़ापा परमात्मा को! तुम्हारे देने से पता चलता है कि मूल्य किसका है। जवानी तुम व्यर्थ को देते हो और बुढ़ापा परमात्मा को! जब शक्ति होती है तब तुम गलत करते हो और जब

शक्ति नहीं होती तब तुम कहते हो कि अच्छा करेंगे। जब करने को ही कुछ नहीं बचता, तब तुम कहते हो कि अच्छा करेंगे। जब मरने लगते हो, तब तुम कहते हो समर्पण। और जब तक तुम पकड़ सकते थे, तब तक तुमने कभी समर्पण की बात न सोची। तुम किसे धोखा दे रहे हो? इसलिए तो शंकर कहते हैं, आंख के अंधे। तुम किसे धोखा दे रहे हो?

जब तक शक्ति है, तब तक करो स्मरण; क्योंकि स्मरण के लिए महाशक्ति की जरूरत है। उससे बड़ा कोई कृत्य नहीं है; वह तुम्हारी समग्रता को मांगता है; वह तुम्हारे रोएं-रोएं, श्वास-श्वास को मांगता है। जब तुम्हारे हाथ-पैर जीर्ण-जर्जर हो जाएंगे, लाठी टेक कर चलने लगोगे, आंख से दिखाई न पड़ेगा, तब तुम स्मरण करोगे? तब तुमसे गोविन्द की आवाज भी न निकलेगी; तब तुम्हारा कंठ भी अवरुद्ध हो गया होगा; तब तुम कहोगे भी मुर्दा-मुर्दा; वह परमात्मा तक पहुंचेगा?

त्वरा चाहिए; बाढ़ चाहिए; जीवन की पूरी ऊर्जा को दांव पर लगा देने की हिम्मत, तैयारी चाहिए। वह आज ही हो सकता है।

जिस दिन तुम्हें समझ आ जाए, उसी दिन वानप्रस्थ।

आखिरी प्रश्नः ब्रह्म में रमण करने वाला क्या सचमुच भोग में रत हो सकता है, अथवा वह उसका अभिनय करता है?

ब्रह्म में रमण करने वाला ही केवल भोग में रत होता है। वही केवल भोगता है परम आनंद को। वही भोगता है, बाकी सिर्फ धोखे में हैं कि भोग रहे हैं। बाकी तो खोटे सिक्के ढो रहे हैं; भोग के नाम पर दुख भोग रहे हैं। तुम्हारे भोग को अगर सार-संक्षिप्त में कहा जाए तो दुख। वही तुमने भोगा है, और क्या भोगा है? कहते तुम हो कि हम सुख भोग रहे हैं। भोगते तुम दुख हो।

ब्रह्मज्ञानी ही केवल भोगता है। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः! जिन्होंने त्यागा, उन्होंने ही भोगा। वह परमात्मा को भोगता है। तुम क्षुद्र को भोग रहे हो और क्षुद्र को भोग कर महादुख पा रहे हो।

रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया और उनके चरणों में उसने बहुत से रुपये रखे। रामकृष्ण ने कहा, ले जा भाई। उस आदमी ने कहा कि आप महात्यागी हैं--इसका और एक सबूत मिला। रामकृष्ण कहने लगे, महात्यागी तू है, हम नहीं। क्योंकि हम तो परमात्मा को भोग रहे हैं, तू छोड़ रहा है; तू धन बटोर रहा है, हम परमात्मा बटोर रहे हैं--त्यागी कौन है और भोगी कौन है? भोगी हम हैं, त्यागी तू है।

कंकड़-पत्थर जो बीन रहा है और हीरों को छोड़ रहा है, उसको भोगी कहोगे या त्यागी? व्यर्थ को जो सम्हाल रहा है और सार्थक को गंवा रहा है, उसको ही त्यागी कहना चाहिए।

ब्रह्म-रमण परम भोग है। वह जीवन के परम आनंद में प्रवेश है। उससे बड़ा फिर कोई आनंद नहीं। उसके अतिरिक्त सब दुख है।

इसलिए तुम यह तो पूछो ही मत कि ब्रह्म में रमण करने वाला क्या सचमुच भोग में रत हो सकता है? तुम्हारे भोग में रत नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हारा भोग भोग ही नहीं है। वह भोग में ही रत है, लेकिन उसका और ही भोग है। उस भोग को जानने के लिए तुम्हें तुम्हारा अपना भोग खोना पड़े, होश जगाना पड़े। तुम सपने में हो अभी, भोगा तुमने कुछ भी नहीं है, केवल भोग के सपने देखे हैं। ब्रह्मज्ञानी को सत्य का भोग उपलब्ध हुआ है, परमभोग उपलब्ध हुआ है।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

परम-गीत की एक कड़ी

सूत्र

भगवद्गीता किंचिदधीता गंगाजल लवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।।
रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
योगी योगनियोजितचित्तो रमते बालोन्मत्तवदेव।।
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।।
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्य सहिष्णुः।।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्।।
शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसंधौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वांछस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्।।

मैंने एक कथा सुनी है। एक ततैया ने विशाल भवन के बाहर खिड़की के पास अपना घर बनाया था। सर्दियों में ततैया सोती, विश्राम करती; गर्मियों में उड़ती, नाचती, फूलों से पराग इकट्ठा करती। प्रसन्नचित्त थी, आनंदित थी। पर ततैया बड़ी विशिष्ट थी, विचारक थी--सोचती बहुत और दूसरी ततैयों को बड़े निंदा के भाव से देखती; क्योंकि उनका जीवन बस वासना का जीवन था; विचार की कोई झलक भी उन्हें नहीं मिली; चिंतन-मनन उन्होंने जाना नहीं; शास्त्रों से उनकी कोई पहचान नहीं!

जिस भवन के बाहर वह रहती थी, अक्सर उसमें भीतर भी प्रवेश करती, उड़ती। वह भवन उसे बड़ा प्यारा था। उस भवन में आने-जाने वाले लोगों से उसे ज्यादा आत्मीयता मालूम होती थी, क्योंकि वे भी विचारक थे, चिंतक थे। भवन वस्तुतः एक बड़ा ग्रंथालय था। अध्यापक आते, साहित्यकार आते, दार्शनिक आते, कवि आते, ऐसे ही लोगों का वहां आगमन था। ततैया को अक्सर लोग बाहर भगा देते, फिर भी वह लौट-लौट आती।

धीरे-धीरे उसने पढ़ना-लिखना भी शुरू कर दिया। बच्चों के विभाग से शुरू किया और जल्दी ही वह दर्शन की बड़ी-बड़ी मोटी किताबें पढ़ने लगी, विज्ञान और काव्य के बड़े शास्त्रों में प्रवेश करने लगी। उसकी अकड़ बढ़ती गई। अब तो दूसरी ततैयों को देखना भी उसे बरदाश्त न था, वे सब उसे नारकीय मालूम होने लगीं। उसका अहंकार विक्षिप्त हुआ जा रहा था। अब तो रात और दिन विचार ही चलते रहते थे। वह पुराने दिनों का आनंद--धूप में नाचना, वृक्षों के चक्कर काटना, हवाओं में पर तौलना--सब उसे भूल गया। अब अधिकतर वह

बैठी ही रहती--सोचती, विचारती, बड़े गहन चिंतन में लीन होती। संसार किसने बनाया, क्यों बनाया? अस्तित्व कहां से आया, कहां जा रहा है? ऐसे अनूठे प्रश्नों ने उसके हृदय में घर कर लिया।

एक दिन उड्डयन विज्ञान की एक किताब को पढ़ते वक्त वह बड़ी मुश्किल में पड़ गई। लिखा था उस किताब में--एयरोडायनामिक्स की किताब में--कि ततैया का शरीर उसके परों से बहुत ज्यादा वजनी होता है; ततैया को वस्तुतः नियमानुसार उड़ना नहीं चाहिए; उसके पर छोटे हैं, कमजोर हैं, शरीर वजनी है और बड़ा है।

वह तो घबड़ा गई। अब तक उसे पता ही न चला था कि उसका शरीर बड़ा है और पर छोटे हैं। आज पहली दफा पता चला। और जोशास्त्र में लिखा हो, उसे इनकार करना तो संभव नहीं; जो वैज्ञानिकों ने कहा हो, उसके विपरीत तो चलना संभव नहीं।

वह बड़ी उदास हो गई। उस दिन वह अपने छत्ते तक उड़ कर न आ सकी। पैदल चलती हुई आई। विज्ञान के विपरीत उड़ना कैसे संभव है! भारी उदास हो गई। अब तो हिलना-डुलना भी उसने बंद कर दिया। यद्यपि अब भी वह देखती, दूसरी ततैएं उड़ती हैं, चक्कर काटती हैं हवा में, फूलों के पास जाती हैं, लेकिन मन ही मन में वह उनके प्रति दया खाती कि ये सब अज्ञानवश उड़ रही हैं। काश, इन्हें पता होता; काश, इन्होंने विज्ञान जाना होता; तो यह सब उड़ना बंद हो जाता। ततैया उड़ कैसे सकती है? उसके पंख छोटे हैं, शरीर बड़ा है!

लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि एक पक्षी ने अचानक झपट्टा मारा, वह ततैया का सुबह का नाश्ता कर लेना चाहता था। घबड़ाहट में शास्त्र भूल गया, ततैया उड़ गई। जब दूर जाकर एक झाड़ी में उतरी, थोड़ा होश लौटा, घबड़ाहट बंद हुई, तब उसने सोचा कि यह क्या हुआ? ततैया उड़ नहीं सकती और मैं उड़ी! तो जरूर ही कोई अवरोध मेरे मन में, कोई ब्लाक, जो कि मेरी उड़ने की स्वाभाविक क्षमता को रोक रहा था--संकट में, भय के कारण, खतरे के कारण टूट गया है। यह मन के अवरोध के संबंध में भी उसने मनोविज्ञान की एक किताब में पढ़ा था।

लेकिन उस दिन से वह उड़ने लगी; उस दिन से उसने शास्त्र-ज्ञान छोड़ दिया; उस दिन से वह फिर ततैया हो गई, स्वाभाविक। उस दिन से उसके मन में दूसरी ततैयों के प्रति निंदा चली गई; ज्ञान से मुक्त हो गई। उसी दिन उसने स्वभाव को अनुभव किया।

धर्म ज्ञान से भी मुक्ति है। और उसी मुक्ति में परमज्ञान है।

शास्त्र तुम्हें पंगु करने को नहीं हैं, तुम्हें उड़ने की क्षमता देने को हैं। और जिन शास्त्रों ने तुम्हें पंगु किया हो, जानना कि तुम गलत समझे; तुमने व्याख्या में कहीं कोई भूल कर ली। जिन शास्त्रों ने तुम्हें उदास किया हो, समझना कि तुम चूक गए; तुम कुछ का कुछ समझ गए। जिन शास्त्रों ने तुम्हारे उड़ने की, बहने की स्वाभाविक क्षमता छीन ली हो, वे शास्त्र तुम्हारे मित्र नहीं हैं, तुमने उन्हें शत्रुओं में परिणत कर लिया। शास्त्र मुक्तिदायी हो, तो ही शास्त्र है। और शास्त्र तुम्हें स्वाभाविक करे, तो ही शास्त्र है। और शास्त्र तुम्हें दूसरों के प्रति निंदा से न भरे, वरन उनके भीतर भी छिपे हुए परमात्मा की अनुभूति कराए, तो ही शास्त्र है।

शंकर के ये वचन बड़े महत्वपूर्ण हैं।

"जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है... "

किंचित को ख्याल रखना।

"जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है और गंगाजल की एक बूंद भी पी ली है और मुरारी की थोड़ी सी अर्चना की है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है?"

गीता तो तुमने बहुत पढ़ी है। यह देश गीता तो हजारों साल से पढ़ रहा है। गीता तो प्रत्येक व्यक्ति की जबान पर है। प्रत्येक व्यक्ति आकंठ गीता से भरा है, लेकिन मुक्ति तो कहीं दिखाई नहीं पड़ती, सिर्फ मृत्यु दिखाई पड़ती है।

और शंकर कहते हैं, जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है, मृत्यु उसकी विसर्जित हो गई। जिसने जरा सा भी स्वाद ले लिया है परमात्मा का। एक बूंद भी गंगाजल की जिसके कंठ में उतर गई। तुम तो स्नान कर आए हो! एक बूंद भी गंगाजल की जिसके कंठ उतर गई, जिसने थोड़ी सी भी अर्चना की है...

तुमने तो कितनी पूजा की, कितने पाठ किए, कितने यज्ञों में सम्मिलित हुए, कितने मंदिरों के द्वार पर सिर पटके! मंदिरों के द्वार के पत्थर घिस गए हैं तुम्हारे सिर के पटकने से, लेकिन तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हुई। कहीं कोई मौलिक चूक हो गई है, कोई बुनियादी भ्रांति है।

किंचित भी मुक्तिदायी है, लेकिन समझ में आए तो। अन्यथा पूरा शास्त्र भी कारागृह बन जाएगा। एक शब्द भी छुड़ा सकता है। अन्यथा शब्द ही तुम्हारी छाती पर पहाड़ बन जाएंगे। शास्त्र नहीं मुक्त करता, समझ मुक्त करती है। और समझ तुम्हें पैदा करनी पड़ेगी, शास्त्र नहीं देता।

इसे थोड़ा समझ लो।

समझ तुम्हें पैदा करनी पड़ेगी, तो ही शास्त्र सार्थक होगा। अगर तुम्हारे पास समझ न हो, तोशास्त्र तुम्हें समझ नहीं दे सकता, सिद्धांत दे सकता है। सिद्धांतों का कोई भी मूल्य नहीं है; क्योंकि सिद्धांत एक तरफ पड़ा रहता है, तुम चलते और ही ढंग से रहते हो।

मैंने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन को पूछा कि बहुत दिन से तुम्हारे बच्चे नहीं दिखाई पड़ते?

उसने कहा, मैं तो परिवार-नियोजन में भरोसा करता हूं।

मैं थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि उसके सत्रह बच्चे हैं! और वह कहता है, मैं परिवार-नियोजन में भरोसा करता हूं। मैंने कहा, मैं समझा नहीं, तुम्हारा मतलब क्या है?

उसने कहा, मैं तो परिवार-नियोजन वालों की इस बात में भरोसा करता हूंः कि दो या तीन बच्चे, होते हैं घर में अच्छे। तो बाकी को मैं मोहल्ले-पड़ोस में खेलने-खाने को भेज देता हूं। उनमें से अधिकतर तो वहीं सोने भी लगे हैं। घर में मैं दो-तीन बच्चे से ज्यादा नहीं रखता।

दो या तीन बच्चे, होते हैं घर में अच्छे! तो पड़ोसियों के घर में भेज देता है। सिद्धांत को पूरा कर रहा है। तुम्हारी शास्त्र से जो समझ है, बस वह ऐसे ही पूरी होती है। बच्चे पैदा करने से तुम नहीं रुकते, बच्चों को पड़ोसियों की छाती पर सवार कर देते हो। तरकीब आदमी निकाल लेता है।

सिद्धांत से बचना बड़ा सुगम है, समझ भर से बचना संभव नहीं है। सिद्धांत के पास से गुजर कर निकला जा सकता है; क्योंकि सिद्धांत तो मुर्दा है, तुम जिंदा हो। सिद्धांत तुम्हारा पीछा नहीं कर सकता; तुम सिद्धांत से अपनी चादर बचा कर निकल सकते हो। सिद्धांत क्या करेगा? पत्थर का टुकड़ा है! लेकिन समझ से बच कर तुम कहां जाओगे? समझ तुम्हारे भीतर है; तुम कहीं भी भागोगे, तुम्हारे साथ होगी।

इसलिए इस जोर को ख्याल में ले लो। सिद्धांत पर बहुत जोर मत देना, समझ पर जोर देना। सिद्धांत उधार मिल सकता है, समझ खुद पैदा करनी होती है। सिद्धांत चुरा भी सकते हो--शास्त्र से, गुरुओं से। समझ तो इंच-इंच संघर्ष करने से मिलती है; समझ के लिए तो मूल्य चुकाना पड़ता है, मुफ्त नहीं मिलती। सिद्धांत मुफ्त

मिल जाते हैं, उनकी कोई कीमत नहीं है। पर उनकी कोई कीमत होने की जरूरत भी नहीं है, वे कूड़ा-करकट हैं, कचरा हैं।

"जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है... "

भगवद्गीता किंचिदधीता...

जिसने जरा सी भी पढ़ ली, बस काम हो गया। कोई पूरी गीता पढ़ने के लिए थोड़े ही रुकना पड़ता है; एक शब्द भी समझ लिया। लेकिन समझ का सवाल है।

महाभारत में कथा है कि द्रोण ने सोचा था कि इन सारे पांडवों और कौरवों में युधिष्ठिर सबसे ज्यादा बुद्धिमान मालूम होता है। लेकिन थोड़े दिनों के अनुभव से लगा कि वह तो बिल्कुल बुद्धू है। दूसरे बच्चे तो आगे जाने लगे, नया-नया पाठ रोज सीखने लगे और युधिष्ठिर पहले पाठ पर ही रुका रहा। आखिर द्रोण की सीमा-क्षमता भी समाप्त हो गई। द्रोण ने पूछा, तुम आगे बढ़ोगे कि पहले ही पाठ पर रुके रहोगे? लेकिन युधिष्ठिर ने कहा, जब तक पहला पाठ समझ में न आ जाए, तब तक दूसरे पाठ पर जाने से सार भी क्या है?

पहला पाठ था सत्य के संबंध में। दूसरे बच्चों ने याद कर लिया, पढ़ लिया, आगे बढ़ गए। लेकिन युधिष्ठिर ने कहा कि मैं जब तक सत्य बोलने ही न लगूं, तब तक दूसरे पाठ पर जाऊं कैसे? और आप जल्दी मत करें। तब द्रोण को समझ में आया। खुद युधिष्ठिर की इस मनोदशा को देख कर द्रोण को पहली दफा समझ में आया कि सत्य के आगे और पाठ हो भी क्या सकता है! तब उन्होंने कहा, तू जल्दी मत कर। तू पहला पाठ ही पूरा कर ले तो सब पाठ पूरे हो गए। फिर दूसरा पाठ और है कहां? अगर सत्य बोलना ही आ गया, सत्य होना आ गया, तो फिर और पाठ की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन पाठ अगर सिर्फ पढ़ने हों, तब एक बात है; पाठ अगर जीने हों, तो बिल्कुल दूसरी बात है।

अंत में महाभारत में कथा है कि जब सारे भाई स्वर्गारोहण के लिए गए, तो एक-एक गिरने लगा, पिघलने लगा, गलने लगा; स्वर्ग के मार्ग पर धीरे-धीरे एक-एक गिरने लगा, द्वार तक सिर्फ युधिष्ठिर पहुंचे और उनका कुत्ता पहुंचा। सत्य पहुंचा; और सत्य का जिसने गहरा सत्संग किया था, वह पहुंचा। वह कुत्ता था उनका। वह सदा उनके साथ रहा था। उसकी निष्ठा अपार थी। भाइयों की भी निष्ठा इतनी अपार न थी। भाई भी रास्ते में गल गए, कुत्ता न गला। उसकी श्रद्धा अनन्य थी। उसने कभी संदेह किया ही न था। उसने युधिष्ठिर के इशारे को ही अपना जीवन समझा था। युधिष्ठिर भी चकित हुए कि भाइयों का भी साथ छूट गया, वे भी गिर गए मार्ग पर, स्वर्ग के द्वार तक न आ सके--आ सका एक कुत्ता!

द्वार खुला, युधिष्ठिर का स्वागत हुआ, लेकिन द्वारपाल ने कहा, कृपया आप ही भीतर आ सकते हैं, कुत्ता न आ सकेगा। कुत्ता कभी इसके पहले स्वर्ग में प्रवेश भी नहीं पाया। आदमी ही मुश्किल से पाते हैं।

तो युधिष्ठिर ने कहा, फिर मैं भीतर न आ सकूंगा; जिस कुत्ते ने मेरा इतने दूर तक साथ दिया, जहां मेरे भाई भी मेरे साथी न हो सके, संगी न हो सके; जिसकी श्रद्धा ऐसी अनन्य है; जो मेरे साथ इतने दूर आया, उसका साथ मैं न छोड़ सकूंगा; अन्यथा मैं कुत्ते से भी गया-बीता हुआ। जिसने मेरा साथ दिया, उसका साथ मैं दूंगा, द्वार तुम बंद कर लो।

तब सारा स्वर्ग हंसने लगा; भीड़ इकट्ठी हो गई देवताओं की और उन्होंने कहा, आप भीतर आएं। और तब गौर से देखा युधिष्ठिर ने, तो कुत्ता न था, स्वयं विष्णु थे! वह परीक्षा थी। वह परीक्षा थी, अगर युधिष्ठिर उस समय कुत्ते को भूल जाते और भीतर प्रवेश कर देते तो स्वर्ग चूक जाता। वह परीक्षा थी--प्रेम की, श्रद्धा की, अनन्य भाव की।

एक ही पाठ युधिष्ठिर ने सीखा--सत्य। उतना काफी हुआ; उतना स्वर्ग तक ले जा सका। अर्जुन को सीखने में बड़ी देर लगी। पूरी गीता कृष्ण ने कही, तो भी संदेह उठते चले गए। युधिष्ठिर ने सिर्फ एक पाठ सीखा जीवन में, वह छोटा सा पाठ था सत्य का। गुरु तक कोशक हुआ कि यह थोड़ा मंद बुद्धि मालूम होता है, पहले ही पाठ पर अटका है। लेकिन फिर समझ में आया कि पहले पाठ के आगे और पाठ कहां हैं!

जिसने एक पाठ भी सीख लिया, उसने सब सीख लिया। तुम सीखने की ज्यादा दौड़ में मत पड़ना, उसमें तुम वंचित हो जाओगे। किंचित भी--किंचिदधीता--जरा सा भी बोध परमात्मा का आ गया, परमात्मा का गीत थोड़ा सा भी सुनाई पड़ गया, एक कड़ी भी कान में पड़ गई, एक शब्द भी हृदय तक उतर गया, तो वही बीज बन जाएगा--फूटेगा, वृक्ष बनेगा, तुम अनंत सुगंध से भर जाओगे। एक बीज में सब कुछ छिपा है।

पंडित कोरे के कोरे रह जाते हैं--गीता कंठस्थ हो जाती है, गीत सुनाई नहीं पड़ता; शब्दों से मस्तिष्क भर जाता है, हृदय भीगता नहीं; दोहरा सकते हैं गीता को, आंख में एक आंसू नहीं उतरता; प्राण में कोई स्वर नहीं बजता; पैर में कोई थिरक नहीं आती; पत्थर की तरह, मुर्दे की भांति, यंत्र की भांति दोहरा देते हैं; भीतर सब अछूता ही रह जाता है; रेखा भी नहीं पड़ती, छाया भी नहीं पड़ती।

इसलिए शंकर कहते हैंः "जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है... "

इस गीता से कोई श्रीमद भगवद्गीता का संबंध नहीं है। क्योंकि जिसने किंचित भी कुरान पढ़ा है, वह भी पहुंच जाएगा; जिसने किंचित भी बाइबिल पढ़ी है, वह भी पहुंच जाएगा। और जिसने न बाइबिल पढ़ी है, न कुरान पढ़ा है, न गीता पढ़ी है--किंचित भी जीवन पढ़ा है, वह भी पहुंच जाएगा। जोर है इस बात पर कि जिसने थोड़ी अपनी समझ जगाई है, जिसने जाग कर देखा है; जो सोया-सोया नहीं जीया; जिसने आंखें खोलीं और जीवन को पहचाना है--जरा सा भी।

जरा सा छोर हाथ में आ जाए, फिर सारा स्वर्ग हाथ में है। एक किरण को भी तुम पकड़ लो, पूरा सूरज तुम्हारे हाथ में है। उसी किरण के सहारे अगर तुम चल पड़ो, तो सूरज कहां जाएगा? तुम अंधेरे घर में बैठे हो, खपड़ों के छेद से जरा सी एक किरण उतर रही है। उस किरण में पूरा सूरज छिपा है। तुम उसके सहारे ही चल पड़ो, तुम सूरज तक पहुंच जाओगे। पूरे सूरज को घर में उतारने की जरूरत भी नहीं है। उतने ज्यादा का करोगे क्या? अपच हो जाएगा।

तो ध्यान रखना, कहीं ऐसा न हो कि तुम शास्त्र को इकट्ठा करने में लग जाओ। अन्यथा शास्त्र तुम्हारा कारागृह बन जाएगा। उससे तुम्हारे पंख उन्मुक्त न होंगे; न तुम्हारे प्राण नाचेंगे; न तुम स्वाभाविक हो सकोगे।

शास्त्र के कारण जितने लोग अस्वाभाविक हो जाते हैं, उतने और किसी कारण से नहीं होते। अगर तुम समझ सको तो मैं तुमसे कहना चाहूंगाः शास्त्र के कारण जितने लोग अधार्मिक हो गए हैं, उतने किसी और कारण से नहीं। जितने शास्त्र बढ़ते गए हैं, उतना आदमी अंधा होता गया है; क्योंकि उसे लगता है कि सब समझ तो किताब में रखी है; पढ़ लेंगे किताब और समझ हाथ आ जाएगी।

काश समझ इतनी सस्ती होती! तो सारी दुनिया समझदार हो गई होती। गीता घर-घर में है; बाइबिल, कुरान घर-घर में है। क्या कमी है? समझ बिल्कुल नहीं है। और शास्त्र जितना उपलब्ध हो जाता है, उतना ही तुम चेष्टा छोड़ देते हो। ध्यान रखना, सिद्धांतों के जंगल में मत भटक जाना।

"जिसने किंचित भी गीता पढ़ी है, गंगाजल की एक बूंद भी पी ली है... "

पूरी गंगा का करोगे भी क्या? जरूरत भी क्या है? पूरी गंगा बहुत है; एक बूंद तुम्हारे लिए काफी है।

किस गंगा की बात कर रहे हैं शंकर?

जिस गंगा पर तुम तीर्थयात्रा करने गए हो, उस गंगा की बात नहीं हो रही। गंगा तो प्रतीक है। जिसने पवित्रता की एक बूंद पी ली है; जिसने निर्दोषता की एक बूंद पी ली है; जिसने सरलता की एक बूंद पी ली है; बस उसने गंगा को चख लिया। गंगा जाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि गंगा के किनारे कितने लोग ही बैठे हुए हैं, और कुछ भी नहीं हुआ। गंगा में ही जीए हैं, गंगा में ही स्नान किया है और कुछ भी नहीं हुआ।

नहीं, बाहर दिखाई पड़ने वाली गंगा का सवाल नहीं है; एक और गंगा है जो भीतर बहती है। और एक बूंद काफी है। तुम्हारे लिए एक बूंद भी जरूरत से ज्यादा है। क्योंकि हमारी सीमा एक बूंद से बड़ी कहां? हमारा होना एक बूंद से बड़ा कहां? हम इस विराट अस्तित्व में एक छोटी सी बूंद हैं। गंगा की एक छोटी सी बूंद ही हमें नहला देगी और पवित्र कर देगी।

लेकिन ठीक से समझ लेनाः गंगा से अर्थ है निर्दोषता का; गंगा से अर्थ है सरलता का; गंगा से अर्थ है भीतर के कुंआरेपन का; गंगा से अर्थ है छोटे बच्चे की तरह निर्दोष हो जाने का।

एक बूंद भी तुम्हारे बचपन की तुम वापस लौटा लो, फिर से तुम एक बार दुनिया को वैसा देख लो जैसा तुमने बचपन में देखा था--उन्हीं ताजी आंखों से, बिना किसी विचार के, बिना किसी निंदा के, बिना किसी निर्णय के। ऐसे ही देख लो जगत को जैसा तुमने पहली बार आंख खोली थी संसार में और देखा था। सिर्फ देखा था, कुछ भीतर विचार न उठा था--न कहा था अच्छा, न कहा था बुरा; न सुंदर, न असुंदर; न पाप, न पुण्य--सिर्फ देखा था भर आंख; सारा जगत तुम्हारे सामने था और भीतर कोई विचार न था। वैसे ही अगर तुम पुनः देख लो, एक बूंद भी वैसे बालपन की तुम्हें फिर मिल जाए, तो गंगा की बूंद तुमने चख ली।

"गंगाजल की एक बूंद भी पी है और मुरारी की थोड़ी भी अर्चना की है... "

बहुत अर्चना से कुछ भी न होगा। बहुत अर्चना तो यही बताती है कि तुम अर्चना करना जानते नहीं। बहुत अर्चना का तो यही अर्थ है कि तुम पुनरुक्ति कर रहे हो मृत प्रक्रियाओं की। अन्यथा एक बार भी राम का नाम ले दिया तो बस काफी होना चाहिए। तुम रोज बैठे माला फेर रहे हो, राम-राम, राम-राम कहे चले जा रहे हो। कितनी बार राम-राम कहने से जीवन में राम का अवतरण होगा? कोई संख्या का हिसाब है? लोग हैं, जो हिसाब रखे बैठे हैं कि उन्होंने एक करोड़ दफे मंत्र पढ़ा है। लेकिन अगर एक बार मंत्र पढ़ने से कुछ भी न हुआ, तो एक करोड़ बार पढ़ने से क्या होगा?

इसे थोड़ा समझो। मंत्र कोई गणित थोड़े ही है। मंत्र गुणात्मक है; क्वांटिटेटिव थोड़े ही है, मंत्र तो क्वालिटेटिव है; परिमाणात्मक नहीं है, गुणात्मक है। अगर होना है तो एक बार में हो जाएगा, अगर नहीं होना है तो तुम करोड़ बार दोहराते रहो तो क्या होगा! अगर पहली बार ही तुमने गलत दोहराया है, तो दूसरी बार तुम और भी गलत दोहराओगे, तीसरी बार और भी ज्यादा गलत दोहराओगे; क्योंकि गलती मजबूत होती जाएगी; जितना दोहराओगे, उतनी लीक मजबूत होती जाएगी। फिर तुम करोड़ बार दोहराओ कि दस करोड़ बार दोहराओ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ठीक पुकारने का सवाल है।

और तब एक हृदय की आह भी काफी है; तब एक पुकार से भी क्रांति हो जाती है। परमात्मा बहरा थोड़े ही है, और परमात्मा कोई तुम्हारी खुशामद का आतुर थोड़े ही है कि तुम बहुत बार कहो तब सुनेगा। बिना कहे भी सुन लेता है, तुम्हारे हृदय में होना चाहिए। और तुम्हारी खोपड़ी से तुम कितना ही दोहराओ, कभी नहीं सुना जाता; क्योंकि तुम्हारी चिंतना से परमात्मा का कोई संबंध नहीं है, तुम्हारी प्रार्थना से संबंध है।

मैंने सुना है, एक गांव में वर्षों से वर्षा न हुई थी। तो सारा गांव मंदिर में इकट्ठा हुआ था प्रार्थना करने को। एक छोटा बच्चा भी मंदिर जा रहा था प्रार्थना के लिए। सारे लोग रास्ते में उसका मजाक करने लगे। मंदिर का

पुजारी भी कहने लगा, नासमझ! यह छाता किसलिए ले जा रहा है? वर्षों से वर्षा नहीं हुई, इसीलिए तो हम प्रार्थना करने जा रहे हैं। वह बच्चा एक छाता ले आया था। भीड़ आई थी, कोई दस हजार लोग इकट्ठे हुए थे, कोई भी छाता न लाया था।

उस बच्चे ने कहा, मैं इसलिए छाता ले आया कि जब हम प्रार्थना करेंगे तो वर्षा जरूर होगी, लौटते में छाते की जरूरत पड़ेगी।

लोग हंसने लगे, उन्होंने कहा, पागल हुआ है?

अब सवाल यह है कि इन लोगों की प्रार्थना का कोई परिणाम होगा? इस एक छोटे बच्चे की प्रार्थना का परिणाम भर हो सकता था। इसका भरोसा था गहन, यह छाता लेकर आया था; इसे प्रार्थना पर जरा भी शक न था; प्रार्थना इसकी बड़ी गहन श्रद्धा थी। लेकिन इस बच्चे के भी मन को उन बड़े लोगों ने संदेह से भर दिया। उन्होंने कहा, जा, घर छाता रख आ। कहीं ऐसे वर्षा हुई है?

प्रार्थना करने जा रहे हैं, लेकिन भरोसा नहीं है कि प्रार्थना से वर्षा होने वाली है। तो फिर प्रार्थना क्यों करते हो?

नास्तिक होना बेहतर है, लेकिन ईमानदार होना जरूरी है। आस्तिकता का क्या मूल्य है, अगर बेईमान है? तुमने कितनी बार प्रार्थना की है, लेकिन तुमने भरोसा किया था कि पूरी होगी? फिर प्रार्थना पूरी नहीं होती तो तुम कहते हो, हम तो पहले से ही जानते थे कि कहीं प्रार्थना पूरी होने वाली है। तुमने कितनी बार मंदिर के द्वार खटखटाए, लेकिन कभी तुमने हृदयपूर्वक खटखटाए? कभी तुमने संपूर्ण मन से खटखटाए? या संदेह को लेकर ही गए थे? अगर संदेह को लेकर ही गए थे, तो न जाना उचित था, कम से कम ईमानदारी तो थी। जाकर तुमने किसको धोखा दिया? जाकर तुमने अपना ही नुकसान किया; क्योंकि जाकर तुम्हारी प्रार्थना ही टूटी, और कुछ भी न हुआ। और अगर बार-बार प्रार्थना टूटे, तो धीरे-धीरे आत्मश्रद्धा खो जाती है; आत्मविश्वास खो जाता है; अपने पर भरोसा खो जाता है। फिर प्रार्थना ओंठों से होती है, प्राणों से नहीं होती।

"मुरारी की थोड़ी सी भी अर्चना जिसने की है... "

थोड़ी सी काफी है। शंकर का जोर समझ लेना। मात्रा का सवाल नहीं है कि तुमने कितनी की है, गुण का सवाल है कि तुमने कैसे की है।

मैंने एक वकील के संबंध में सुना है कि वह रोज प्रार्थना कर लेता है। लेकिन ज्यादा नहीं करता, वकील है। पहले दिन प्रार्थना की थी, दूसरे दिन कहा--डिट्टो! फिर तीसरे दिन भी डिट्टो। पूरी प्रार्थना क्या करनी है, क्या बकवास लगा रखी है! कानूनी हिसाब साफ है। एक दफा कह दिया, फिर नीचे लिख दिया--डिट्टो! वही!

लोग गणित से जी रहे हैं। प्रार्थना में भी गणित है; वहां भी होशियारी है, कुशलता है। वहां भी तुम सरल नहीं हो। जैसे अगर परमात्मा की जेब काटने का मौका मिले तो तुम छोड़ोगे नहीं। शायद इसीलिए परमात्मा छिपा है। तुम उसकी दुर्गति कर दोगे। वह तुम्हारे सामने आने से डरता है।

सरलता अपने आप में प्रार्थना है।

"जिसने थोड़ी सी भी अर्चना की है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है?"

जिसने जरा भी प्रार्थना का स्वाद सीख लिया, मृत्यु के पार हो गया। मरते वही हैं, जो भयभीत हैं। भय मारता है। मरते वही हैं, जो अहंकारी हैं। अहंकार की मृत्यु होती है। मरते वही हैं, जिन्होंने जीवन को जाना नहीं। जिन्होंने जीवन को जरा सा भी जान लिया है, फिर कैसी मृत्यु? फिर यमराज के घर तुम्हारी चर्चा नहीं होती, तुम्हारी चर्चा बंद हो जाती है। तुम उसके हिसाब के बाहर हो गए। थोड़ा सा भी जिसने परमात्मा का

गीत समझ लिया, फिर उसकी कैसी मौत? फिर तुम जैसे हो, ऐसे चाहे न रहोगे, लेकिन तुम्हारा जो अंतरतम है, वह सदा रहेगा। तुमने जिस बुद्धि से विचार किए हैं, शायद वह न रहेगी; तुमने जिस शरीर से भोग किया है, शायद वह न रहेगा; लेकिन जिस अंतरतम से तुमने श्रद्धा की है, उसे मिटाने का कोई उपाय नहीं है। श्रद्धा शाश्वत है, क्योंकि श्रद्धा तुम्हारा आत्यंतिक, आखिरी, अंतरतम है। वहां तक मृत्यु कभी प्रवेश नहीं की है, और कभी प्रवेश नहीं कर सकती। वहां तुम शाश्वत हो, सनातन हो। वहां तुम स्वयं परमात्मा हो।

जिसने परमात्मा को चाहा है, पुकारा है, उसने जल्दी ही पा लिया कि जिसे मैं पुकारता था, वह मेरे भीतर छिपा है। वह किसी मंदिर में नहीं मिलता, स्वयं के भीतर मिलता है; वह किन्हीं पहाड़ों पर नहीं छिपा है और न चांद-तारों में छिपा है।

रूस का पहला अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन जब वापस लौटा--तो रूस तो नास्तिक देश है--जो पहली बात लोगों ने उससे पूछी वह यह थी कि ईश्वर मिला चांद पर?

उसने कहा, मैंने बहुत गौर से देखा, कहीं कोई ईश्वर नहीं मिला।

लेनिनग्राड में एक बहुत बड़ा म्यूजियम बनाया गया है, जिसमें मनुष्य-जाति के इतिहास में नास्तिकता से संबंधित सभी वस्तुएं इकट्ठी की गई हैं। उस म्यूजियम की दीवाल पर यूरी गागरिन के अक्षर पत्थर में खोद कर रखे गए हैं--कि मैंने चांद पर जाकर देख लिया, अंतरिक्ष में देखा, परमात्मा कहीं भी नहीं है।

परमात्मा अगर अंतरिक्ष में होता, तो यूरी गागरिन को मिल जाता। लेकिन यूरी गागरिन भी गलत है और तुम भी गलत हो। क्योंकि तुम भी सोचते हो कि वह कहीं बाहर है। आस्तिक भी गलत है और नास्तिक भी गलत है। क्योंकि आस्तिक भी सोचता है, कहीं आकाश में परमात्मा बैठा है। और नास्तिक भी सोचता है कि अगर आकाश में बैठा है तो खोज लेंगे, आज नहीं कल पूरा आकाश भ्रमण कर लेंगे। और जब आकाश में न पाएंगे तब?

यूरी गागरिन को खुद में खोजना चाहिए, वहां बैठा है परमात्मा। वह जो देख रहा था यूरी गागरिन की आंखों से चांद-तारे पर, वही है परमात्मा--वह जो देख रहा था। परमात्मा को कभी देखा नहीं जा सकता, वह सदा देखने वाला है। उसे तुम देखने की वस्तु नहीं बना सकते, वह तुम्हारे भीतर छिपा देख रहा है। जो देख रहा है, वही परमात्मा है। वह सदा द्रष्टा है, उसे तुम कभी दृश्य नहीं बना सकते।

लेकिन जिसने थोड़ा भी जीवन का गीत सुना--उसको ही मैं भगवद्गीता कहता हूं। कृष्ण ने जो गीत गाया है अर्जुन के सामने, वह तो उसी परम गीत की एक कड़ी है--उस जीवन के गीत की एक कड़ी है। वह तो उसी का छोटा सा टुकड़ा है। लेकिन वह गीत वृक्ष-वृक्ष में लिखा है, चट्टान-चट्टान पर खुदा है। सागर की लहर-लहर में उसी की खबर है। आकाश की शून्यता में उसी का मौन है। झरनों के कल-कल नाद में उसी का गीत है। तुम्हारी आंखों से वही देख रहा है, तुम्हारे कानों से वही सुन रहा है, तुम्हारे हृदय में वही धड़क रहा है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जिसने परमात्मा का जरा सा भी गीत समझ लिया, जिसने जीवन की थोड़ी सी भी पहचान कर ली और जिसने सरलता की एक बूंद पी ली, जिसने थोड़ी सी भी अर्चना की है...

अर्चना का अर्थ हैः जिसने थोड़े भी घुटने टेके हैं अहंकार के और जोझुका है; जिसने थोड़ा भी अपना सिर नवाया है। ख्याल रखना, सवाल यह नहीं है कि किसके सामने नवाया है; नवाया है, बस यही सवाल है। तुमने मस्जिद में नवाया है, ठीक; तुमने मंदिर में नवाया है, बिल्कुल ठीक; तुमने गुरुद्वारा में नवाया है, बिल्कुल ठीक। तुम जाकर चट्टान के सामने झुका दो, तुम वृक्ष के सामने झुको, या तुम कोरे आकाश के सामने झुको--कोई फर्क नहीं पड़ता, झुकने में असली सवाल है। तुम परमात्मा को मानते हो तो, नहीं मानते हो तो, कोई फर्क नहीं

पड़ता। महावीर बिना माने झुके और पा लिया। और बुद्ध ने परमात्मा को कभी स्वीकार नहीं किया और परमात्मा हो गए। झुकने की कला जिसे आ गई।

असली सवाल परमात्मा को पाना नहीं, असली सवाल अपने को मिटाना है।

अर्चना का अर्थ हैः जिसने अपने को गिरा दिया; और जिसने कहा, मैं नहीं हूं। जरूरत नहीं है कहने की कि तू है। जिसने यह कहा कि मैं नहीं हूं, उसी क्षण जाना कि बस तू ही है; कहने का कोई सवाल नहीं है। मैं के गिरते ही परमात्मा प्रकट हो जाता है। वह मैं ही अकेली बाधा है। फिर यमराज के घर तुम्हारी चर्चा नहीं होती।

"अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"जहां पुनः-पुनः जन्म लेना है, पुनः-पुनः मरना है, और पुनः-पुनः माता के गर्भ में गिरना है, ऐसे इस बहुदुस्तर संसार से, हे मुरारी, मेरी रक्षा करो।"

आदमी असहाय है, और आदमी के संकल्प से कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि तुम जो भी करोगे, वह तुमसे छोटा होगा। परमात्मा तुमसे बहुत बड़ा है। तुममें है, तुममें झांकता है, लेकिन तुमसे बहुत बड़ा है। ऐसा ही समझो कि जैसे बूंद में सागर है। बूंद को भी चखो तो सागर का ही स्वाद है, वही खारापन है। और एक बूंद का भी विश्लेषण कर लो, तो तुम वही तत्व पाओगे जो पूरे सागर के विश्लेषण से मिलते हैं। फिर भी बूंद बड़ी छोटी है। बूंद से सागर झांका है, जैसे खिड़की से सागर झांका हो। तुमसे भी झांका है, लेकिन तुमसे बहुत बड़ा है। खिड़की से देखा गया आकाश, बूंद में छिपा सागर, बीज में छिपा वृक्ष--ऐसा परमात्मा तुमसे झांका है। तुम अपने प्रयास से उसे न पा सकोगे; तुम्हारा प्रयास बड़ा छोटा है--मुट्ठी में आकाश बांधने की चेष्टा है। तुम उसकी कृपा से ही पा सकोगे।

इसलिए शंकर कहते हैं, "हे मुरारी, मेरी रक्षा करो।"

मैं अपने आप तो डूब जाऊंगा, तुम बचाओगे तो ही बच सकूंगा। मेरे हाथ में कोई बल नहीं मालूम पड़ता; मेरी शक्ति बड़ी छोटी है। मैं विचार भी करूंगा तो क्या विचार करूंगा! मैं सोचूंगा भी तो क्या सोचूंगा! सब सोच-विचार मेरा ही होगा। तुम अज्ञात हो, तुम विराट हो, तुम्हें पाने के लिए तुम्हारी ही सहायता की जरूरत है।

इसलिए भक्त निरंतर आकांक्षा कर रहा है कि उसका सहारा मिले। जिस दिन तुम उसका सहारा मांगने लगोगे, उसी दिन तुम पाओगे, सहारा मिलने लगा; क्योंकि तुम बड़े होने लगे; तुम्हारा सिकुड़ाव टूटने लगा; तुम फैलने लगे। जिस दिन तुम विराट जीवन का सहारा मांगते हो, उसी क्षण तुम विराट होने लगे; उसी क्षण तुम्हारा छोटापन मिटने लगा। तुमने निमंत्रण दे दिया--आ जाओ! तुम्हारे निमंत्रण भर की देर है।

बुद्ध ने कहा है कि मैं सोचता था, मैं सत्य को खोज रहा हूं। लेकिन जब पाया, तब मुझे पता चला कि सत्य भी मुझे खोज रहा था।

सत्य भी तुम्हें खोज रहा है; परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है, तुम्हें टटोल रहा है। लेकिन तुम निमंत्रण नहीं देते। अगर कभी भूल-चूक, वह तुम्हारा हाथ भी हाथ में ले ले, तो तुम हाथ छोड़ देते हो।

तुमने कभी छोटे बच्चों को देखा है? बाप छोटे बच्चे का हाथ पकड़ कर बाजार ले जा रहा है। बाप पकड़े है, लेकिन बच्चा छोड़े हुए है हाथ। क्योंकि वह स्वतंत्र होना चाहता है; वह चाहता है, छोड़ो हाथ तो मैं खुद चलूं। बाप पकड़े हुए है, लेकिन छोटा बच्चा हाथ छोड़े हुए है। वह किसी तरह परेशान है कि तुम छोड़ो किसी तरह मेरा हाथ। तो वह खुद दौड़ना चाहता है।

करीब-करीब आदमी की हालत ऐसी है। परमात्मा तो हाथ पकड़े हुए है, अन्यथा आदमी जी भी नहीं सकता। वही श्वास न ले हममें, तो हम श्वास कैसे लेंगे? वही हममें न धड़के, तो हम जीएंगे कैसे? लेकिन हमारी चेष्टा यह है कि हम अपने बल खड़े हो जाएं। अहंकार की सदा चेष्टा यही है कि मैं किसी तरह पूरी तरह स्वतंत्र अपने पैर पर खड़ा हो जाऊं, किसी के सहारे की कोई जरूरत न रहे। सहारा मांगने में बड़ी दीनता मालूम होती है। इसलिए जैसे-जैसे मनुष्य का अहंकार बढ़ता गया है, वैसे-वैसे अर्चना खो गई, पूजा खो गई, प्रार्थना खो गई।

तुमने कभी ख्याल किया कि मंदिर में तुम झुकते हो, तो थोड़ी बेचैनी सी अनुभव होती है कि कोई देखे न। तुम घुटने टेकते हो, तुम हाथ जोड़ते हो, तो तुम देख लेते हो कि कोई देख तो नहीं रहा है आस-पास। किसी को पता न चल जाए, नहीं तो लोग कहेंगे, अरे तुम! और घुटने टेके बैठे हो! तुम और सिर झुका रहे हो! अहंकार को बड़ी चोट लगती है।

लोग सिर झुकाने में डरने लगे हैं, भयभीत होने लगे हैं। इससे ज्यादा दुर्भाग्य की और कोई घड़ी नहीं हो सकती थी; क्योंकि जीवन में जो भी विराट है, वह तुम्हारे झुकने से पैदा होता है। यह हालत ऐसी हो गई कि जैसे प्यास तुम्हें लगी है और नदी में तुम खड़े हो, लेकिन झुक नहीं सकते। तुम चाहते हो नदी तुम्हारे ओंठों तक आ जाए।

नदी बही जा रही है, लेकिन तुम्हें झुकना पड़ेगा, अंजुलि भरनी पड़ेगी, सिर झुकाना पड़ेगा, हाथ झुकाने पड़ेंगे, पानी भरना पड़ेगा, तो ही प्यास बुझ सकेगी। लेकिन कैसे तुम झुको, तुम्हारी रीढ़ अकड़ गई है, अहंकार झुकने नहीं देता।

अधिक लोग परमात्मा को इनकार करते हैं, इसलिए नहीं कि उनको पता चल गया है कि परमात्मा नहीं है; वे इनकार करते हैं सिर्फ इसलिए कि अगर परमात्मा है तो फिर झुकना पड़ेगा।

फ्रेडरिक नीत्शे ने लिखा है कि अगर परमात्मा है तो फिर झुकना पड़ेगा। इसलिए मैं कहता हूं परमात्मा नहीं है, क्योंकि झुक मैं कैसे सकता हूं! अगर परमात्मा है तो वह मुझसे ऊपर हो गया। इसलिए मैं कहता हूं परमात्मा नहीं है; क्योंकि मुझसे ऊपर कोई कैसे हो सकता है!

अहंकार। भयंकर अहंकार मनुष्य को घेरे हुए है। जैसे शरीर में कैंसर है, ऐसे ही आत्मा में अहंकार है। अहंकार आत्मा का कैंसर है। और जब तक तुम उससे मुक्त न हो जाओ, तब तक अर्चना के फूल न खिलेंगे, तब तक प्रार्थना की धूप न उठेगी, तब तक भगवत्-गीत तुम्हारे भीतर जन्म नहीं ले सकता। जब तक तुम अपने से भरे हो, तब तक परमात्मा तुममें उतर नहीं सकता। जगह खाली करो, सिंहासन से उतरो, उसे निमंत्रण दो।

"जहां पुनः-पुनः जन्म लेना है, पुनः-पुनः मरना है, और पुनः-पुनः माता के गर्भ में सोना है, ऐसे इस बहुदुस्तर संसार से, हे मुरारी, मेरी रक्षा करो।"

जिन्होंने भी जीवन के सत्य को समझा है, उन्होंने एक बात पहचान ली कि जीवन एक पुनरुक्ति है; वही-वही बार-बार हो रहा है। बहुत बार तुम जन्मे, बहुत बार तुम मरे; बहुत बार तुमने धन कमाया, यश कमाया; बहुत बार सफल हुए, असफल हुए; लेकिन तुम ऐसे ही घूम रहे हो, जैसे गाड़ी का चाक घूमता है। वही चाक घूमता चला जाता है--वही आरा फिर ऊपर आ जाता है, फिर नीचे चला जाता है--फिर वही आरे ऊपर आ जाते हैं।

इस पुनरुक्ति से मुक्त होने की आकांक्षा स्वाभाविक है, क्योंकि पुनरुक्ति सिर्फ उबाने वाली है। हमने संसार को इसीलिए चक्र कहा है, दुष्ट-चक्र कहा है, क्योंकि उसमें हम एक से ही घूमते चले जाते हैं, कुछ भी नया नहीं होता। तुम कल भी वैसे ही जीए थे, जैसे तुम आज जीओगे; परसों भी वैसे ही जीए थे, आने वाले कल भी ऐसे ही

जीओगे। वही शाम, वही सुबह, वही क्रोध, वही लोभ, वही मोह, वही जन्म, वही मौत--दोहरता चला जाता है। निश्चित ही हमारे भीतर बड़ी गहरी मूढ़ता होनी चाहिए, तभी हम जागते नहीं हैं। अन्यथा हमें होश आ जाएगा कि वही-वही हम दुबारा क्यों किए जा रहे हैं? इतनी बार करके जब कुछ भी नहीं मिला, तो कितनी ही बार करें, कुछ भी न मिलेगा।

इस चक्र के बाहर निकलना जरूरी है। इसीलिए पूरब में, विशेषकर भारत में, आवागमन से कैसे मुक्ति हो जाए, इसकी महान आकांक्षा पैदा हुई। ऐसी आकांक्षा संसार में कहीं भी पैदा नहीं हुई। पश्चिम में इस्लाम, ईसाइयत, यहूदी धर्म इस आकांक्षा से प्रेरित नहीं हैं। वे चाहते हैं, स्वर्ग मिले। स्वर्ग का अर्थ हैः इस जीवन में जो दुख हैं, वे तो न हों; और जो सुख हैं, वे सब हों। स्वर्ग इसी जीवन के सुखों का विस्तार है। लेकिन भारत में एक बड़ी अनूठी आकांक्षा पैदा हुई, वही भारत की विशेषता है--मोक्ष की आकांक्षा। मोक्ष की आकांक्षा स्वर्ग की आकांक्षा नहीं है। मोक्ष की आकांक्षा का अर्थ है कि न अब दुख चाहिए, न सुख। बहुत भोग लिए दोनों, दोनों में कुछ सार न पाया--अब दोनों से मुक्ति चाहिए। दोनों से मुक्ति की आकांक्षा बड़ी अनूठी खोज है।

इसलिए मोक्ष शब्द को अनुवाद करना दुनिया की किसी भी भाषा में संभव नहीं है। स्वर्ग संभव है, नरक संभव है, लेकिन मोक्ष अनूठा शब्द है; दुनिया की किसी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं है। हो भी नहीं सकता, क्योंकि शब्द तो पीछे आते हैं, पहले आकांक्षा आती है; अनुभव पहले आता है, तब शब्द बनते हैं। मोक्ष का अनुभव भारत की अपनी अनूठी खोज है। इससे ऊपर कोई खोज न गई है और न जा सकती है; क्योंकि सुख से भी केवल मुक्त हो जाने की आकांक्षा उनमें ही हो सकती है, जिन्होंने सुख को पूरी तरह जान लिया और पाया कि यह भी दुख की ही एक शक्ल है, दुख का ही एक ढंग है, दुख का ही धोखा है; यह दुख की ही तरकीब है।

"गली के चीथड़ों से जिसकी कंथा बनी है, पुण्य और पाप के विचार से जिसका मार्ग मुक्त है, योग में जिसका चित्त नियोजित है, ऐसा योगी कभी बालक की तरह क्रीड़ा करता है और कभी उन्मत्त की तरह।"

जो सड़क पर बैठा है, भिखारी की तरह दिखाई पड़ता है, लेकिन अगर गौर से देखोगे तो सम्राट को छिपा हुआ पाओगे; क्योंकि तुम्हारे सम्राटों में अगर तुम गौर से देखोगे तो भिखारी को छिपा हुआ पाओगे। उनकी मांग अभी जारी है।

एक मुसलमान फकीर हुआ फरीद। उसके गांव के लोगों ने फरीद से कहा कि अकबर तुम्हें इतना मानता है, तुम अगर उससे कहो तो वह एक मदरसा गांव में खोल दे। फरीद कभी अकबर से कुछ मांगा न था। फकीर मांगता ही नहीं, फकीर देता है। पर गांव के लोगों ने कहा तो फरीद इनकार भी न कर सका; वह गया। वह कभी राजमहल गया भी नहीं था, लेकिन गांव के लोगों ने कहा तो गया। जल्दी ही पहुंच गया, ताकि सुबह-सुबह ही सम्राट से बात हो जाए। भीतर गया तो पता चला कि सम्राट अपने निजी पूजागृह में है, मस्जिद में है; अभी प्रार्थना कर रहा है। तो फरीद ने कहा, यह तो और भी अच्छा है, प्रार्थना के बाद ही सीधा कह दूंगा। तो वह जाकर पीछे खड़ा हो गया।

अकबर को पता नहीं है। अकबर ने प्रार्थना पूरी की, दोनों हाथ आकाश की तरफ उठाए और कहा--हे परमात्मा, तूने मुझे जो दिया है, वह काफी नहीं है; अभी और पाने को बहुत शेष है। तेरी कृपा हो, मेरे राज्य को बड़ा कर! मेरे साम्राज्य को फैला! मेरे धन को, मेरे यश को बड़ा कर!

फरीद तो भरोसा न कर सका। अकबर, इतना बड़ा सम्राट--इतना बड़ा साम्राज्य कम लोगों के हाथ में रहा है--अभी भी मांग रहा है! अभी भी भिखमंगा भीतर से गया नहीं! सोचा उसने कि जब यह अभी खुद ही मांग रहा है तो इससे मांगना उचित नहीं है। क्योंकि एक मदरसे में कुछ तो खर्च लगेगा ही; उतनी और कमी हो

जाएगी बेचारे को। और फिर जब यह खुद ही परमात्मा से मांग रहा है तो हम बीच में एजेंट क्यों बनाएं? हम भी उसी से मांग लेंगे। वह लौट पड़ा।

अकबर उठा तो उसने फरीद को सीढ़ियां उतरते देखा। वह दौड़ा और उसने कहा, कैसे आए? बड़ा सम्मान करता था अकबर फरीद का। कभी फरीद आया भी नहीं था, सदा वही जाता था फरीद के दर्शन करने। कैसे आए और कैसे लौट चले?

फरीद ने कहा, आया था सोच कर कि एक सम्राट से मिलने जा रहा हूं; जाता हूं देख कर कि यहां भी एक भिखमंगा है। आया था कुछ मांगने, भूल हो गई। तुम्हें खुद मांगते देख कर शर्म आ गई कि अब तुमसे क्या मांगूं! तुम तो वैसे ही गरीब हो, तुम्हें और गरीब करूं? गांव के लोग नहीं माने, पीछे पड़ गए, तो एक मदरसे के लिए कहने आया था। लेकिन अब न कहूंगा; अब मैं भी परमात्मा ही से कह दूंगा। जब तुम भी वहीं से मांगते हो, तो हम भी वहीं से मांग लेंगे; अब तुमसे बीच में क्यों बाधा डालनी।

अकबर ने बहुत प्रार्थना की कि मुझे मौका दो। मदरसा, तुम जो कहो, मैं बना दूंगा।

फरीद ने कहा, अब नहीं। सम्राट से मांगा जाता है, गरीब भिखमंगों से क्या मांगना!

तुम्हारे सम्राटों में तुम गरीब भिखमंगे पाओगे; वहां भी मांग अभी कायम है। लेकिन इस मुल्क ने ऐसे सम्राट भी पैदा किए हैं, जिनको तुम देखोगे तो भिखमंगे मालूम होंगे, उनके भीतर झांकोगे तो उन जैसे रत्न कभी भी हुए नहीं।

"गली के चीथड़ों से जिसकी कंथा बनी है... "

रास्ते पर पड़े चीथड़ों को बीन कर जिसने अपने कपड़े बना लिए हैं, अपनी गुदड़ी बना ली है; लेकिन जिसके भीतर मोक्ष अवतरित हुआ है, जिसके भीतर स्वतंत्रता ने अपने पूरे पंख फैलाए हैं।

"पुण्य और पाप के विचार से जिसका मार्ग मुक्त है... "

ध्यान रखना, धर्म कहते हैंः पाप करोगे तो नरक; पुण्य करोगे तो स्वर्ग। फिर अगर मोक्ष पाना हो, तो क्या करोगे तो मोक्ष? न पुण्य, न पाप।

जिसका जीवन पुण्य और पाप की धारणा से मुक्त हो गया है। जिसे अब न तो कुछ अच्छा दिखाई पड़ता, न कुछ बुरा; जिसका जीवन चुनाव-मुक्त हो गया है। कृष्णमूर्ति जिसे च्वाइसलेस अवेयरनेस कहते हैं। जिसके जीवन में अब सिर्फ बोध रह गया है--चुनावरहित, विकल्परहित। जो चुनता नहीं। जो न तो कहता है, यह ठीक है; न कहता है, यह गलत है; जो चुनाव ही नहीं करता; जो कहता है, सब एक जैसा है, चुनने को कुछ है ही नहीं; न कुछ सुंदर है, न कुछ असुंदर; न कुछ पाप है, न कुछ पुण्य।

यह बड़ी अनूठी बात है। यह मोक्ष के साथ जुड़ी है। इसलिए जब पहली दफा उपनिषदों का अनुवाद हुआ, तो पश्चिम में विचारक समझ नहीं सके कि ये उपनिषद क्या कह रहे हैं। क्योंकि पश्चिम में ख्याल था कि धर्मशास्त्र का अर्थ होता है, जो पुण्य करना सिखाए। पाप से बचाए और पुण्य करवाए, वही धर्मशास्त्र है। लेकिन उपनिषद कहते हैं, पाप और पुण्य दोनों से जो बचाए, वही धर्मशास्त्र है। क्योंकि जब तक तुम पाप और पुण्य से भरे हो, तब तक द्वंद्व से भरे हो। जो निर्द्वंद्व बनाए। जब तक तुम कहते हो, यह पाप है, तब तक तुम्हारे मन में निंदा है; जब तक तुम कहते हो, पुण्य है, तब तक तुम्हारे मन में प्रशंसा है। जब तक तुम कहते हो, पुण्य--तो तुमने कुछ चुना; जब तक तुम कहते हो, पाप--तुमने कुछ इनकार किया। और पाप में भी परमात्मा है और पुण्य में भी। तो जिसे तुमने इनकार किया, परमात्मा को ही इनकार किया।

परमज्ञानी वही है, जिसके जीवन में न कोई इनकार है, न कोई मांग है; न जो स्वीकार करता है, न जो अस्वीकार करता है। जो थिर हो गया, जिसकी चेतना कंपती ही नहीं।

"पाप और पुण्य के विचार से जिसका मार्ग मुक्त है, योग में जिसका चित्त नियोजित है... "

जो जुड़ गया, जो एक हो गया, वही योगी है; जिसके लिए दो न बचे। जब तक दो हैं, तब तक स्वर्ग और नरक रहेंगे; सुख और दुख रहेगा; पाप और पुण्य रहेंगे। जब एक ही बच रहता है, तो स्वर्ग-नरक, सुख-दुख, अंधेरा-प्रकाश, सब खो जाते हैं। उस एक में ही परम विश्रांति है; उस एक में ही परम आनंद है। उस एक को ही जिसने पा लिया, उसने ही कुछ पाया।

ऐसा योगी कभी बालक की तरह मालूम होगा। इतना सरल, जैसे बालक हो। और कभी पागल की तरह मालूम होगा। इतना उन्मत्त, इतना आनंदित, इतना नशे में सराबोर।

योगी में पागल और बालक दोनों का मिलन होता है। बालक का अर्थ हैः जिसने अभी सोचना शुरू नहीं किया; और पागल का अर्थ हैः जो सोचने के पार चला गया। योगी में वर्तुल पूरा हो जाता है। वह बालक की तरह हो गया है, सोचता ही नहीं। और पागल की तरह भी हो गया है, सोचने के पार चला गया है।

इसलिए योगी को पहचानना बड़ा कठिन हो जाता है। तुम उसके संबंध में कोई भी कोटि नहीं बना सकते, कोई निर्णय नहीं ले सकते। वह क्या करेगा अगले क्षण, कुछ भी पता नहीं है; क्योंकि अपनी तरफ से वह कुछ करता ही नहीं--परमात्मा जो करवाता है। उसने अपने को उसके हाथ में छोड़ दिया है। वह बहा जाता है। परमात्मा की नदी उसे जहां ले जाती है, वहीं उसकी मंजिल है। अगर बीच में डुबा दे, तो वहीं उसकी मंजिल है। अपना कोई लक्ष्य शेष नहीं रह गया है।

योगी यानी परम स्वातंष्य।

"अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"तुम कौन हो, मैं कौन हूं, कहां से आया, कौन मेरी माता है, कौन पिता है? इस प्रकार मनन करो। और तब पाओगे कि संसार और उसकी चिंता असार और स्वप्नवत है और तुम उस दुख-स्वप्न से मुक्त हो जाओगे। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"तुममें, मुझमें, अन्यत्र एक विष्णु का ही वास है। मेरे प्रति असहिष्णु होकर तुम व्यर्थ क्रोध करते हो। इसलिए सर्वत्र भेद-रूपी अज्ञान का त्याग कर सबमें अपने को ही देखो। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"शत्रु और मित्र, पुत्र और भाई, युद्ध और संधि में अपनी शक्ति मत गंवाओ। यदि तुम विष्णुपद कोशीघ्र उपलब्ध करना चाहो, तो सर्वत्र सबके साथ समत्व भाव रखो। और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

समत्व भाव एकत्व की यात्रा है। समत्व को साधो तो एकत्व सधेगा। सुख-दुख में समान, जीत-पराजय में समान, सफलता-असफलता में समान, तो धीरे-धीरे एकत्व सधेगा।

जब तक तुम द्वंद्व देखोगे, तब तक तुम दो रहोगे; क्योंकि जो तुम देखते हो, वही तुम हो जाते हो। जब तुम द्वंद्व न देखोगे, जब तुम द्वैत न देखोगे, और एक ही दिखाई पड़ने लगेगा--मित्र में और शत्रु में; शुभ में, अशुभ में; पाप में, पुण्य में; नरक में, स्वर्ग में; अच्छे में, बुरे में; अभिशाप में, वरदान में--एक ही दिखाई पड़ने लगेगा, तो तुम एक होने लगोगे; क्योंकि जो तुम देखते हो, वही तुम हो जाते हो; दर्शन ही तुम्हारा स्वभाव बन जाता है। इसलिए दो को देखने से बचना ही सारी साधना है।

कठिन होगा। कैसे देख पाओगे--जो तुम्हें गाली देता है उसमें वही, जो तुम उसमें देखते हो जो तुम्हारी प्रशंसा करता है और गीत गाता है?

लेकिन जरा गौर से देखो, गीत और गाली सब ऊपर-ऊपर हैं, भीतर एक का ही वास है। जरा गौर से देखो, मित्र और शत्रु, घृणा और प्रेम एक ही ऊर्जा के दोढंग हैं। इसीलिए तो प्रेम घृणा बन जाता है और घृणा प्रेम बन जाती है; मित्र शत्रु बन जाते हैं और शत्रु मित्र बन जाते हैं। अगर दोनों बिल्कुल अलग होते, तो यह परिवर्तन नहीं हो सकता था। जो आज मित्र है, कल शत्रु हो जाता है। जो कल शत्रु था, वह आज मित्र हो जाता है। निश्चित ही ऊर्जा एक ही है। जो तुमसे दूर जा रहा है--जिन पैरों से दूर जा रहा है, उन्हीं पैरों से तुम्हारे पास आ जाता है; पैर एक हैं। पास आना और दूर जाना, एक ही शक्ति के दोढंग हैं।

इसे खोजने की कोशिश करो। पुरानी आदतें बाधा डालेंगी। पुराने सोचने के ढंग अड़चन डालेंगे। लेकिन अगर सतत चेष्टा रही, तो धीरे-धीरे अंधकार कटता है, प्रकाश उभरता है। और जैसे-जैसे तुम्हें विपरीत में एक ही दिखाई पड़ने लगेगा, तुम अचानक पाओगे--भीतर एक गहन शांति उतरने लगी; कोई परिपूर्ण तुम्हारे भीतर आने लगा; तुम वही नहीं रहे जो कल तक थे; तुम्हारे घर में किसी नई चेतना का आवास शुरू हो गया। जब दो मिट जाते हैं और एक रह जाता है, तभी तुम पात्र बनते हो परमात्मा के लिए, तब तुम तैयार हो। और परमात्मा तो सदा ही तैयार था। तुम्हारे तैयार होते ही मेघ बरस जाता है, तुम भर जाते हो; आनंद की, मंगल की घड़ी आ जाती है।

लेकिन दो से बचना है, दो से जागना है और एक की धारा को पकड़ना है।

समत्व को साधो, एकत्व उपलब्ध होगा। दो में कोशिश करके देखते रहो--बस यही तुम्हारा ध्यान बन जाए, यही तुम्हारी साधना हो। सफलता आए, तब गौर से देखना कि यह भी असफलता ही है; जल्दी ही असफलता कहीं छिपी होगी और आती होगी। और जब असफलता आए, तब बहुत परेशान मत हो जाना, गौर से देखना, कहीं सफलता छिपी होगी और आती ही होगी। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब एक आ गया तो दूसरा ज्यादा दूर नहीं हो सकता। और जब सफलता असफलता मालूम होने लगे, असफलता सफलता मालूम होने लगे; भेद गिर जाए, अभेद पैदा हो, तो तुम्हारा द्वार परमात्मा के लिए खुला।

परमात्मा सदा पास है, तुम्हीं अपने भेद के कारण दूर बने हो। परमात्मा सदा सामने है; क्योंकि जो भी तुम्हारे सामने है वह परमात्मा ही है। लेकिन तुम्हारी आंख बंद है। भेद में आंख अंधी हो जाती है, अभेद में खुल जाती है। भेद ऐसा है, जैसे पलक आंख पर पड़ी; अभेद ऐसा है, जैसे पलक खुली।

"अतः हे मूढ़, गोविन्द को भजो।"

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

संसार--एक पाठशाला

पहला प्रश्नः शंकर जब छोटे थे, तब मां ने उन्हें संन्यास लेने की अनुमति न दी। परंतु एक दिन नदी में स्नान करते समय शंकर को मगरमच्छ ने पकड़ लिया। शंकर ने मरने से पहले मां से संन्यास लेने की अनुमति मांगी। अनुमति मिली और शंकर बच गए! कृपया इस घटना पर कुछ प्रकाश डालें।

घटना का कोई मूल्य नहीं है। घटना हुई भी हो, ऐसा जरूरी नहीं है। लेकिन जो अर्थ है, वह समझने जैसा है। और इसे सदा स्मरण रखना कि बुद्धपुरुषों के जीवन में जो घटनाएं हैं, वे घटनाएं कम हैं, प्रतीक ज्यादा हैं; उनमें छिपा कुछ राज है। वे ऐतिहासिक हों, न हों--आध्यात्मिक हैं। समय की धारा में वैसा घटा हो, न घटा हो, लेकिन चैतन्य की धारा में वैसा घटता है।

बुद्धपुरुषों को इतिहास के माध्यम से मत समझना; काव्य, अनुभव के माध्यम से समझना। अन्यथा बड़ी जड़ता पैदा होती है। यही छोटी सी बोध-कथा है।

"शंकर छोटे थे, तब मां ने उन्हें संन्यास लेने की अनुमति न दी।"

बहुत सी बातें छिपी हैं। मां यानी ममता, मां यानी मोह। मोह और संन्यास लेने की आज्ञा दे, अति कठिन है। क्योंकि संन्यास का अर्थ तो मोह की मृत्यु होगी। संन्यास का अर्थ ही यह है कि व्यक्ति परिवार से मुक्त हो रहा है--मां अब मां न होगी, पिता अब पिता न होंगे, भाई अब भाई न होंगे। इसलिए तो जीसस ने बार-बार कहा है, जो मेरे साथ चलना चाहता हो, उसे अपनी मां को, अपने पिता को इनकार करना होगा; जो मेरे साथ चलना चाहता हो, उसे अपने परिवार का परित्याग करना होगा। यदि तुम परिवार को न छोड़ सको, तो जीसस के परिवार के हिस्से नहीं बन सकते।

संन्यास का अर्थ है कि यह जो जन्म और मृत्यु के बीच में घिरा हुआ जीवन है, यह व्यर्थ है। अगर जीवन ही व्यर्थ है, तो जिस मां ने जन्म दिया, वह तो व्यर्थ हो गई। उसने तो जीवन को जन्म दिया ही नहीं, एक सपने को विस्तार दिया। तो संन्यास तो मूलतः जीवन से मुक्ति है। और जीवन की मुक्ति का अर्थ हुआ--मां से मुक्ति, पिता से मुक्ति, परिवार से मुक्ति, समाज से मुक्ति। यह सब व्यर्थ हुआ। तो मां तो कैसे आज्ञा दे! संन्यास की आज्ञा और मां दे--असंभव है; अति कठिन है। मोह से तो संन्यास की आज्ञा नहीं मिल सकती; ममता से आज्ञा नहीं मिल सकती। जीवन जहां से आया है, उसी स्रोत से, तुम जीवन से मुक्त होना चाहो, इसकी आज्ञा मांगो--असंभव है।

"शंकर छोटे थे, तभी मां ने उन्हें संन्यास लेने की अनुमति न दी।"

और ध्यान रखना, चाहे तुम कितने ही बड़े हो जाओ, मां के लिए छोटे ही रहोगे। मां से तो बड़े न हो पाओगे। जिसने तुम्हें जन्म दिया, उससे तो तुम छोटे ही रहोगे। तुम सत्तर साल के हो जाओ, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। शंकर छोटे थे, इसका कुल अर्थ इतना ही है कि जब भी किसी संन्यास की आकांक्षा से भरे खोजी ने मां से आज्ञा मांगी, तभी मां को लगा--छोटा बच्चा, और ऐसे दूभर मार्ग पर जाना चाहता है! मां ने रोकना चाहा है।

"शंकर छोटे थे, तभी मां ने उन्हें संन्यास लेने की अनुमति न दी। परंतु एक दिन नदी में स्नान करते समय शंकर को मगरमच्छ ने पकड़ लिया।"

लेकिन जीवन की नदी में आज नहीं कल, दुख पकड़ता है। जीवन की नदी में ही मिलन होता है मृत्यु से भी। तुम कोई मृत्यु को मिलने नहीं जाते हो नदी। तुम तो स्नान करने गए थे; तुम तो तैरने का सुख लेने गए थे; तुम तो सुबह की ताजगी लूटने गए थे। कोई संसार में मरने को थोड़े ही जाता है? कोई जीवन की धार में मगरमच्छों से मिलने थोड़े ही जाता है? जाता तो सुख की तलाश में है; खजानों की खोज में है; सफलता, यश, प्रतिष्ठा, महिमा के लिए है। लेकिन पकड़ा जाता है मगरमच्छों से। आज नहीं कल, मौत पकड़ती है। और जितना बोधवान व्यक्ति होगा, उतने जल्दी यह स्मरण आता है कि यह नदी तो ऊपर-ऊपर है, भीतर मौत छिपी है। मगरमच्छ यानी भीतर छिपी मौत। ऊपर से जल की ऐसी पवित्र धार मालूम होती है, भीतर मौत प्रतीक्षा कर रही है। ऊपर से कितना लुभावना लगता है और नदी कैसी भोली-भाली लगती है। और भीतर मौत दांव लगाए बैठी है! जो जितना होशियार है, जितना बुद्धिमान है, जितना चैतन्यपूर्ण है, उतने जल्दी ही दिखाई पड़ जाएगा।

शंकर को बहुत जल्दी दिखाई पड़ गया। तुम्हें अगर देर तक दिखाई न पड़े, तो समझना कि बुद्धिमत्ता क्षीण है, बहुत बोध नहीं है; मिट्टी की पर्तें जमी हैं तुम्हारे दर्पण पर और तुम्हारी बुद्धि धुएं से भरी है। अन्यथा जल्दी ही दिख जाएगा। शंकर को दिख गया कि इस जीवन में तो मौत के सिवाय कुछ मिलेगा नहीं। इतनी ही बात है कथा में। और जब तक मौत ही स्पष्ट न हो जाए, तब तक ममता से छुटकारा नहीं होता, तब तक मां से छुटकारा नहीं है।

इसे थोड़ा समझो। एक तरफ मां है, मां यानी जन्म; दूसरी तरफ मौत है, मौन यानी अंत। अगर मौत दिख जाए तो ही मां से छुटकारा है; अंत दिख जाए तो ही जन्म व्यर्थ होता है।

तो संन्यास का अर्थ है--मौत का दर्शन, मृत्यु की प्रतीति।

संसार में तो हम मौत को टाले जाते हैं। हम कहे चले जाते हैं, सदा दूसरा मरता है, मैं तो कभी मरता नहीं। रोज ही तुम देखते हो--किसी की अरथी उठ गई, किसी का जनाजा उठ गया; कोई कब्रिस्तान चले गए, कोई मरघट चले गए। तुम सभी को पहुंचा आते हो मरघट, तुम तो कभी नहीं जाते। तुमको दूसरे पहुंचाएंगे। तुम्हें तो कभी पता ही न चलेगा कि तुम भी जाते हो; क्योंकि जब तक तुम जा सकते हो, तब तक तो तुम जाओगे नहीं। जब तुम न जा सकोगे, तभी दूसरे तुम्हें पहुंचाएंगे। इसलिए प्रत्येक को ऐसा लगता है, मौत सदा दूसरे की घटती है--हम तो जीते हैं, दूसरे मरते हैं। ऐसे ही झूठे आसरों पर आदमी जीए चला जाता है!

संन्यास का अर्थ है, इस बोध का जग जाना कि मृत्यु मेरी है। और कोई भी मरता हो, हर बार जब कोई मरता है तो मेरे ही मरने की खबर बार-बार आती है। हर एक की मृत्यु में मेरी ही मृत्यु की सूचना है, इंगित है, इशारा है। और हर एक की मौत में थोड़ा मैं मरता हूं। अगर तुम्हें समझ हो, तो हर एक की मौत तुम्हारी मौत हो जाएगी। अगर नासमझी हो, तो तुम्हारा दंभ और अकड़ जाएगा कि सदा दूसरे मरते हैं, मैं तो कभी नहीं मरता, मैं अमर हूं।

शंकर को दिखाई पड़ा कि मौत है। मौत के दिखाई पड़ते ही मां से छुटकारा हो जाता है। क्योंकि मां यानी जीवन, मां यानी जिसने उतारा। मौत यानी जो ले जाएगी।

इसलिए हिंदुओं ने एक बड़ी अनूठी कल्पना की है। हिंदुओं से ज्यादा कल्पनाशील, काव्यात्मक कोई जाति पृथ्वी पर नहीं है। उनके काव्य बड़े गहरे हैं। तुमने कभी देखी काली की प्रतिमा? वह मां भी है और मौत भी।

काल मृत्यु का नाम है, इसलिए काली; और मां भी है, इसलिए नारी। सुंदर है, मां जैसी सुंदर है। मां जैसा सुंदर तो फिर कोई भी नहीं हो सकता। अपनी तो मां कुरूप भी हो तो भी सुंदर मालूम होती है। मां के संबंध में तो कोई सौंदर्य का विचार ही नहीं करता। मां तो सुंदर होती ही है। क्योंकि अपनी मां को कुरूप देखने का अर्थ तो अपने को ही कुरूप देखना होगा, क्योंकि तुम उसी के विस्तार हो। तो काली सुंदर है, सुंदरतम है। लेकिन फिर भी गले में नरमुंडों की माला है! सुंदर है, पर काली है--काल, मौत!

पश्चिम के विचारक जब इस प्रतीक पर सोचते हैं, तो वे बड़े चकित होते हैं कि स्त्री को इतना विकराल क्यों चित्रित किया है! और तुम उसे मां भी कहते हो! और इतना विकराल!

इतना विकराल इसलिए कि जिससे जन्म मिला है, उसी से मृत्यु की शुरुआत भी हुई। विकराल इसलिए कि जन्म के साथ ही मौत भी आ गई है। तो मां ने जन्म ही नहीं दिया, मौत भी दी है। तो एक तरफ वह सुंदर है मां की तरह, स्रोत की तरह। और एक तरफ अंत की तरह, काल की तरह अत्यंत काली है। गले में नरमुंडों की माला है, हाथ में कटा हुआ सिर है, खून टपक रहा है, पैरों के नीचे अपने ही पति को दबाए खड़ी है।

स्त्री के ये दो रूप--कि वह जीवन भी है और मृत्यु भी--बड़ा गहरा प्रतीक है। क्योंकि जहां से जीवन आएगा, वहीं से मृत्यु भी आएगी; वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जैसा हिंदुओं ने इस बात को पहचाना, पृथ्वी पर कोई भी नहीं पहचान सका।

शंकर को जब मृत्यु का बोध हुआ... मगरमच्छ ने नदी में पकड़ा हो या न पकड़ा हो, यह नासमझ इतिहासविदों से पूछो, इसमें मुझे कोई बहुत रस नहीं है। क्या लेना-देना, पकड़ा हो मगरमच्छ ने तो, न पकड़ा हो तो! लेकिन मौत दिख गई उन्हें, इतना पक्का है। और जब मौत दिख गई, तभी संन्यास घट गया। जब मौत दिख गई, तो फिर संन्यास बच ही नहीं सकता। फिर तुम जैसे हो, जहां हो, वहीं ठगे खड़े रह जाओगे। फिर जीवन वही नहीं हो सकता, जो इसके क्षण भर पहले तक था। वह पुरानी दौड़, वह महत्वाकांक्षा, वह यश, कीर्ति का नशा--वह सब टूट गया, मौत सब गिरा देगी। मरना है, फिर कितनी देर बाद मरना है, इससे क्या फर्क पड़ता है! आज कि कल कि परसों--यह तो समय का हिसाब है। अगर मौत होनी है तो हो गई, अभी हो गई। और उस मौत का तीर इस तरह चुभ जाएगा कि फिर तुम वही न हो सकोगे, जो अब तक थे। यह जो नये का होना है, उसी का नाम संन्यास है।

अगर तुम मुझसे पूछो कि संन्यास की क्या परिभाषा है? तो मैं कहूंगाः संन्यास वैसे जीवन की दशा है, जब बाहर तो मौत नहीं घटी, लेकिन भीतर घट गई। जीते हो, लेकिन मौत को जानते हुए जीते हो। यही संन्यास है। जीते हो, लेकिन मौत को भूलते नहीं क्षण भर को। यही संन्यास है। जानते हो कि क्षण भर के लिए टिकी है ओस--अभी गिरी, अभी गिरी। जगत तरैया भोर की--अभी डूबी, अभी डूबी। जीते हो, लेकिन जीने के नशे में नहीं डूबते। जीने का नशा अब तुम्हें डुबा नहीं सकता। जागे रहते हो, होश बना रहता है।

मौत जगाती है। जो जाग गया, वही संन्यासी है। जो जीवन में खोया है और सपनों को सच मान रहा है, वही गृहस्थ है। सपने में जिसका घर है, वह गृहस्थ; या घरों में जो सपने सजा रहा है। सपनों के बाहर जो उठ आया, तंद्रा टूटी, बेहोशी गई, जाग कर देखा कि यहां तो सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं है। जिसे हम बस्ती कहते हैं, वह बस मरघट है, प्रतीक्षा करने वालों का क्यू है। किसी का वक्त आ गया, कोई क्यू में थोड़ा पीछे खड़ा है। क्यू सरक रहा है, मरघट की तरफ जा रहा है। जिसको यह दिखाई पड़ गया, उसके जीवन से आसक्ति खो जाती है। वही आसक्ति का खो जाना संन्यास है।

संन्यास विरक्ति की चेष्टा नहीं है, संन्यास विरक्ति का अनुशासन नहीं है, संन्यास आसक्ति का टूट जाना है। बस जहां आसक्ति खो गई। अनासक्ति का साधना संन्यास नहीं है, ध्यान रखना। क्योंकि आसक्ति न टूटी हो तो ही अनासक्ति साधनी पड़ती है। आसक्ति टूट गई हो तो अनासक्ति साधनी नहीं पड़ती। आसक्ति की जगह जो खाली जगह छूट जाती है, वही अनासक्ति है; वह अभाव है। तब तुम संन्यस्त हो।

इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, संन्यास के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं। तुम जहां हो, वहीं थोड़ा होश आ जाए; बस थोड़ा दीया जल जाए भीतर का; चीजें जैसी हैं, वैसी दिखाई पड़ने लगें--नशे की आंख से नहीं, खुली आंख से।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन चला आ रहा है रात शराबघर से। नशे में है, गीत गुनगुना रहा है। एक आदमी रास्ते पर टकरा गया। अंधेरा, नशे में, गीत गुनगुनाता, होश नहीं--क्रोध में बोला कि उल्लू के पट्ठे, पांच सेकेंड के भीतर क्षमा मांग, नहीं तो...

उधर से बड़ी कड़कड़ाती आवाज आई कि नहीं तो? तो क्या करेगा अगर पांच सेकेंड में क्षमा न मांगूं?

कड़कड़ाती आवाज ने जरा होश वापस लौटाया, गौर से देखाः आदमी कम, मोहम्मद अली मालूम होता है! घूंसेबाज! घबड़ा गया, होश उतरा, जमीन पर वापस आया। कहा, बड़े मियां, अगर पांच सेकेंड कम पड़ते हों, तो कितना समय चाहिए आपको?

जिंदगी में जैसे तुम चल रहे हो--नशे में हो, सपनों का गीत गुनगुना रहे हो--चीजें जैसी हैं, वैसी दिखाई नहीं पड़तीं। धक्का लगना चाहिए, एक कड़कड़ाती आवाज आनी चाहिए, चोट कि सब बिखर जाए, एक क्षण को उस चोट में बादल छितर-बितर हो जाएं और तुम्हें खाली आकाश दिखाई पड़े। तब तुम सिवाय मौत से घिरे हुए अपने को और कुछ न पाओगे। जिसको तुमने जिंदगी जाना, वह मौत का चेहरा है। जिसको तुमने सुख जाना, वह दुख के मुखौटे हैं। जिनको तुमने धन जाना, वह कौड़ियों के साथ झूठ का खेल है। उस धन की भ्रांति में तुम निर्धन बने रहे। और उस जीवन की भ्रांति में तुम असली जीवन से परिचित न हो पाए। और समय हाथ से बीता चला जाता है; प्रतिपल जीवन चुकता जाता है, शक्ति क्षीण होती चली जाती है।

यह तो प्रतीक है केवल कि शंकर को जब मौत ने पकड़ लिया, तो मरने के पहले मां से संन्यास लेने की अनुमति मांगी। अनुमति मिली।

तभी अनुमति मिल सकती है, जब मौत का संकट द्वार पर खड़ा हो जाए। उसके पहले अनुमति मिल भी नहीं सकती। जब मां को भी ऐसा लगे कि या तो बेटा बचेगा तो संन्यासी होकर बचेगा, या जैसा है वैसा तो मर ही जाएगा। मरे बेटे में और संन्यासी बेटे में चुनने का सवाल हो, तो ही मां संन्यासी बेटे को चुनेगी--इतना ही अर्थ है। क्योंकि संन्यासी बेटा मरा हुआ बेटा है।

संन्यास का अर्थ हैः आदमी जीते जी मर गया।

जीसस ने कहा हैः जब तक तुम अपनी सूली को अपने कंधे पर ढोने को राजी न होओ, मेरे साथ न चल सकोगे; जब तक तुम अपने को ही इनकार करने को राजी न होओ, मेरे साथ न चल सकोगे; जब तक तुम मरने को राजी नहीं हो, तब तक पुनरुज्जीवन का कोई उपाय नहीं है।

अगर ऐसी कहानी सच में घटी हो, तो वह प्रतीक याद करने जैसा है--कि शंकर, छोटा सा बच्चा, नवजात, मौत के चंगुल में फंसा है, मगर ने पकड़ा हुआ है उसका पैर, नदी के तट पर मां खड़ी है और शंकर पूछते हैं कि मैं मर रहा हूं, बचने का अब कोई उपाय नहीं है, तू आज्ञा दे दे! अब तो आज्ञा दे दे कि मैं संन्यस्त हो जाऊं, मरूं

संन्यासी की तरह! अब कोई जीने का तो उपाय नहीं रहा कि संन्यासी की तरह जी सकूंगा, मगर ने पकड़ा है--यह गया, यह गया--अब तो आज्ञा दे दे!

तब भी तुम सोचना, मां झिझकी होगी। तब भी आशा ने पंख फैलाए होंगे। तब भी उसे लगा होगाः कौन जाने, बच ही जाए! लेकिन मौत सामने थी। शंकर खिंचा जा रहा है। भीड़ इकट्ठी हो गई होगी। लोग भी कहने लगे होंगेः अब आज्ञा दे दे, अब मरते को क्या बांधना! जो जा ही रहा है, जाने के पहले उसे छोड़ दे! फिर उसकी पुकार को सुन कि वह संन्यस्त मरना चाहता है, ताकि फिर जन्म न हो, ताकि जीवन की आसक्ति न रह जाए। वह जीवन को छोड़ कर मरना चाहता है। जो जीवन हाथ से जा ही रहा है, उसे छोड़ने की आज्ञा दे दे!

फिर भी मुझे लगता है, मां झिझकी होगी; आंखें आंसुओं से भर गई होंगी। उसने भगवान से प्रार्थना की होगी कि बचा दो मेरे बेटे को। लेकिन जब कोई उपाय न पाया होगा, तब उसने कहा होगा, अच्छा--बेमन से, असहाय अवस्था में--कि ठीक, अब तुम मर ही रहे हो, तो ठीक है, संन्यस्त होकर मर जाओ।

मगर यह घटना घटी नहीं है, क्योंकि मगरमच्छ इन बातों की चिंता नहीं करते। आदमी नहीं करते चिंता, मगरमच्छ क्या करेंगे! कहते हैं, शंकर बच गए। मगरमच्छ ने देखा कि अब संन्यासी हो गया, अब क्या मारना! नहीं, मगरमच्छ इतने बुद्धिमान नहीं। हिटलर-मुसोलिनी नहीं हैं, तो मगरमच्छों की क्या बात करनी!

नहीं लेकिन, प्रतीक बड़ा बहुमूल्य हैः व्यक्ति बचता तभी है जब संन्यस्त हो जाता है, फिर मौत भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाती। मरता वही है, जो जीवन को पकड़ता है; जो जीवन को अपने हाथ ही छोड़ देता है, उसे मौत भी कैसे मार पाएगी? जो देने को ही राजी हो गया है, उससे छीनोगे कैसे? जो बचाना चाहता है, उससे ही छीना जा सकता है।

इसलिए जीसस कहते हैंः जो बचाएगा, वह खो देगा; जो खोने को राजी है, उसने बचा लिया।

इस सार की बात को समझ लेना--शंकर बच गए। मगरमच्छ ने छोड़ा?

नहीं, इतनी ही खबर है कि मौत संन्यासी को नहीं मार पाती। संन्यासी को मारने का उपाय नहीं है। क्योंकि संन्यासी कहता हैः मैं--जिसे तुम मार सकते थे, छोड़ ही दिया उसे। उस अहंकार को, उस आकांक्षा-अभीप्सा के जाल को, उस सपनों के फैलाव को छोड़ ही दिया मैंने। मैं खुद ही मर गया हूं अपने हाथ से। तब भीतर जो अमृत बचा है--जो घिरा था मृत्यु से--वही शुद्ध होकर बचता है।

जब तक तुम जीवन को पकड़ रहे हो, तब तक तुम्हें अपने अमृत की कोई खबर नहीं है। इसीलिए तो जीवन को इतनी जोर से पकड़े हो कि कहीं छूट न जाए; डर है कि कहीं मर न जाओ। फिर भी डर तो लगा ही रहता है। जितना पकड़ते हो, उतने ही पैर कंपते हैं। क्योंकि जानते तो तुम हो, कैसे झुठलाओगे, कि मौत आ रही है। कितना ही समझाओ--कैसे समझाओगे? मौत आ रही है। कितना ही आंखें बचाओ, कितना ही छिपाओ--छिपोगे कहां? जाओगे कहां? मौत सब तरफ से आ रही है। कोई एक दिशा होती तो दूसरी दिशा में बच जाते--मौत सभी दिशाओं से आ रही है, दिग-दिगंत से आ रही है। और अगर बाहर से आती होती, तो भी बच जाते; भीतर से आ रही है। कहीं भी भाग जाओ, मौत आएगी ही; कहीं भी छिप जाओ, मौत खोज ही लेगी; क्योंकि मौत तुम्हारे भीतर ही छिपी है।

अमृत भी तुम्हारे भीतर छिपा है, मौत भी तुम्हारे भीतर छिपी है। और जब तक तुम जीवन को बाहर पकड़ोगे, तब तक तुम्हें भीतर की सिर्फ मौत दिखाई पड़ेगी; जिस दिन तुम भीतर की मौत को स्वीकार कर लोगे, उसी क्षण तुम्हें भीतर के जीवन के दर्शन शुरू हो जाएंगे।

ध्यान रहे, जैसे काले तख्ते पर हम सफेद खड़िया से लिखते हैं और अक्षर साफ दिखाई पड़ते हैं। अगर हम सफेद दीवाल पर लिखें तो नहीं दिखाई पड़ते। अगर तुमने भीतर की मौत को स्वीकार कर लिया, तो उस कालिमा में ही, वह जो अमृत का छोटा सा दीया तुम्हारे भीतर जल रहा है, वह हजार गुनी रोशनी में चमकने लगेगा।

लेकिन तुम मौत को स्वीकार नहीं करते, तुम काले तख्ते को स्वीकार नहीं करते, इसलिए सफेद अक्षर दिखाई नहीं पड़ते। तुम काले तख्ते को देखने से डरते हो, इसलिए सफेद अक्षर दिखाई नहीं पड़ते। इस विरोधाभासी वक्तव्य को हृदय में सम्हाल कर रख लेना। जिसने भी मौत को भर आंख देखा, उसे अमृत दिखाई पड़ गया।

"शंकर बच गए।"

क्योंकि मौत तुम्हें मिटा ही नहीं सकती। तुम जिसे जीवन कहते हो, उसे मिटा सकती है। तुम जिसे शरीर कहते हो, उसे मिटा सकती है। तुम जिसे नाम-रूप कहते हो, उसे मिटा सकती है। तुम्हें मिटाने का मौत के पास कोई उपाय नहीं; तुम अमृत-पुत्र हो! तुम न कभी मिटे, न कभी मिटाए जा सकते हो। न तुम कभी पैदा हुए और न तुम कभी मरोगे। जो पैदा हुआ है, वह मरेगा। तुम्हारी देह पैदा हुई है, वह गुजरेगी। तुम्हारा नाम, तुम्हारा व्यक्तित्व पैदा हुआ है, वह मरेगा। लेकिन तुम नाम-रूप से अतीत सदा काल में थे, सदा काल में रहोगे। तुम सनातन हो, तुम शाश्वत हो।

संन्यास का इतना ही अर्थ है कि जो मिटेगा, हम उसे स्वयं छोड़ देते हैं; और उस खोज में निकलते हैं जो नहीं मिटेगा। क्षणभंगुर को छोड़ते हैं, शाश्वत की तरफ आंख उठाते हैं। अगर स्वयं का भी मिटना इसमें हो जाए, तो भी स्वीकार है; क्योंकि जो क्षणभंगुर है, उसे बचा कर भी कौन बचा पाया है, जाने ही दो। अगर जाने के बाद कुछ बच जाएगा--इस कूड़े-करकट के जाने के बाद अगर कुछ बच रहेगा--जिसको त्याग कर भी त्यागा न जा सके, छोड़ कर भी छोड़ा न जा सके; नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि--जिसे शस्त्र छेदें और छेद न पाएं; जिसे आग जलाए और जला न पाए--अगर कुछ ऐसा बचेगा--सब जलाने के बाद, सब शस्त्रों के छिद जाने के बाद, तो बस वही बचाने योग्य था। संन्यास उसकी ही खोज है।

इस घटना को तुम घटना मत समझना; यह बड़ा बहुमूल्य बोध-प्रतीक है; यह एक बोध-कथा है।

दूसरा प्रश्नः साईंबाबा नारायण स्वामी के घर कुत्ता और कोढ़ी के वेश में गए थे और नारायण उन्हें पहचानने से रह गए। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे घर पधारें, लेकिन इसी वेश में, क्योंकि मैं महामूढ़ हूं।

अगर तुम मुझे पहचान गए हो, तो फिर किसी भी वेश में पहचान लोगे। और अगर तुम मुझे पहचाने ही नहीं, तो इसी वेश में पहचान पाओगे, इसका कोई पक्का कारण है? यदि तुम मुझे पहचान गए हो--मुझे--वेश को ही नहीं पहचाना, तो फिर वेश का आग्रह नहीं करना चाहिए। वेश को अगर पहचाना है और मुझे अगर नहीं पहचाना है, तो वेश को ही तुम्हारे घर भी ले आऊंगा, तब भी तुम वेश को ही पहचानोगे। फिर से सोच लो निमंत्रण के संबंध में, क्योंकि मैं बहुत से घरों में इसी वेश में गया हूं और वे नहीं पहचाने। वेश को पहचानने से कुछ पहचान हो भी नहीं सकती।

अगर नारायण स्वामी साईंबाबा को नहीं पहचान पाए कुत्ते और कोढ़ी में, तो इसीलिए कि वे साईंबाबा को पहचान ही नहीं पाए थे। वेश की पहचान कोई पहचान है? वेश के सामने झुकना कोई झुकना है? वेश की

पूजा कोई पूजा है? अगर साईंबाबा इसी वेश में गए होते, जिस वेश में नारायण स्वामी को भ्रांति थी कि वे पहचानते हैं, तो निश्चित ही वे झुके होते, भोग लगाया होता, आदर-सत्कार किया होता। लेकिन क्या वह आदर-सत्कार साईंबाबा को मिला होता या वेश को ही मिला होता? वेश को ही मिला होता।

अब बड़े आश्चर्य की बात है कि वेश से तो कुत्ता भी ज्यादा जीवंत है; और वेश से तो कोढ़ी भी ज्यादा जीवंत है। वेश तो बाहर का आवरण है। आवरण की पकड़ छोड़ो।

लेकिन मैं जानता हूं, आवरण की पकड़ क्यों है। आवरण की पकड़ इसलिए है कि तुम स्वयं को भी अपने वेश के कारण ही पहचानते हो।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हज की यात्रा पर गया, तो साथ में दो आदमी और थे--एक नाई था साथ में और एक गंजे सिर का गंवार था। रात रेगिस्तान में रुके। खतरा था, अनजान जगह थी, तो तय किया कि एक-एक आदमी जाग कर पहरा देता रहे। पहली ही चिट नाई के नाम निकली, तो नाई एक तिहाई रात जागा। लेकिन उसे नींद आने लगी, थका-मांदा। तो उसने सोचा, क्या करूं? कुछ और तो उसे आता नहीं, नाई का धंधा आता था, तो उसने मुल्ला नसरुद्दीन का सिर मूंड़ दिया। बैठे-बैठे करे क्या? रेगिस्तान में कोई दूसरा काम भी न दिखा। सोचा इसमें लग जाऊं तो नींद भी न आएगी, काम भी रहेगा और जागा भी रहूंगा। उसने सिर मूंड़ दिया। नंबर दो पर मुल्ला नसरुद्दीन का रात का पहरा था। जब उसका समय आया तो नाई ने उसे उठाया कि उठो मुल्ला! उसने अपनी आदतवश सिर पर हाथ फेरा। उसने कहा, भाई, तुमने दिखता है कि उस गंजे मूरख को जगा दिया मेरी जगह।

सिर घुटा हुआ पाया, वह तो गंजे मूरख का था। अपने सिर पर तो सदा उसने बाल पाए थे।

हमारी अपनी पहचान भी वेश की ही है। तुमने कभी ख्याल किया, अगर तुम्हारी शक्ल रात सोते में बदल दी जाए, तो सुबह तुम पहचान पाओगे कि तुम्हीं हो? नहीं पहचान पाओगे। कैसे पहचानोगे? क्योंकि अपनी भी पहचान तो दर्पण में ही देख कर है, और तो कोई पहचान नहीं है; उससे गहरी तो कोई पहचान नहीं है। अगर सुबह तुम पाओ कि रात जब तुम सोए थे, तुम एक गोरे आदमी थे, सुबह उठ कर पाओ कि तुम नीग्रो हो गए--अगर कोई वैज्ञानिक प्लास्टिक सर्जरी कर दे रात की निद्रा में, तुम्हारी नाक का ढंग बदल दे, आंख का रंग बदल दे, बाल बदल दे--सुबह जब तुम दर्पण के सामने खड़े होओगे तो तुम भी उसी अवस्था में होओगे जोमुल्ला नसरुद्दीन ने कहा। उसने एकदम गलत नहीं कहा है। वह गलत बातें कहता ही नहीं। वह बड़ी सूझ की बातें कहता है। वह कहता है कि भाई, तुमने गलती से उस गंजे मूरख को जगा दिया मेरी जगह। तुम भी यही पाओगे, चीख कर बाहर आ जाओगे कि क्या हो गया? यह मैं कोई और मालूम होता हूं!

हमारी पहचान अपने से वेश की है। इसलिए हम दूसरे से भी जो पहचान बनाते हैं, वह भी वेश की बनाते हैं। जब तक तुम अपने चैतन्य को न पहचानोगे, तब तक तुम मेरे चैतन्य को भी न पहचान सकोगे। तुम्हारी पहचान मेरे संबंध में उतनी ही गहरी होगी, जितनी तुम्हारी पहचान अपने संबंध में गहरी होती है। मैं तो तुम्हारे घर आ जाऊं, लेकिन उससे कुछ सार न होगा। जब तक तुम्हीं तुम्हारे घर न आए, तब तक मेरे तुम्हारे घर आने से कुछ भी नहीं हो सकता।

तीसरा प्रवचनः आपने कल ततैया की कहानी में मन के अवरोध के संबंध में बताया। साधना के द्वारा ग्रंथि-विसर्जन के लिए हम क्या करें, कृपया बताएं।

महामति, ततैया की कहानी भी समझ में न आई!

ततैया की कहानी में यही बताया था--कि न कोई ग्रंथि थी, न कोई अवरोध था; किताब पढ़ ली थी। ततैया के जीवन में कोई अवरोध नहीं था, जिसको साधना से दूर करना था; ततैया की तकलीफ केवल इतनी थी कि पढ़ने में कुशल हो गई थी और किताब में पढ़ लिया था कि ततैया के पंख छोटे हैं और शरीर भारी है, इसलिए ततैया उड़ नहीं सकती।

अब यह जिन नासमझों ने लिखा हो, उन्होंने भला गणित का हिसाब बिठा लिया हो, लेकिन उन्होंने भी यह नहीं देखा कि ततैया उड़ती ही है। उड़ नहीं सकती, इस बात का क्या मतलब है? कोई ततैया तर्क से उड़ती है?

ततैया भी किताब पढ़ कर घबड़ा गई। उसकी दशा वैसी ही हुई, जैसी एक बहुत पुरानी कहानी है कि एक शतपदी, सौ पैरों वाला जानवर राह से गुजर रहा है। एक खरगोश बड़ा हैरान हुआ, बड़ी जिज्ञासा से भर गया कि सौ पैर! कौन सा पहले उठाता होगा? फिर कौन सा पीछे उठाता होगा? और सौ का हिसाब रखना, और फिर चलना भी! यह तो बड़ा जीता-जागता गणित है! उसने कहा, रुको भई, एक सवाल का जवाब दे दो। सौ पैर! इनमें तुम कौन सा पहले उठाते हो? और डगमगाते भी नहीं! लड़खड़ाते भी नहीं! ऐसा भी नहीं कि चार-दस इकट्ठे उठा दिए और गड़बड़ा गए और गिर गए। और सौ पैर का मामला! तुम कौन सा पहले उठाते हो? कौन सा पीछे उठाते हो? क्या तुम्हारा क्रम है? गणित क्या है इसका?

तब तक शतपदी ने भी कभी सोचा नहीं था। चलता रहा था, सोचा किसने। जन्म से, जब से होश पाया था, चल ही रहा था; कभी सवाल उठा ही न था। उसने भी कहा कि यह तो बड़ा सवाल उठा दिया। उसने नीचे झांक कर देखा, खुद भी घबड़ा गया--सौ पैर! संख्या भी नहीं आती इतनी तो उसको। उसने कहा, भई, अभी तक मैंने सोचा नहीं। अब तुमने सवाल उठा दिया तो मैं सोचूंगा, परीक्षण करूंगा, निरीक्षण करूंगा और देख कर तुम्हें जल्दी ही खबर दूंगा।

लेकिन फिर वह चल न सका। वह एक कदम चला और खड़बड़ा कर गिर गया। सौ पैर सम्हालने का मामला आ गया था! जान छोटी, सौ पैर! बुद्धि छोटी और सौ पैर! उतना बड़ा हिसाब न लगा सका, वह वहीं खड़बड़ा कर गिर पड़ा। उसने कहा, नासमझ खरगोश, तूने मेरी मुसीबत कर दी। अब मैं कभी भी न चल सकूंगा; क्योंकि यह सवाल मेरा पीछा करेगा। अब तक मैं चलता था।

तुमने कभी ख्याल कियाः जिन चीजों को भी तुम चिंतना बना लोगे, उन्हीं चीजों में मुश्किल हो जाएगी; छोटी-छोटी चीजें मुश्किल हो जाएंगी। तुम कोशिश करके देखो। सात दिन एक काम करो, इसको सोचोः जब भी भोजन करो, यह सोचो कि भोजन को तुम पचाते कैसे हो? अभी तक पचाया है, कोई अड़चन नहीं आई है, लेकिन जरा सात दिन तुम इस पर ध्यान करके देखो कि भोजन को पचाते कैसे हो? यह कोई छोटी घटना नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं, यह सबसे बड़ा चमत्कार है। रोटी ले जाते हो, खून-हड्डी बन जाती है, मांस-मज्जा बन जाती है; मस्तिष्क के सूक्ष्म तंतु बन जाती है; विचार बनती है, वासना बनती है! रोटी! और इस छोटी सी पेट की फैक्ट्री में सब रूपांतरण होता है। कैसे होता है? तुम जरा सात दिन सोचो। अपच हो जाएगा; फिर तुम कभी स्वस्थ न हो पाओगे। तो सोच कर करना, पेट गड़बड़ हो जाएगा। जैसे सौ पैर डगमगा गए, ऐसे तुम डगमगा जाओगे। यह हो कैसे रहा है?

जीवन तुम्हारी बुद्धि से बड़ा है। और जब भी तुम बुद्धि का उपयोग करते हो, वहीं अड़चन आ जाती है। जीवन तुमसे बहुत बड़ा है, बुद्धि बड़ी छोटी है। ततैया की कहानी भी तुम न समझे!

और पूछा है कि साधना के द्वारा ग्रंथि-विसर्जन के लिए हम क्या करें?

ततैया ने क्या किया? कुछ किया नहीं। करने का तो कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि भ्रांति केवल मन की थी; भ्रांति वास्तविक न थी। ततैया उड़ती ही रही थी, जब तक किताब न पढ़ी थी। शास्त्र मौत हो गया। वेद पढ़ लिया, उसी में प्राण गए। उस दिन से न उड़ सकी, फिर बैठ गई! और जब बैठ गई, तो और मोटी होती गई, और उड़ना मुश्किल हो गया। और उड़ना मुश्किल हुआ, शास्त्र और भी ठीक मालूम हुआ--कि बिल्कुल ठीक है। और ततैएं उड़ रही थीं, लेकिन उसने सोचा कि ये सब नासमझ अज्ञान में उड़ रही हैं।

अब तुम थोड़ा सोचो! अज्ञान में उड़ रही हैं, इनको पता नहीं कि शास्त्र में क्या लिखा है। अगर इनको थोड़ी भी बुद्धि होती तो कभी का उड़ना रोक देतीं; क्योंकि वैज्ञानिक जब कोई बात कहते हैं, तो सोच कर कहते हैं। पंख छोटे और शरीर बड़ा--और नासमझ उड़ती चली जा रही हैं! बजाय इसके कि उसने समझा होता कि मैं भी उड़ सकती हूं, उसने यही सोचा कि मैं ज्ञानी हूं, ये अज्ञानी हैं।

आदमी अपने रोगों को भी ज्ञान में छिपाता है, अपनी मूढ़ताओं को भी ज्ञान में छिपाता है। आदमी के छिपाने की कुशलता असीम है।

उस ततैया ने यही सोचा कि अकेली मैं हूं जो समझदार हूं; ये मूढ़ उड़े जा रही हैं--सिद्धांत के प्रतिकूल; शास्त्र के प्रतिकूल। इनको कुछ पता ही नहीं है कि ये क्या कर रही हैं! जो हो ही नहीं सकता, वही कर रही हैं! लेकिन उसे यह ख्याल न आया कि जो हो ही नहीं सकता, वह अज्ञान में भी कैसे हो सकता है? वह तो सौभाग्य की बात कि एक सुबह एक पक्षी ने हमला कर दिया। उस हमले की घबड़ाहट में वह भूल गई ज्ञान, बिसर गया वेद; एक क्षण भर को अज्ञानी हो गई; उड़ गई अज्ञान में।

लेकिन जब बैठी वापस छाया तले, तो उसे सोच आया कि उड़ तो मैं भी गई, उड़ तो मैं भी सकी, तो निश्चित ही...

अब यही तो मन की तरकीबें हैं। उसने यह न सोचा कि यह मेरी भ्रांति थी कि नहीं उड़ सकती हूं; यह जिन्होंने शास्त्र लिखा, गलत लिखा होगा। लिखी हुई बात को गलत आदमी तक नहीं मानता, तो ततैया तो बेचारी ततैया है। लिखी बात का जादू होता है। अगर कोई तुमसे कोई बात कहे, तोशायद तुम न मानो; अगर वह लिखी हुई किताब में बता दे, तुम फौरन मान लो!

मेरे एक मित्र हैं, वे कविताएं करते हैं। कविताएं कचरा हैं; तुकबंदी ज्यादा से ज्यादा। और वे भी सिर-खाऊ, कि जिसको सिरदर्द न होता हो उसको सिरदर्द हो जाए। ठीक एस्प्रो से उलटा काम करती है उनकी कविता। बड़ी कारगर है। कोई उनकी कविता सुनता नहीं। वे मुझे आकर कभी-कभी सुनाते थे। और पूछने लगे, कोई मेरी सुनता नहीं; जिसको सुनाऊं, वही लोग कहते हैं--भई, बंद करो, अभी दूसरा काम भी करना है। मित्रों के पास जाता हूं, खिसक जाते हैं; काफी-घर में जाता हूं, लोग मेरी टेबल पर नहीं बैठते। करना क्या?

मैंने कहा, तुम एक काम करो। या तो कविता छपवाओ।

तो उन्होंने कहा, ये लोग सुनते नहीं, पढ़ेंगे कैसे?

मैंने कहा, छपे शब्द का जादू तुम्हें पता ही नहीं। या तो छपवाओ।

उन्होंने कहा, वह तो महंगा खर्चा है। और कहीं अगर आपकी बात ठीक न निकली और फिर भी इन्होंने न पढ़ा।

तो मैंने कहा, तुम एक काम करो। यह टेप-रिकार्डर पड़ा है, यह ले जाओ; इस पर तुम अपनी ही कविता रिकार्ड कर लो। इसको लेकर तुम कल काफी-घर जाओ और मित्रों से कहना कि देखो, कुछ कविताएं टेप करके लाया हूं। और सुनाओ।

वे लौट कर आए और बोले, बड़ा चमत्कार है! मेरी नहीं सुनते नासमझ और टेप-रिकार्डर को ऐसा संलग्न होकर सुनने लगे।

मशीन का जादू! आदमी को इनकार कर दो, मशीन को कैसे करोगे?

न्यूयार्क में एक चोर पकड़ा गया। क्योंकि वह घर में घुसा, उसने सब तरफ से दरवाजे बंद कर लिए, तिजोरी तोड़ डाली। और वह बंदूक लिए था। और जब खबर मिल गई तो वह बंदूक लेकर खिड़की पर खड़ा हो गया। सिपाही या कोई भी आदमी भीतर प्रवेश करे--जान का खतरा; वह खिड़की पर खड़ा है बंदूक लिए।

एक आदमी ने पास में जाकर फोन किया, घर के अंदर की घंटी बजी, वह चोर बंदूक रख कर फोन पर गया; उसने फोन पर कहा कि भई माफ करो, अभी मैं काम में लगा हूं! मगर इसी बीच पकड़ा गया। जब उससे पूछा गया कि क्या जरूरत थी तुझे घंटी पर जाने की?

उसने कहा, करो भी क्या! जब घंटी बज रही है टेलीफोन की, तो जवाब तो देना ही पड़ेगा। तो वह बंदूक छोड़ कर चला गया। मशीन का जादू!

आदमी दरवाजे पर दस्तक मारता हो, कोई फिक्र न करे; लेकिन घंटी टेलीफोन की बज रही है, तो तुम्हारा कोई मतलब भी न हो--अब उसके बाप का घर नहीं था वह; न उसका कोई घंटी से लेना-देना था; लेकिन जब घंटी बज रही है, तो अवश हो जाता है आदमी। जवाब देना ही पड़ेगा।

वे मित्र लौट कर आए। उन्होंने कहा, गजब हो गया! छपवाऊंगा! ये जरूर पढ़ेंगे, ये लोग खरीद कर पढ़ेंगे। और मैं मुफ्त खुद ही सुना रहा हूं, नहीं सुनते। और गौर से सुनते रहे, और ऐसे तल्लीन होकर सुने कि एक शब्द चूक न जाए!

छपे हुए अक्षर का बड़ा प्रभाव है। अगर कोई आदमी तुमसे कोई बात कह रहा है और तुम भरोसा न करो, और वह कहे, अच्छा, मैं किताब बताए देता हूं जिसमें यह लिखा है, तो तुम फौरन मान लोगे। जब किताब में लिखा है। जैसे किताब में लिखे होने से कोई बात सच होती है। अगर सच होना इतना ही आसान होता, तब तो क्या कहना था! कितने झूठ किताबों में लिखे हैं! वस्तुतः निन्यानबे प्रतिशत तोझूठ ही लिखे हैं। लेकिन वे सब सच हो गए हैं, क्योंकि किताब में लिखे हैं। किताब का बड़ा असर है।

ततैया भ्रांति में पड़ गई किताबों की। ततैया को कोई बीमारी न हुई थी, ध्यान रखना, जिसका इलाज करना हो; ततैया को कोई वास्तविक ग्रंथि पैदा नहीं हुई थी, जिसको योगासन से तोड़ना पड़ेगा। ततैया को कुछ भी न हुआ था, सिर्फ एक ख्याल, एक गलत ख्याल पकड़ गया था। अब गलत ख्याल को छोड़ने के लिए क्या करना पड़ता है? गलत ख्याल को सिर्फ छोड़ना पड़ता है, और कुछ भी नहीं करना पड़ता। एक पक्षी झपट्टा मारा, घबड़ा गई।

बस गुरु ऐसे ही पक्षी हैं, जो तुम पर झपट्टा मारते हैं। अगर घबड़ा गए, तो उस क्षण में घबड़ाहट के, तुम्हें दर्शन हो जाएगा।

इसलिए गुरु से डर लगता है; क्योंकि गुरु कुछ कर नहीं रहा है और। तुम पर दया भी आती है और तुम पर हंसी भी आती है। क्योंकि तुम बीमार नहीं हो, इसलिए तुम पर हंसी आती है। और तुम ऐसी बीमारी बनाए बैठे हो, दया भी आती है। दुख भोग रहे हो, इसमें कोई शक नहीं है; लेकिन दुख अकारण भोग रहे हो, इसमें भी

कोई शक नहीं है। दुख तुम्हारे ख्याल में है। ख्याल को भर तोड़ना है। स्वभाव से तुम सदा ही स्वस्थ हो। परमात्मा ने तुम्हें क्षण भर को छोड़ा नहीं, तुम्हारे रोएं-रोएं में वही समाया है। सिर्फ कहीं से कोई ख्याल पकड़ गया है कि कुछ गलत है--बस। अब वह गलती को कैसे ठीक करना! गलती कभी हुई नहीं है। बस एक ही गलती हुई है कि गलती हो गई है, यह ख्याल पकड़ गया है।

ततैया भाग कर उड़ भी गई, तो भी उसने यह न सोचा... आदमी का अहंकार अपने को गलत मानता ही नहीं है--अतीत की तरफ, पीछे की तरफ भी गलत नहीं मानता। उसने यही सोचा कि कोई मन का अवरोध पैदा हो गया था, जिसकी वजह से मैं उड़ नहीं पाती थी। अब वह अवरोध टूट गया--संकट के एक क्षण में शक्ति जग गई, अवरोध टूट गया--अब मैं उड़ पाती हूं। उसने भी यह न सोचा कि अवरोध वगैरह कुछ भी न हुआ था। वह खाली बैठी थी, व्यर्थ ही बैठी थी। और यह "अवरोध" भी उसने मनोविज्ञान की किताबों में पढ़ लिया था।

किताबें तुम्हारी मौत हो गई हैं। तुम थोड़ा जिंदगी में आओ। तुम कृपा करके वेद, कुरान, बाइबिल को नमस्कार कर लो। नमस्कार तुमने कई बार किए हैं। मेरे अर्थों में नमस्कार कर लो--कि बस, क्षमा करो! अब बहुत हो गया! अब मुझे जिंदगी जैसी है, उसको उसकी स्वाभाविकता में जीने दो।

स्वाभाविक हो जाना धार्मिक हो जाना है। तुम अस्वाभाविक हो गए हो। कहीं कोई रोग नहीं है, सिर्फ भ्रांति है रोग की। संसार वस्तुतः नहीं है, सिर्फ भ्रांति है। है तो परमात्मा ही। इसलिए शंकर इसे माया कहते हैं। अब मजा यह है कि रोग पकड़ जाए गलत, तो फिर इलाज चाहिए। तो इलाज करने वाले मिल जाते हैं! पहले तो रोग ही गलत था, फिर गलत रोग का इलाज करो तो और झंझटें बढ़ती हैं। क्योंकि वे औषधियां दे रहे हैं! औषधियां बिल्कुल गलत हों तो ठीक, अगर औषधियों में कुछ भी ठीक हो, सही हो, तो नुकसान होगा, खतरा होगा। एक तकलीफ को तुम ख्याल में ले लो, तो हजार तकलीफों के द्वार खुल जाते हैं। और मूल को ही ठीक से पहचान लो, तो फिर तकलीफों के द्वार नहीं खुलते, मूल तकलीफ ही विसर्जित हो जाती है।

ततैया थोड़ी जरूरत से ज्यादा बुद्धिमान थी, यही उसका बुद्धूपन था।

अब तुम पूछते होः "आपने कल ततैया की कहानी में मन के अवरोध के संबंध में बताया।"

मैंने बताया ही नहीं, तुमने कुछ और ही सुना होगा। और यही तो रोना है--कहो कुछ, तुम सुनोगे कुछ, करोगे कुछ; पीछे मुझको जिम्मेवार ठहराओगे कि आपने ही तो कहा था।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे इतनी हिम्मत से कहते हैं कि आपने ही कहा था, कि मैं भी चुप रह जाता हूं। क्योंकि अब उनसे क्या कहना! जब वे पहले नहीं समझे तो अब भी क्या समझेंगे। चुप रह जाता हूं कि ठीक है, जरूर कहा ही होगा, नहीं तो तुमने सुना कैसे! जरूर कहा होगा।

तुमने सुना, इससे जरूरी मत समझना कि मैंने कहा। अब यह तुमने सुन लिया कि आपने कल ततैया की कहानी में मन के अवरोध के संबंध में बताया। बिल्कुल नहीं। ततैया ने मन के अवरोध के संबंध में मनोविज्ञान की किताब में पढ़ा था; कहीं कोई अवरोध था नहीं, ततैया बिल्कुल स्वस्थ थी--उड़ सकती थी, नाच सकती थी; फूलों की बहार में भागीदार हो सकती थी; सूरज की रोशनी में प्रसन्न होकर गीत गुनगुना सकती थी--कहीं कोई अड़चन न थी, सिर्फ एक भ्रांत ख्याल पकड़ गया था; कहीं कोई अवरोध न था।

अब तुम पूछते होः "साधना के द्वारा ग्रंथि-विसर्जन के लिए हम क्या करें?"

तुम भी ततैया हो, शास्त्र पढ़ कर बैठ गए, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि उड़ नहीं सकते।

शास्त्र को थोड़ा कम मानो, स्वयं को थोड़ा ज्यादा मानो। तुम ही निर्णायक हो, शास्त्र नहीं। स्वभाव की सुनो, स्वभाव की गुनो, स्वभाव ही तुम्हें मुक्तिदायी होगा। और जिसने स्वभाव की सुनी और स्वभाव की गुनी,

वही शास्त्र को भी समझने में सफल हो पाता है। तब शास्त्र कुछ और ही कहता मालूम पड़ता है। जो तुमने पहले समझा था, वह नहीं। तुम वही समझ लेते हो, जो तुम समझना चाहते हो! तुम अपने रोग के लिए शास्त्र का सहारा खोज लेते हो। तब रोग और मजबूत होकर बैठ जाता है।

इस ततैया को क्या हुआ था? इसने जल्दी यह बात क्यों मान ली?

ततैया को एक ही रोग था और वह रोग यह था कि वह पहले से ही दूसरी ततैयों की निंदा में पड़ी थी। वह पहले से ही कहती थी कि ये सब आवारागर्द यहां-वहां घूम रही हैं। न कोई विचार, न कोई सोच, न कोई शास्त्र का अध्ययन--इनको कुछ ऊंचे जीवन का ख्याल ही नहीं है, बस घूम रही हैं; फूलों में नाच रही हैं; ऐसे ही जीवन गंवा रही हैं। ततैया को पहले से ही बड़ा दंभ था कि मैं कुछ विशिष्ट हूं और ये सब निकृष्ट हैं। इसी भ्रांति ने शास्त्र के साथ झंझट करवा दी। जब उसने शास्त्र में पढ़ लिया कि ततैया उड़ ही नहीं सकती, तो उसने कहा, बिल्कुल ठीक, मैं भर अकेली ज्ञान को उपलब्ध हो गई हूं और ये सब नासमझ अज्ञान में भटक रही हैं। इस ज्ञान के अहंकार ने ही उसे बिठा दिया। और इस अहंकार के कारण उसे बड़ा मजा आने लगा।

दुनिया भर की निंदा करने में बड़ा रस आता है। तुम जाओ, अपने साधु-संन्यासियों को देखो। वे बैठे हैं ततैयों की तरह, उड़ते नहीं, जीवन में नहीं आते। उनका रस एक ही है कि तुम जाओ तो देख रहे हैं कि तुम नरक में गिरोगे--माया-मोह में पड़े हो, संसार में उलझे हो। निंदा गहरी है उनके मन में। और उनसे भी पूछो तो वे भी यही कहेंगे कि बेचारे अज्ञान के कारण सब माया-मोह में पड़े हैं। इतना बड़ा जगत अज्ञान के कारण माया-मोह में पड़ा है, सिर्फ कुछ इक्के-दुक्के जो मंदिरों में बैठे हैं मुर्दों की भांति, वे भर ज्ञान के कारण!

परमात्मा की मर्जी कुछ ऐसी है कि तुम इस माया-मोह से गुजरो। इस गुजरने में कुछ राज है। इस गुजरने से ही प्रौढ़ता उपलब्ध होती है, परिपक्वता उपलब्ध होती है। ये भगोड़े जो मंदिरों में छिप गए हैं, यही आखिर में मुजरिम सिद्ध होंगे। और इनका कुल मजा अहंकार है। तुम भोजन में रस लेते हो, ये उपवास में। तब इनकी अकड़ पक्की हो जाती है कि देखो, तुम अभी भी भोजन में पड़े हुए हो पशुओं की भांति। हमको देखो, उपवास में बैठे हैं! तुम सुख-सुविधा में रस लेते हो, ये धूप में खड़े हैं, कांटों की सेज बिछा कर लेटे हैं। क्या पागलपन है!

लेकिन एक ही मजा है इनका, वह यह कि ये तुम्हारी निंदा कर पाते हैं। कांटों की सेज से तुम्हारी जैसी निंदा हो सकती है, वैसी और कहीं से नहीं हो सकती। क्योंकि तुम तो न लेट सकोगे कांटों की सेज पर; तुमने अभी इतना शास्त्र पढ़ा ही नहीं, इन्होंने शास्त्र पढ़ लिया है।

तुम्हारे साधु-संन्यासी त्याग-तपश्चर्या कर रहे हैं सिर्फ अहंकार के वश। कोई परमात्मा का स्वर्ग उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ है--सिर्फ अहंकार की प्रगाढ़ प्रतीति। और उसका मजा लेना हो तो तुमसे विपरीत होना जरूरी है। तुम जो करते हो, उससे विपरीत करके वे दिखा देते हैं। और तब तुम भी डरते हो उनसे; तुम भी भयभीत होते हो। तुम भी सोचते होः इन्होंने कुछ बड़ा भारी चमत्कार किया है।

तुम तो मूढ़ हो ही, वे महामूढ़ हैं। तुम पैर के बल खड़े हो कम से कम, वे सिर के बल खड़े हैं। उसको वे शीर्षासन कहते हैं। आदमी को पैर के बल चलने के लिए ही बनाया है, नहीं तो परमात्मा सिर के बल ही चलने की व्यवस्था करता। शीर्षासन की आवश्यकता नहीं है। लेकिन शीर्षासन करने वाला तुम्हारी तरफ देख सकता है निंदा से कि देखो, अभी तुम पैर के बल ही खड़े हो; वही अज्ञानियों की चाल चल रहे हो। हमको देखो, हम ज्ञानियों की चाल चल रहे हैं! और फिर तुममें से भी कुछ नासमझ उससे प्रभावित हो जाते हैं, वह भी अहंकार के कारण। जिनके मन में अहंकार है--तुम्हारे भीतर भी है--वे भी उससे प्रभावित हो जाते हैं; वे भी धीरे-धीरे आसन लगाने लगते हैं।

अब तुम मुझसे पूछते होः "हम क्या करें साधना के द्वारा ग्रंथि-विसर्जन के लिए?"

मैं कहीं ग्रंथि देखता नहीं कि तुममें कहीं कोई ग्रंथि है, जिसका विसर्जन करना है। तुम बिल्कुल जैसे होने चाहिए, वैसे हो; ग्रंथि की भ्रांति भर छोड़ दो। जिस दिन भी तुम ग्रंथि की भ्रांति छोड़ोगे, उसी दिन पाओगे कि अरे! इतना समय व्यर्थ ही गंवाया! हम तो ऐसे सदा थे।

बुद्ध को ज्ञान हुआ। क्या हुआ ज्ञान में? बुद्ध ने पहला वचन कहा कि हे वासना के घर बनाने वाले देवता, अब तुझे मेरे लिए और घर न बनाने पड़ेंगे, क्योंकि मैंने वासना का स्रोत पकड़ लिया। वासना का स्रोत कल्पना है। मैंने पकड़ लिया कि यह सब मेरी कल्पना का ही जाल था। अब तुझे मेरे लिए कोई घर न बनाने पड़ेंगे; अब वह यात्रा बंद हुई। क्योंकि मैंने पकड़ लिया मूलस्रोत--कल्पना।

तुम्हारी ग्रंथि तुम्हारी कल्पना में है। तुम्हारी वासना भी तुम्हारी कल्पना में है। तुम्हारा संसार भी तुम्हारी कल्पना में है। सत्य सदा से वैसा ही है, जैसा था। अभी भी वैसा है। कल भी वैसा होगा। जिस दिन भी तुम कल्पना का जाल गिरा कर लौटोगे, पाओगे कि इतना आनंद व्यर्थ ही गंवा रहे थे।

लेकिन लोग हैं--तुम भी ऐसे लोगों को जानते होओगे, जिनको वे हाइपोकांड्रिआक कहते हैं--वे कोई न कोई बीमारी बनाते रहते हैं। उनको तुम हमेशा डाक्टर की तरफ जाते देखोगे। कभी हकीम के यहां जा रहे हैं, कभी एलोपैथ के यहां, कभी होम्योपैथ के यहां, कभी नेचरोपैथ के यहां। तुम उनको कभी चैन में न पाओगे, वे हमेशा जा रहे हैं। और जहां जाते हैं, वहीं लोग उनको कहते हैं, भई, ये बीमारियां हैं नहीं, हम क्या करें? वे नाराज होते हैं ऐसे लोगों पर कि बीमारियां नहीं हैं? हम इतनी तकलीफ उठा रहे हैं और तुम कहते हो बीमारियां नहीं हैं! वे सुनने आते हैं कि कहो कि बड़ी बीमारी है, भारी बीमारी है; तुमको ऐसी बीमारी हुई, जैसी पहले कभी किसी आदमी को हुई नहीं; तुम ऐतिहासिक पुरुष हो, तुम बड़े अनूठे हो। तब उनको तृप्ति मिलती है।

मैंने एक ऐसी बुढ़िया के बाबत सुना है कि ऐसा जिंदगी भर--कोई मानता नहीं था। वह बीमार थी भी नहीं, कोई माने भी कैसे? चिकित्सक भी क्या करें? और तुम एक चिकित्सा करो, वह दस बीमारियां खड़ी कर दे। कभी हाथ में दर्द, कभी पैर में दर्द, कभी सिर में दर्द; कभी यह, कभी वह; कल्पना की कोई सीमा है जब तुम कल्पना ही कर लो! एक बीमारी की कल्पना कर लो, तो तुमने सब बीमारी की कल्पना करने की क्षमता जुटा ली; अब तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। किसी तरह सिर ठीक कर दो, तो वह पैर पर आ जाएगी। आखिर वह मरी। तो जब वह मरी तो मरने के पहले उसने संगमरमर खोदने वाले आदमी को कहा कि मेरी कब्र पर यह पत्थर लिख देना--कि अब तो भरोसा आया कि मैं बीमार थी! अब तो भरोसा आया! अब मर गई, अब तो माना!

एक पागल को मेरे पास लाए। उसमें कुछ खास मामला नहीं था। जवान आदमी, स्वस्थ सब। बस उसको एक वहम समा गया कि दो मक्खियां उसके भीतर घुस गई हैं। रात सो रहा था, नाक से दो मक्खियां अंदर चली गईं। अब वे दोनों अंदर भनभनाती हैं। अब वह बेचैन है--न सो सकता, न खा सकता--सब अस्तव्यस्त हो गया है। इलाज करवा डाले सब। अब मक्खियां हों तो भी कुछ हो जाए। चिकित्सक कहें कि भई, कोई मक्खी नहीं है, एक्सरे में भी नहीं आती। पर वह कहे कि तुम्हारे एक्सरे को मानूं कि अपने अनुभव को? मैं भनभनाहट सुनता हूं, टकराहट सुनता हूं; हड्डियों में चलती हैं, सरकती हैं। तुम्हारे एक्सरे में न आएं, तो तुम्हारी कोई भूल है। और

तुम्हारे एक्सरे में न आने से मेरी तकलीफ तो बंद नहीं होती। यह भी ठीक बात है--कि मेरी तकलीफ तो जारी है।

मैंने कहा कि ठहरो, कुछ उपाय करते हैं। उसको कहा कि तू आंख बंद करके लेट जा और जब तक हम न कहें, तू आंख मत खोलना; तेरी मक्खियों को निकालने की कोशिश करते हैं।

उसको अच्छा लगा जब मैंने कहा कि मक्खियों को निकालने की कोशिश करते हैं; क्योंकि कम से कम, मक्खियां हैं, इस एक आदमी ने तो माना। उसने तत्क्षण मेरे पैर छुए। उसने कहा कि आप भर एक समझदार आदमी मिले। न मालूम कितने लोगों के पास गया, वे पहले तो यही कहते हैं कि ऐसी मक्खियां--हंसने लगते हैं। हम मरे जा रहे हैं और तुम्हारी मजाक! और तुम हंस रहे हो! डाक्टर और हंसे तोदुख होता है। आपने ठीक किया, आप जरूर ठीक कर पाएंगे।

मैंने कहा, इसमें कोई अड़चन नहीं है। मक्खियां दिखाई पड़ रही हैं। कैसे एक्सरे में नहीं आती हैं, यह भी आश्चर्य की बात है। वह निश्चिंत हुआ। मैंने कहा, तू... आंख पर उसकी पट्टी बांध कर उसे लिटा दिया। तब मैं भागा और घर में बामुश्किल दो मक्खी पकड़ पाया; क्योंकि वे मक्खियां... उसको मक्खियां दिखाना जरूरी है। एक बोतल में दो मक्खियां बड़ी मुश्किल से... क्योंकि कभी पकड़ी नहीं, कोई अनुभव नहीं।

उसने आंखें खोलीं, मक्खियां गौर से देखीं--बोतल में बंद हैं! मैंने कहा कि भई, देख, निकाल कर रख दीं। उसने कहा कि ये वे मक्खियां ही नहीं हैं, वे तो बड़ी मक्खियां हैं। ये तो छोटी मक्खियां हैं, साधारण, घर में पाई जाने वाली। वे तो बड़ी-बड़ी मक्खियां हैं। अभी भी घूम रही हैं। मैंने कहा, अब बहुत मुश्किल है; हम जो कर सकते थे, वह हमने किया; मगर हम ये दो ही निकाल पाए। उसने कहा, ये भी रही होंगी, मैं इसको कोई मना नहीं करता; लेकिन वे जो दो असली हैं, वे तो घूम ही रही हैं।

अब ऐसे आदमी को क्या करो? जो दो की कल्पना कर सकता है, वह चार की कर सकता है। दो मक्खियां पकड़ दीं, अब वह कह रहा है--वे बड़ी हैं, वे दूसरी मक्खियां हैं! तब मैंने समझ लिया कि अब कोई भी मक्खियां लाओ, यह मानने वाला नहीं है; क्योंकि यह कहेगा, ये वे नहीं हैं।

क्या इस आदमी के साथ करो? दया भी आती है कि व्यर्थ तकलीफ उठा रहा है। ज्यादा ही दया आती है, क्योंकि यह बिल्कुल ही व्यर्थ तकलीफ उठा रहा है। वास्तविक भी तकलीफ होती, तो भी ठीक था। वास्तविक होती तो इलाज भी हो सकता था। तकलीफ इतनी झूठी है कि इलाज का भी उपाय नहीं। और हंसी भी आती है, क्योंकि चाहे तो यह अभी छोड़ दे। अब यह एक मौका इसे मिला था कि राजी हो जाता कि ये मक्खियां हैं। उसने तरकीब निकाल ली; उसने कहा, ये वे मक्खियां ही नहीं हैं। माना, आपने मेहनत की, और आप अकेले आदमी हैं जिसने स्वीकार किया, मगर ये दूसरी मक्खियां हैं; ये भी रही होंगी।

तुम्हारा रोग ऐसा ही है, तुम्हारी ग्रंथियां ऐसी ही हैं। कहीं कुछ विकृत नहीं हुआ है। हो नहीं सकता। परमात्मा ही सब कुछ है, तो विकृति हो कैसे सकती है? कल्पना का जाल है। अगर तुम जाग सको--इसी क्षण जाग सकते हो, कुछ करने को नहीं है।

यह न करने का नाम ही है भज गोविन्दम्। भज गोविन्दम का मतलब हैः कुछ भी नहीं करना है, सिर्फ गोविन्द को भजने से भी दूर हो जाएगा।

अगर असली बीमारी होती तो भज गोविन्दम से दूर हो नहीं सकती थी। भज गोविन्दम से असली बीमारी कैसे दूर होगी? तुम गोविन्द-गोविन्द करोगे, इससे कैंसर जाएगा? कैसे जाएगा?

लेकिन ज्ञानियों ने कहा है कि अगर तुम परमात्मा का नाम भी स्मरण कर लो, तो सब रोग हट जाएंगे। क्योंकि रोग हैं नहीं। स्मरण के क्षण में, परमात्मा पर समर्पण के क्षण में तुम अचानक पाओगे--रोग कभी भी न थे; तुम शुद्ध-बुद्ध हो; तुम अनाम, अरूप, निरंजन; कहीं एक काली रेखा तुम पर पड़ी नहीं; सब कल्पना का जाल है।

ततैया की कहानी फिर से समझने की कोशिश करना, वह तुम्हारी ही कहानी है।

चौथा प्रश्नः क्या यह संभव है कि आदमी का चित्त एक नवजात शिशु के चित्त की भांति हो जाए?

निश्चित ही। एक झील पर सब शांत है। फिर लहरें आ गईं, हवा के झोंके आए--झील कंप गई। फिर हवा के झोंके चले जाएं, झील फिर शांत हो जाएगी, फिर दर्पण बन जाएगी। झील स्वच्छ है। पत्ते गिर गए, गंदगी हो गई। पत्ते बैठ जाएंगे भूमि में, झील फिर ताजी और फिर स्वच्छ हो जाएगी।

बच्चा पैदा हुआ, झील अभी स्वच्छ थी--तरंगें न थीं, विचारों के कोई पत्ते न थे, वासना की कोई लहरें न थीं।

फिर सब तरंगायित हो गया--तूफान उठे, मन कंपा, दर्पण खो गया। जवानी आई, सब आंधी-आंधी हो गया; कुछ ठहरा हुआ न रहा; बड़ी वासनाओं के उत्तंड वेग आए।

फिर बुढ़ापा आया; सब कूड़ा-कचरा, पत्थर, खंडहर पड़े रह गए।

लेकिन जो मूल में था, वह अब भी वहां है। थोड़ी सी समझ--पत्तों को बैठ जाने देना; थोड़ी सी समझ--वासना की हवाओं का रुक जाना। झील फिर वही हो जाएगी, झील के स्वभाव में कोई अंतर नहीं पड़ा है।

जैसा निर्दोष बच्चे का मन है, ऐसा ही पुनः जब हो जाता है, तभी हम उसे संत कहते हैं; फिर बच्चे जैसा हो जाता है।

इसलिए शंकर ने कहाः वह परमयोगी कभी बच्चों की भांति और कभी पागलों की भांति मालूम होता है। कभी तो ऐसा लगता है, छोटे बच्चे की तरह सरल है; कुछ भी नहीं उसके भीतर, शून्य है। और कभी ऐसा लगता है, प्रचंड अज्ञात की आंधियां उठी हैं--उन्मत्त है, पागल है।

पागल व्यक्तियों में भी एक बालपन जैसी निर्दोषता होती है; और बच्चों में भी पागलों जैसी एक विक्षिप्तता होती है।

छोटे-छोटे बच्चे छोटी-छोटी चीजों पर पागल हो जाते हैं। उनको खिलौना चाहिए--नाचने लगेंगे, कूदने लगेंगे, तोड़ने-फोड़ने लगेंगे--अभी चाहिए। अभी क्रोधित हैं, क्षण भर बाद हंसने लगेंगे, मुस्कुराने लगेंगे--भूल ही जाएंगे कि जैसे क्रोध था। पागल और बच्चों में बड़ा सामान्य है, बहुत कुछ समान है। इसलिए पागलों की आंख में तुम झांकोगे तो बच्चों जैसा निर्दोष भाव पाओगे; और बच्चों की आंख में भी झांकोगे तो भी एक पागलपन की अवस्था पाओगे।

परमज्ञानी दोनों एक साथ हो जाता है। बहुत बार लगता है बच्चों की भांति है; और बहुत बार लगता है पागलों की भांति है। क्योंकि न तो कोई नियम रह जाते हैं, न कोई मर्यादा रह जाती है, इसलिए पागल लगता है; न पाप, न कोई पुण्य, इसलिए पागल लगता है। और इसीलिए बच्चा भी लगता है। बच्चे को भी न कोई पाप है, न कोई पुण्य है; बच्चे को भी कोई मर्यादा नहीं है। बच्चा मर्यादा के पहले है, संत मर्यादा के पार है, बीच में

संसार है--जहां मर्यादाएं हैं, नीति है, नियम है; पाप है, पुण्य है; शुभ है, अशुभ है; करने योग्य है, न करने योग्य है--दोनों छोर हैं।

निश्चित ही, जो एक क्षण तुम्हारे जीवन में था, वह फिर हो सकता है। कभी तुम बच्चे थे, वह बच्चा खो नहीं गया है, तुम्हारे मन के विचारों की भीड़ में अभी भी भीतर मौजूद है। भीड़ शांत होगी, अचानक पुनराविष्कार हो जाता है, फिर वह बच्चा मौजूद है। वही संतत्व है।

पांचवां प्रश्नः श्री शंकराचार्य कभी तो कहते हैं कि गंगा की यात्रा करने से भी कुछ न होगा, और कभी कहते हैं गंगाजल की एक बूंद भी पीने से आदमी मृत्युंजय हो जाता है। कृपापूर्वक इस विरोधाभास पर प्रकाश डालें।

बाहर की गंगा और भीतर की गंगा। बाहर की गंगा की कितनी ही यात्रा करो, कुछ भी न होगा; क्योंकि बाहर की गंगा की यात्रा भी बाहर की यात्रा है, उससे तुम भीतर न पहुंचोगे। और भीतर की गंगा की एक बूंद पी लो, तो पहुंच गए; क्योंकि भीतर की गंगा की एक बूंद पीने के लिए भी तुम्हें बिल्कुल भीतर आना पड़ेगा, तो ही तुम एक बूंद भी पी सकोगे।

तीर्थयात्रा बाहर नहीं है, बाहर तो बस संसार है; तीर्थयात्रा भीतर है। जितने तुम भीतर जाओगे, जितने अपने में रमोगे, उतने ही तीर्थ के निकट आओगे--वहीं गिरनार है, वहीं शिखरजी, वहीं काबा, वहीं कैलाश, वहीं काशी। बाहर की भ्रांति से बचना।

लेकिन हम तो बाहर ही देखना जानते हैं। तो जब हम परमात्मा को भी खोजते हैं, तो बाहर खोजते हैं। और जब हम मंदिर खोजते हैं, तो भी बाहर खोजते हैं।

परमात्मा तुम्हारे भीतर है; जो खोज रहा है, उसमें ही छिपा है; खोजने वाला ही है वही। तुम अपने चैतन्य को पहचानना शुरू करो, उसकी एक बूंद काफी है।

कहते हैं, कथा है कि जब गंगा उतरी पृथ्वी पर तो आधी ही उतरी, आधी स्वर्ग में ही रह गई। इसे तुम ऐसा समझो कि जब गंगा आई बाहर तो आधी ही आई, आधी भीतर रह गई। स्वर्ग यानी भीतर, स्वर्ग यानी स्वयं में डूब जाना, और नरक यानी दूसरे में भटक जाना।

पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक है ज्यां पाल सार्त्र। उसका एक वचन बड़ा महत्वपूर्ण हैः दि अदर इ.ज हेल। दूसरा नरक है।

स्वयं में है स्वर्ग। जब तक तुम दूसरे पर निर्भर हो, तब तक तुम नरक में रहोगे। जब तक तुम ऐसे स्वातंष्य, ऐसी निजता, ऐसी स्वायत्तता, ऐसा स्वयंपन न पा लो कि अब कोई निर्भरता न रही, अब किसी के सामने तुम भिखारी न रहे, अपने मालिक हो गए, स्वामी हुए, फिर स्वर्ग है। दूसरे के सामने हाथ फैलाए तो बड़ी दीनता है--वहां नरक ही मिल सकता है; वहां ज्यादा से ज्यादा तुम अपने भिक्षा के कटोरे में दुख ही जुटा पाओगे। वहां सुख का कोई संगीत न कभी हुआ है, न होगा।

भीतर आओ। भीतर की गंगा स्वर्ग की आधी गंगा है और उसकी एक बूंद काफी है। वह अमृत है।

बाहर की गंगा में कितने ही नहाओ, क्या होगा? मछलियां सदा गंगा में ही रह रही हैं, वे सभी स्वर्ग पहुंच गई होतीं; मगरमच्छ भी रह रहे हैं, वे भी स्वर्ग पहुंच गए होते; जानवर, पशु-पक्षी भी गंगा में स्नान कर रहे हैं, वे सब स्वर्ग पहुंच गए होते।

वे अभी नहीं पहुंचे हैं। तुम उनसे ज्यादा स्नान न कर पाओगे; तुम एक डुबकी लगा कर घर आ जाओगे। किसको धोखा दे रहे हो? आंख के अंधे हो--आंख होते अंधे हो। यह धोखा अपने को ही मत दो।

गंगा भीतर है। जो भी मूल्यवान है, भीतर है; जो भी निर्मूल्य है, बाहर है। कचरा खोजना हो तो बाहर, धन खोजना हो तो भीतर।

छठवां प्रश्नः आप कहते हैं, सत्य गुरु-प्रसाद से मिलता है। तब क्यों अहंकार के प्रयास को भी बढ़ावा देते हैं?

सत्य गुरु-प्रसाद से मिलता है, लेकिन गुरु-प्रसाद बिना प्रयास के न मिलेगा। गुरु-प्रसाद कहां पाओगे? परमात्मा प्रसाद-रूप मिलता है, गुरु तो खोजना पड़ेगा; गुरु के पास होने की योग्यता तो जुटानी पड़ेगी। प्रयास भी करना होगा, और ध्यान रखना होगा कि जो मिलता है परम, वह बिना प्रयास के मिलता है। यह तुम्हें विरोधाभासी लगेगा, लेकिन ये ही दो पंख हैं, ये ही दो पतवार हैं--प्रयास की और प्रसाद की। इन दोनों से ही यात्रा पूरी होती है।

दुनिया में दो तरह की भ्रांतियां हैं। कुछ लोग हैं, जो समझते हैं--प्रयास करने से ही मिल जाएगा। उन्हें परमात्मा कभी नहीं मिलता। क्योंकि उनका अहंकार कभी गिरता ही नहीं, प्रयास से और मजबूत होता है; द्वार-दरवाजे और बंद हो जाते हैं खुलने की जगह। और कुछ लोग हैं, जो मानते हैं--प्रयास से तो मिलता नहीं, प्रसाद से ही मिलेगा। वे बैठे ही रहते हैं; वे उठते ही नहीं, चलते ही नहीं। वे आलस्य में गंवा देते हैं। कुछ अहंकार में खो देते हैं, कुछ आलस्य में।

परमात्मा मिलता है अथक प्रयास से और फिर भी बिना प्रयास के।

तुम्हारी तरफ से तुम्हें पूरा करना है, तुम्हारी तरफ से कुछ भी न बचे जो अनकिया रह जाए। तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दो, तभी तुम प्रसाद पाने के अधिकारी हो। तब तुम कह सकते हो, अब मेरे पास कुछ भी नहीं जो मैं और लगाऊं--अब तो तेरी कृपा हो!

तो उसकी कृपा मांगने का अधिकार तुम्हें तब मिलेगा, जब तुम जो कर सकते थे वह तुमने पूरा कर दिया, अब तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। तुम मुफ्त कृपा न पा सकोगे। कृपा सबसे बड़ा बहुमूल्य हीरा है, वह मुफ्त नहीं मिलता। तुमने जब सब दांव पर लगा दिया, तुम्हारे पास कुछ भी न बचा, तब तुम्हारे हृदय से प्रार्थना उठ सकती है; तब तुम कह सकते हो, अब मेरे किए कुछ भी नहीं होता--अब तू देख!

इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।

उस क्षण में ही--कि देख, अब मुझसे कुछ भी नहीं होता, मैं सब कर चुका; अब मैंने कुछ बचा नहीं रखा है जो दांव पर लगाना है; मैंने अपने को पूरा उंडेल दिया, फिर भी कुछ नहीं होता--अब तेरी कृपा की जरूरत है। और तब कृपा निश्चित मिलती है।

परमात्मा तो मिलता सदा प्रसाद से है; क्योंकि तुम्हारा प्रयास तो बहुत छोटा है, परमात्मा बहुत बड़ा है। प्रयास से तुम उसे पा न सकोगे। लेकिन तुम्हारे प्रयास से तुम उस जगह के करीब आते हो, जहां बूंद राजी हो जाती है सागर कोझेलने को।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा, दुख में उसे जीओ, उसका कारण ढूंढो और जागो। जागे तो क्या?

सपना नहीं बचेगा; जो जाना है अब तक, वह कुछ भी नहीं बचेगा। और इसलिए कहना मुश्किल है कि जागे तो क्या; क्योंकि तुम्हारी भाषा तो सब नींद की है। अभी तो तुमसे जो भी कहा जा सकता है और तुम समझ सकते हो, वह सपने की भाषा में होगा। अगर मैं कहूं, सुख मिलेगा। तो तुम वही सुख समझोगे जो तुमने सपने में जाना है। अगर मैं कहूं, दुख न मिलेगा। तो तुम वही दुख जानोगे जो तुमने सपने में जाना है--सोचोगे, नहीं मिलेगा।

इसलिए बुद्धपुरुष चुप रह गए। जब भी किसी ने पूछा कि जाग कर क्या होगा? तो चुप रह गए; उन्होंने कहा--जागो और देखो। क्योंकि तुम्हारी भाषा में जो भी समझ में आ सके, उसके पार है बात। न तो तुम्हारा दुख है वहां, न तुम्हारा सुख है वहां; न तुम्हारी शांति है वहां, न तुम्हारी अशांति है वहां; न तुम्हारा संतोष, न तुम्हारा असंतोष; तुमने जो भी अब तक जाना है, वहां कुछ भी नहीं है। तुमने जोशास्त्र अब तक जाने हैं, वे भी वहां नहीं हैं। तुमने परमात्मा की जो प्रतिमा बनाई हैं, वे भी वहां नहीं हैं। तुमने मोक्ष और स्वर्ग की जो धारणाएं निर्मित की हैं, वे भी वहां नहीं हैं। तुम ही वहां नहीं हो, तुम्हारी धारणाएं वहां नहीं होंगी।

कुछ है अनिर्वचनीय, अव्याख्य--कहो उसे ब्रह्म, कहो उसे विष्णुपद, कहो उसे जिनपद, कहो उसे बुद्धत्व--लेकिन उन शब्दों से भी कुछ पता नहीं चलता। जागो तो ही पता चल सकता है।

गूंगे केरी सरकरा!

जागे क्या होगा? स्वाद मिलेगा--उसका, जिसका स्वाद जन्मों-जन्मों तक पाना चाहा है और मिला नहीं। भटके, बहुत राख से मुंह भरे, स्वाद नहीं मिला है। कोई उपाय नहीं उसे कहने का। अगर ऊब गए होओ जिसे तुम जीते रहे हो, तो जागो। अगर अभी थोड़ा और रस बाकी है, थोड़ी और एक करवट लेकर सो लो।

लेकिन एक न एक दिन जागना पड़ेगा, नींद शाश्वत नहीं हो सकती; और नींद परम विश्रांति भी नहीं हो सकती; और अंधकार परम सत्य का अनुभव भी नहीं हो सकता। देर-अबेर, तुम्हारे ऊपर निर्भर है। लेकिन जब जागोगे, तब पछताओगे बहुत कि पहले भी जाग सकते थे--हाथ के किनारे ही थी बात, जरा हाथ फैलाना था।

जीसस बार-बार कहते हैंः रिपेंट! दि किंगडम ऑफ गॉड इ.ज एट हैंड। पछताओ! परमात्मा का राज्य बहुत करीब है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

दुख का दर्पण

सूत्र

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढ़ाः ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः।।
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसंगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्।।
सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुंचति पापाचरणम्।।
अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः।।
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेत समाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्।
गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्।।

एक यूनानी पुराण कथा हैः नार्सीसस नाम का एक अति सुंदर युवा था। प्रतिध्वनि नाम की एक युवती के प्रेम में पड़ गया।

यह नाम भी विचारणीय है। व्यक्ति प्रतिध्वनियों के प्रेम में ही पड़ते हैं। जहां तुम्हें अपनी आवाज सुनाई पड़ती है, जहां तुम्हें अपने अहंकार को ही तृप्ति मिलती है, जहां तुम छुपे रूप में अपने को ही पाते हो, वहीं तुम्हारा प्रेम पैदा हो जाता है। तुम्हारा प्रेम तुम्हारे अहंकार का ही विस्तार है।

प्रतिध्वनि भी उसके प्रेम में पड़ गई।

प्रतिध्वनि तो प्रेम में पड़ेगी ही, क्योंकि वह तुम्हारी ही आवाज की गूंज है। उसके तुमसे अलग होने की न तो कोई संभावना है, न उपाय है।

पर एक दिन एक दुर्घटना हो गई। होनी ही थी। क्योंकि प्रतिध्वनियों के धोखे में जो पड़ जाए--अपनी ही आवाज को सुन कर उसके ही प्रेम में पड़ जाए--उसके जीवन में दुर्घटना निश्चित है।

नार्सीसस जंगल में गया था। एक झील में, शांत झील में--हवा की लहर भी न थी--उसने स्वयं के प्रतिबिंब को देखा। वह मोहित हो गया। झील तो दर्पण थी। अपना ही चेहरा देखा; पर पहली बार देखा; वह इतना प्यारा था। और अपना चेहरा किसको प्यारा नहीं है? अपना ही चेहरा लोगों को प्यारा है। सम्मोहित हो गया नार्सीसस--जैसे जड़ हो गया। मोह जड़ता लाता है। हिलने में भी डरने लगा कि हिला तो कहीं प्रतिबिंब टूट न जाए। आंखें ठगी रह गईं। वहां से हटा ही नहीं। प्रतिध्वनि प्रतीक्षा करती रही। और जब नार्सीसस न लौटा तो प्रेम मर गया।

प्रतिध्वनि तो, तुम्हारी ही आवाज गुनगुनाते रहो, तो ही गूंज सकती है। जब तुम्हारी ही आवाज न गूंजी--थोड़ी देर प्रतिध्वनि गूंजती रहेगी पहाड़ों में, फिर खो जाएगी। नार्सीसस न लौटा, न लौटा।

कहते हैं, नार्सीसस खड़ा-खड़ा उस झील के किनारे ही जड़ हो गया--एक पौधा हो गया। नार्सीसस नाम का एक पौधा होता है। वह पौधा झीलों के पास, झरनों के पास, नदियों के पास पाया जाता है। तुम्हें कहीं वह पौधा मिल जाए तो गौर से देखना, तुम उसे सदा पानी में झांकता हुआ पाओगे; वह अपने प्रतिबिंब को देखता है।

यह पुराण कथा बड़ी अदभुत है। अगर तुम अपने में ही ज्यादा मोहित हो गए तो चैतन्य खो जाता है; तब तुम आदमी नहीं रह जाते, पौधे हो जाते हो; तब तुम्हारी भीतर की मनुष्यता विलीन हो जाती है; तुम्हारे भीतर की आत्मा नकार हो जाती है--तुम वापस गिर जाते हो, तुम पतित हो जाते हो। पौधे का भी कोई स्वातंष्य है? मनुष्य स्वतंत्र है, चल सकता है। पौधा बंधा है; पैर नहीं हैं उसके पास, जड़ें हैं। यह नार्सीसस का पौधा हो जाना केवल इस बात की सूचना देता है कि जो व्यक्ति भी अहंकार के प्रतिबिंबों में उलझ जाएगा, उसके पैर भी नष्ट हो जाते हैं, जड़ें हो जाती हैं; वह रुक जाता है, उसकी गति ठहर जाती है; हिलने-डुलने की भी स्वतंत्रता खो जाती है।

और यही करीब-करीब सभी मनुष्यों के साथ होता है। उपनिषद कहते हैं, कोई पत्नी को थोड़े ही प्रेम करता है--पत्नी में, पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है; कोई बच्चों को थोड़े ही प्रेम करता है--बच्चों में, बच्चों के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। बच्चे भी दर्पण हैं, पत्नी भी दर्पण है। और हर मनुष्य नार्सीसस है।

ऐसी मनुष्य की जो चित्त-दशा है, इससे और परम स्वातंष्य के तो द्वार कैसे खुलेंगे! जो थोड़ी सी स्वतंत्रता है, वह भी नष्ट हो जाती है। पंख लगने चाहिए थे कि तुम उड़ सकते परमात्मा की तरफ। पंख तो दूर, पैर भी खो जाते हैं। वृक्ष के बंधन को तुम समझते हो? हिल भी नहीं सकता जहां खड़ा है वहां से। रत्ती भर भी हिलना चाहे तो स्वतंत्रता नहीं है, गति नहीं है; जहां खड़ा है, वहां मजबूरी में है। वहां से हट नहीं सकता। आदमी हिल सकता है, चल सकता है। पक्षी उड़ सकता है।

लेकिन शरीर कितना ही हिल-चल सकता हो, तो भी सीमा है--थक जाएगा, थकान ही बंधन हो जाएगी। और पक्षी कितना ही उड़ सकता हो--मीलों भी, तो भी मीलों में कहीं आकाश नापा जाता है? थक जाएगा, शरीर की सीमा है। और स्वतंत्रता तो तभी स्वतंत्रता है, जब असीम हो। आत्मा की स्वतंत्रता चाहिए। आत्मा में पंख लगें, आत्मा उड़ सके--कि फिर कोई सीमा न हो, कहीं कोई दीवाल न रोके, कहीं कोई जंजीरें न हों। उस घड़ी को ही हमने मोक्ष कहा है।

मोक्ष की तलाश है। सुख के नाम से तुम मोक्ष ही खोजते हो। इसीलिए तो हर सुख तुम्हारा दुख हो जाता है; क्योंकि जब तुम पाते हो कि मोक्ष नहीं मिला, उलटे बंधन मिले, तो सुख सुख नहीं मालूम होता। तुम धन भी खोजते हो तो मोक्ष के लिए। सोचते हो धन से स्वतंत्रता मिलेगी; थोड़े हाथ-पैर खुलेंगे; थोड़ा तुम चल-फिर सकोगे। गरीब का आकाश बड़ा छोटा है, अमीर का जरा बड़ा होगा; थोड़ी सुविधा होगी। लेकिन जब तुम धन पा लेते हो, तब तुम पाते हो--यह तो गरीब से भी छोटा आकाश हो गया। यह धन पंख नहीं बना, जंजीरें बन गया। अब इसे छोड़ कर तुम हट ही नहीं सकते।

कहानियां हैं कि अमीर मर जाते हैं, तो मर कर सांप होकर बैठ जाते हैं अपनी तिजोरियों पर। जिंदा हालत में भी वे सांप ही होकर बैठे रहते हैं। मरने के बाद क्या होता है, इसमें जाने की बहुत जरूरत नहीं है। जिसके पास धन है--धन कहीं खो न जाए, इस चिंता से भयातुर रहता है। बैठा ही रहता है, पहरा देता रहता है।

भोगना तो असंभव, मालिक भी नहीं रह जाता। करीब-करीब पहरेदार हो जाता है। तुम ऐसे धनी को मुश्किल से पाओगे जो अपने धन का मालिक है। गरीब चाहे अपनी निर्धनता का मालिक भी हो, लेकिन अमीर अपने धन का मालिक नहीं है।

धन को भी आदमी--गौर से खोजोगे तो--स्वतंत्रता के लिए ही चाहता है। पद को भी स्वतंत्रता के लिए ही चाहता है। पद होगा, शक्ति होगी, सामर्थ्य होगी, तो इतने बंधन न रह जाएंगे; तुम कुछ बंधन तोड़ सकोगे; तुम थोड़े अज्ञात और अनजान में भी प्रवेश कर सकोगे।

यदि मनुष्य की चेतना में ठीक-ठीक खोजा जाए तो मोक्ष का ही स्वर बजता है; वह हर तरफ से मुक्ति चाहता है। इसलिए जहां भी बंधन बनने लगते हैं, वहीं बेचैनी हो जाती है।

तुम प्रेम करते हो इसी आशा में कि प्रेम आकाश बनेगा; तुम उड़ सकोगे, कोई सहारा बनेगा तुम्हारी स्वतंत्रता में। लेकिन जब तुम प्रेम में पड़ते हो, तो तुम पाते हो--उड़ना तो दूर रहा, हिलना भी मुश्किल हो गया। दूसरे से सहारे की आशा की थी--सहारा तो दूर रहा, दूसरे ने पत्थर बांध दिए तुम्हारे गले में। प्रेम बंधन हो जाता है--होते ही। सपनों में होता है स्वतंत्रता, असलियत में हो जाता है बंधन।

खलील जिब्रान ने अपनी अनूठी किताब प्रॉफेट में कहा है। एक व्यक्ति ने पूछा, और हमें प्रेम के संबंध में कुछ बताओ! तो खलील जिब्रान की किताब के नायक अलमुस्तफा ने कहा, तुम एक-दूसरे को प्रेम करना, लेकिन एक-दूसरे के मालिक मत बनना। तुम एक-दूसरे के पास होना, लेकिन बहुत पास नहीं। तुम ऐसे ही होना, जैसे मंदिरों के खंभे होते हैं--एक ही छप्पर को सम्हालते हैं, लेकिन फिर भी दूर-दूर होते हैं। अगर मंदिर के खंभे बहुत पास आ जाएं तो मंदिर गिर जाएगा। प्रेमी से भी थोड़े दूर होना, ताकि दोनों के बीच में स्वतंत्र आकाश हो। अगर बीच का स्वतंत्र आकाश बिल्कुल ही खो जाए तो तुम एक-दूसरे के ऊपर अतिक्रमण बन जाओगे, आक्रमण बन जाओगे।

मगर ये सब बातें तो किताबों में हैं। आदमी के जीवन में तो जिससे प्रेम होता है, हम उससे उसकी सारी स्वतंत्रता छीन लेना चाहते हैं। क्योंकि प्रेम होते ही भय होता है कि कहीं यह प्रेम किसी और की तरफ न मुड़ जाए; जो प्रेम मुझे मिला है, कहीं कोई इसका और मालिक न हो जाए।

धन मिलता है, तो धन खो न जाए! प्रेम मिलता है, तो प्रेम न खो जाए! जो मिलता है, उसी के खोने का भय हो जाता है। उस भय के कारण स्वतंत्रता असंभव हो जाती है।

भय के साथ कैसी स्वतंत्रता? निर्भय में ही स्वतंत्रता का फूल खिलता है। और प्रत्येक व्यक्ति के प्राण बस एक ही बात के लिए रोते हैं, एक ही बात के लिए गुनगुनाते हैं, एक ही बात के लिए खोजते हैं--वह है मोक्ष। जहां तुम्हें मुक्ति मिलेगी, वहीं तुम आह्लादित होने लगोगे; जहां तुम्हें बंधन मिलेगा, वहीं तुम उदास होने लगोगे।

अगर तुम इतने उदास हो, तो कारण साफ है--चाहा था मोक्ष, मिलीं जंजीरें; मांगा था आकाश, मिला कारागृह; खोजते थे पंख, पैर भी कट गए; चाहते थे मुक्ति, जो पास था वह भी दांव पर लग गया और खो गया; और जिसकी आशा की थी, उसके कहीं दूर भी कोई आसार नजर नहीं आते--इसलिए तुम उदास हो।

परमात्मा शब्द का अगर कोई भी अर्थ हो सकता है तो मोक्ष। इसलिए परम ज्ञानियों ने परमात्मा शब्द का उपयोग भी नहीं किया। महावीर मोक्ष की बात करते हैं, परमात्मा की नहीं। क्योंकि परमात्मा शब्द के साथ बड़ी भ्रांतियां जुड़ गई हैं; उसके साथ भी बड़े कारागृह जुड़ गए हैं। बुद्ध निर्वाण की बात करते हैं, परमात्मा की नहीं; जान कर ही। क्योंकि परमात्मा के नाम पर भी हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं--ये नये बंधन खड़े हो गए

हैं। हिंदू हिंदू होने से बंधा है, मुसलमान मुसलमान होने से बंधा है--कोई मस्जिद से बंधा है, कोई मंदिर से बंधा है। और धर्म तो मुक्ति है।

इसलिए धर्म का न तो कोई मंदिर हो सकता, न कोई मस्जिद हो सकती।

और जिस दिन तुम धार्मिक हो जाओगे, उस दिन मंदिर में भी तुम्हें वही दिखाई पड़ेगा, मस्जिद में भी तुम्हें वही दिखाई पड़ेगा। तब तुम कभी मस्जिद में भी प्रार्थना कर लोगे, कभी मंदिर में भी प्रार्थना कर लोगे। वस्तुतः मंदिर और मस्जिद तक जाने की जरूरत न रहेगी, क्योंकि तुम्हारे घर में भी वही दिखाई पड़ेगा; तुम जहां देखोगे, वही दिखाई पड़ेगा।

धर्म एक परम स्वातंष्य है। इस बात को ख्याल में रखें, तोशंकर के ये अंतिम सूत्र समझ में आ सकेंगे।

"काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्याग कर स्वयं पर ध्यान करो।"

ये चार बंधन हैं, जिनसे तुम्हारा मोक्ष छिन गया है, जिनसे तुम्हारा मोक्ष दब गया है--काम, क्रोध, लोभ और मोह। इन चार को भी अगर संक्षिप्त कर लो तो एक ही बचता है--काम। क्योंकि जहां काम होता है, वहीं मोह पैदा होता है; जहां मोह पैदा होता है, वहीं लोभ पैदा होता है; और जहां लोभ पैदा होता है, अगर इसमें कोई बाधा डाले, तो उसके प्रति क्रोध पैदा होता है। मूल बीमारी तो काम है।

काम का अर्थ समझ लो। काम का अर्थ हैः दूसरे से सुख मिल सकता है, इसकी आशा।

काम का अर्थ हैः मेरा सुख मेरे बाहर है। और ध्यान का अर्थ हैः मेरा सुख मेरे भीतर है।

बस, अगर ये दो परिभाषाएं ठीक से समझ में आ जाएं, तो तुम्हारी यात्रा बड़ी सुगम हो जाएगी। काम का अर्थ हैः मेरा सुख मुझसे बाहर है--किसी दूसरे में है; कोई दूसरा देगा तो मुझे मिलेगा; मैं अकेला सुख न पा सकूंगा; मेरे अकेले होने में दुख है और दूसरे के संग-साथ में सुख है।

इसीलिए तो तुम अकेले नहीं होना चाहते। जरा भी अकेले हुए कि तुम डरे; जरा भी अकेले हुए कि तुम बेचैन; जरा भी अकेले हुए कि तुमने अपने को भरा, कूड़ा-करकट कुछ भी मिले। जिस अखबार को तुम सुबह से तीन दफे पढ़ चुके हो, उसी को फिर पढ़ने लगे। जरा अकेले हुए कि कुछ तो भरो, खालीपन अखरता है। रेडियो चला दो, शोरगुल ही होगा, लेकिन ऐसा तो लगेगा कि अकेले नहीं हो। ताश खेलो, होटल में बैठ जाओ, क्लब चले जाओ--कहीं भी, किसी भांति... ।

एक युवक मेरे पास तीन दिन पहले आया। उसने कहा कि जैसे-जैसे ध्यान कर रहा हूं, वैसे-वैसे अकेलेपन से डर और बढ़ रहा है। और कभी-कभी तो ऐसी घड़ी आ जाती है कि मैं एकदम भागता हूं घर से निकल कर और बाजार में चला जाता हूं। यद्यपि कुछ लेना-देना नहीं है, लेकिन बाजार में भीड़-भाड़ में घूमते हुए ऐसा नहीं लगता कि अकेला हूं। घड़ी, दो घड़ी घूम-फिर कर लौट आता हूं, हलका हो जाता हूं।

तुम जिसको अपने जीवन की व्यस्तता कहते हो, उसमें से बहुत सी व्यस्तता तो जरूरी नहीं है; उसमें से बहुत सी व्यस्तता तो तुम काट सकते हो; उसमें से बहुत सा समय तो विश्राम का हो सकता है। लेकिन मामला ऐसा नहीं है कि काम जरूरी है, मामला ऐसा है कि बिना काम के तुम अकेले हो जाते हो।

पश्चिम में मनोवैज्ञानिक एक नई चिंता से भर गए हैं। वह चिंता पहली दफा मनुष्य-जाति के इतिहास में आई है। और वह चिंता यह है कि इस सदी के पूरे होते-होते, कम से कम पश्चिम के कुछ मुल्कों में--अमेरिका में, स्वीडन में--इतनी सुख-सुविधा हो जाएगी और सारा काम करीब-करीब स्वचालित यंत्रों से होने लगेगा कि आदमी के पास बहुत समय बचेगा। तो मनोवैज्ञानिकों को बड़ा खतरा है कि आदमी करेगा क्या? क्योंकि अभी खाली होने की योग्यता आदमी की नहीं है; अभी चुप बैठने की क्षमता आदमी की नहीं है।

थोड़ा सोचो--सारा काम यंत्र कर देता हो और तुम्हारे पास कुछ काम न बचे! अभी यद्यपि तुम रोते हो कि काम ही काम है, कोई फुरसत नहीं; अभी तुम सोचते भी हो कि फुरसत मिल जाए तो तुम कुछ विश्राम कर लो। यद्यपि अभी भी जब फुरसत मिलती है, तुम विश्राम करते नहीं। रविवार की छुट्टी काटे नहीं कटती। रविवार की छुट्टी काटने को तुम कितने उपाय करते हो? पिकनिक को चले। कोई उपद्रव न था, तो उपद्रव बांधा। घर नहीं बैठे रह सकते; छुट्टी काटे नहीं कटती। रविवार के दिन तुम सोमवार की राह देखने लगते हो--कब सुबह हो, कब तुम अपने काम में लगो।

थोड़ा सोचो कि पूरा जीवन रविवार की छुट्टी हो। तुम बच सकोगे उतने विश्राम में? तुम झेल सकोगे उस शांति को, उस एकांत को? नहीं, तुम कुछ न कुछ खतरे कर लोगे; तुम कुछ झंझटें खड़ी करोगे; तुम कुछ उपाय करोगे, जिसमें तुम उलझ जाओ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हमें कुछ ऐसे काम खोजने पड़ेंगे, जिनकी कोई जरूरत तो न होगी, लेकिन लोग जो खाली नहीं बैठ सकते, उनको हमें देना पड़ेंगे। और एक बड़ी अनूठी बात ख्याल में आनी शुरू हुई है और वह यह कि जो लोग बिल्कुल खाली बैठने को राजी होंगे, उनको सरकार तनख्वाह देगी कि वे खाली बैठने के लिए राजी हैं। जो काम करेंगे, उनको तनख्वाह नहीं मिलेगी; क्योंकि काम भी लो और तनख्वाह भी लो--दोनों एक साथ!

यह आज हमें अजीब लगता है। और कम से कम पूरब के मुल्कों में तो बहुत अजीब लगता है, जहां गरीबी है, जीवन बड़ा दुविधापूर्ण है। लेकिन पश्चिम के मुल्कों में यह घड़ी करीब आ रही है। बीस वर्षों के भीतर, इस सदी के पूरा होते-होते, जो लोग खाली बैठने को राजी होंगे, उनको सज्जन कहा जाएगा; जो नहीं बैठने को राजी होंगे, वे दुर्जन समझे जाएंगे।

खाली लेकिन वही बैठ सकता है, जिसे थोड़ा ध्यान का रस लगा हो। इसलिए आकस्मिक नहीं है कि पश्चिम में ध्यान की इतनी तीव्र जिज्ञासा पैदा हुई है। अकारण कुछ भी नहीं होता; जब कोई चीज घटने के करीब होती है, तो चेतना उस तरफ उत्सुक होने लगती है।

अगर तुम यहां मेरे पास पश्चिम से दूर-दूर से आते लोगों को देखते हो तो आकस्मिक नहीं है। बड़ी तीव्र आकांक्षा पैदा हुई है कि स्वयं के साथ अकेले होने का सुख क्या है, उसे जानना जरूरी है। क्योंकि दूसरे के साथ न तो सुख कभी मिला है, न मिल सकता है; दूसरे के साथ केवल दुख मिला है। लेकिन मजबूरी यह है कि अकेले होने की हम कला नहीं जानते। इसलिए दूसरे के साथ दुख मिले, नरक मिले, तो भी कोई उपाय नहीं है; रहना तो दूसरे के साथ ही पड़ेगा; क्योंकि अकेले होने में और भी महानरक हो जाता है। तो अकेले के नरक से हम सदा दूसरे का नरक चुन लेते हैं--कम से कम दूसरा तो मौजूद है, नरक ही सही। थोड़ी बातचीत तो हो लेती है--झगड़ा ही सही।

तुमने कभी ख्याल किया कि अगर तुम खाली छोड़ दिए जाओ, तो तुम कहोगे, इससे बेहतर दुश्मन के साथ होना। अपने साथ होने से भी बेहतर दुश्मन के साथ होना लगता है। झगड़ा तो होगा, गाली-गलौज तो होगी; कुछ जीवन तो मालूम होगा। ये मुर्दे की तरह बैठे हैं! ऐसे तो बिखर जाएंगे, ऐसे तो फिसल जाएगा मकान। कुछ करो, उठो! लोग अपने कमरे में ही उठ कर कुछ भी करने लगते हैं।

मैं ट्रेन में बहुत दिनों तक यात्रा करता था। तो अक्सर ऐसा हो जाता कि कमरे में मैं और दूसरा आदमी अकेला होता। तो मैं देखता रहता कि दूसरा आदमी क्या कर रहा है। मैं उससे बोलता भी नहीं; क्योंकि मेरे बोलने से उसकी असलियत का पता ही नहीं चलेगा। बोलने की तो वह इच्छा में ही है; वह कई दफे कोशिश भी

करता बोलने की--आप कहां जा रहे हैं? मैं हां-हूं करके जवाब देकर फिर अपनी आंख बंद कर लेता। जब वह थोड़ी देर में समझ जाता कि यह आदमी बातचीत के योग्य नहीं है, तब वह उसका असली रूप प्रकट होता। वह कभी अपना सूटकेस खोलेगा--मैं देख रहा हूं कि कोई काम नहीं है उसको--फिर बंद कर देगा, फिर जमा लेगा; खिड़की खोलेगा, बंद करेगा। बेचैनी है! पंखा चलाएगा, बंद कर देगा; बाहर हो आएगा, चाय ले आएगा। हर एक स्टेशन पर उतर कर भजिए खरीद लेगा। कुछ भी कर रहा है! नौकर को बुला लेगा घंटी बजा कर, उसी से बातचीत करने लगेगा।

लेकिन उसकी बेचैनी मैं समझता हूं। ये चौबीस घंटे उसे अकेले होने को मिले हैं, ये काट रहे हैं, ये कांटे की तरह चुभ रहे हैं; इनकोझेलना मुश्किल है। यद्यपि, अगर तुम उससे पूछो, तो वह कहेगा कि कहां फुरसत है! कभी ध्यान भी करना चाहता हूं तो फुरसत नहीं है। अब ये चौबीस घंटे मिले थे! चौबीस घंटे में तो आदमी महावीर हो जाए, अगर चौबीस घंटे एक स्वर से शांत हो जाए। चौबीस घंटे तो मैं ज्यादा कह रहा हूं, जैनी नाराज न हों, क्योंकि महावीर ने तो कहा है, अड़तालीस मिनट में। मैं तो चौबीस घंटे कह रहा हूं तुम्हारी सामर्थ्य सोच कर। महावीर ने तो कहा है, अड़तालीस मिनट आदमी परमशून्य हो जाए, रम जाए--बस, इससे ज्यादा की जरूरत नहीं है--परमज्ञान उपलब्ध हो जाएगा। अड़तालीस मिनट! पूरा घंटा भी नहीं!

लेकिन अड़तालीस सेकेंड भी मुश्किल है, अड़तालीस मिनट तो दूर। अड़तालीस सेकेंड भी तुम एक स्वर से शांत न रह सकोगे, तुम हजार व्याघात पैदा कर लोगे।

काम का अर्थ हैः दूसरे में सुख।

यद्यपि मिलता कभी नहीं। यही तो मनुष्य की मूढ़ता है। शंकर ऐसे ही तुमको मूढ़ नहीं कहे जाते, कारण से कहते हैं; खूब सोच-विचार कर कहते हैं। जिस रेत से तेल नहीं निकला, उससे तुम निकालते ही चले जाते हो। और ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें पता नहीं है। अगर पता न होता तो तुम अज्ञानी थे। अज्ञानी माफ किया जा सकता है। मूढ़ को माफ नहीं किया जा सकता। मूढ़ वह है, जिसे पता भी है और फिर भी निकाल रहा है। क्योंकि करे क्या? रेत ही है, और कुछ दूसरा स्रोत पता नहीं, जहां से तेल निकाला जा सके। खाली भी नहीं बैठा रह सकता! तो रेत से ही निकाल रहा है।

तुम जरा गौर करो अपने जीवन पर। यह मूढ़ता की बात तुमसे ही कही गई है। इसे थोड़ा विचार करो! तुमने कितनी बार कामवासना नहीं की; कितनी बार तुम कामातुर नहीं हुए; कितनी बार मन काम के मेघों से आच्छन्न नहीं हुआ--कभी वर्षा हुई? कभी तृप्ति हुई? कभी संतोष फला? कभी सुख आया? लेकिन तुम सोचने में भी डरते हो कि अगर इस पर सोचेंगे तो खतरा है, फिर करेंगे क्या? यही तो एक उलझाव है; इससे ही तो अपने को किसी तरह उलझाए हैं। किसी तरह जीवन को काटे जा रहे हैं। अगर यह खेल भी बंद हो गया, तो फिर हाथ खाली हैं। कामवासना ही पूरा खेल है, पूरा संसार है। उसी में तुम उलझे, उसी में तुम दबे, उसी में तुम बोझिल चलते चले जाते हो। और जानते हुए कि यह राह कहीं ले नहीं जाएगी। कभी नहीं ले गई है। लेकिन मन धोखा दिए जाता है। मन कहता हैः अभी तक न ले गई हो, लेकिन हो सकता है कल ले जाए! किसी को न ले गई हो, हो सकता है मुझे ले जाए! हो सकता है मैं अपवाद होऊं! ऐसा प्रत्येक व्यक्ति सोचता है।

कहते हैं, अरब में एक कहावत है कि परमात्मा जब भी किसी को बनाता है, तो उसके कान में एक मजाक कर देता है। उसके कान में कह देता हैः तुझे मैंने अपवाद बनाया; तुझे मैंने खास बनाया; और सब ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे हैं, तुझे मैंने विशेष बनाया है। सभी को कह देता है लेकिन, तकलीफ यह है। जिसको भी बना कर भेजता है,

उसी के कान में मंत्र दे देता है। और सभी इसी ख्याल में चलते हैं कि और सब ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे हैं, मैं कुछ खास हूं।

अब परमात्मा ही मजाक कर दे तो बड़ा मुश्किल हो जाता है। हर एक को याद है कि चलते वक्त कहा था उसने। हालांकि तुम किसी से कहते नहीं; कहो तो दूसरे हंसते हैं, क्योंकि उनको भी उसने कहा है। वे कहते हैं, तुमको कैसे कह सकता है? इसलिए तुम भी किसी से नहीं कहते, दूसरे भी तुमसे नहीं कहते। तुम भी बताने की कोशिश करते हो बिना बताए, दूसरा भी बताने की कोशिश करता है बिना बताए। जो जोर-जोर से चिल्ला कर कहने लगते हैं, उनको तुम पागलखाने में बंद कर देते हो। लेकिन हर एक के मन में एक भ्रांति है कि मैं अपवाद हो सकता हूं।

बुद्धों ने कहा--नहीं मिला सुख; कामवासना के मरुस्थल के मरुस्थल खोज डाले, एक मरूद्यान भी न पाया। महावीरों ने कहा, शंकर कहते हैं कि बड़ी यात्रा की; मरूद्यान तो दूर, खजूर की छाया भी न मिली। खजूर की भी कोई छाया होती है? लेकिन वह भी न मिली।

लेकिन तुम सोचे चले जाते हो कि हो सकता है इन्हें न मिली हो; बेचारे चूक गए हों, न खोज सके हों, नक्शा हाथ में न रहा हो, बुद्धिमान न रहे हों, भटक गए हों। और फिर कौन जाने, अक्सर ऐसा भी हो जाता है कि जिनको नहीं मिलती, वे दूसरों को भी समझाने लगते हैं कि तुम्हें भी न मिलेगी। और हो सकता है अंगूर खट्टे रहे हों; पा न सके हों खुद, सामर्थ्य न रही हो, इसलिए सब अंगूर खट्टे हैं, ऐसा कह कर उनको भी चुकाने की कोशिश कर रहे हों जो पा सकते हैं। कम से कम मैं तो पा ही सकता हूं। तुम्हारे मन में ऐसी भ्रांतियों का जाल है। तो फिर काम से छुटकारा न हो सकेगा।

और जो काम से न जागा, वह राम में न जागा; जो काम से जागा, वही राम में जागा।

राम की याद करने से कुछ भी न होगा; क्योंकि मन अगर काम से भरा हो तो राम का वह उच्चार भी गंदा हो जाएगा। हां, काम से मन खाली हो जाए तो राम को पुकारना भी मत, तो भी पुकार उठेगी; तुम्हारा रोआं-रोआं कहेगा, तुम्हें कहने की जरूरत न रहेगी--भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्!

यह कोई ऐसी बात नहीं, जिसको तुम कर लोगे। यह कोई तुम्हारे कंठ की बात नहीं है--न तुम्हारे ओंठों की, न तुम्हारी जिह्वा की। यह तो जब तुम्हारे भीतर से काम गिर जाएगा, तो उठेगी। यह तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे रोएं-रोएं से यही सुगंध उठ रही है। यह उठती है जब काम गिर जाता है; क्योंकि काम में जो ऊर्जा संलग्न थी, वह मुक्त हो जाती है। वही राम की तरफ आरोहण बन जाती है।

काम है दूसरे में सुख की भ्रांत आशा; राम है अपने में सुख को पा लेना। और वही एकमात्र पाने की जगह है। जिन्होंने भी कभी पाया, वैसे ही पाया; जिन्होंने भी गंवाया, तुम्हारे ढंग से गंवाया।

इसलिए शंकर कहते हैं--मूढ़, चेतो! जागो!

लेकिन अपने में मूढ़ को देखना बड़ा कठिन है।

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में नाटक हो रहा था। नाटक में एक मूर्ख की भी जरूरत थी। तो गांव में जो एक नेताजी थे, उनको लोगों ने चुना। नेताजी ऐसे जन्मजात मूर्ख थे। न होते तो नेताजी न होते। अब कोई नेता होने पड़ा है जिसे थोड़ी बुद्धि हो? नाहक गाली खाने-खवाने को, जूता फिंकवाने को, सड़े टमाटर झेलने को--किसकी मर्जी है? किसको प्रयोजन है? मगर जूता फेंको कि सड़े टमाटर फेंको कि गाली-गलौज बको--नेता जमे ही रहते थे। ऐसे ही तो वे नेताजी हो गए थे, ज्यादा दिन तक टिक गए थे। जिनमें थोड़ी अकल थी, वे भाग भी गए।

लोगों ने उन्हीं से प्रार्थना की। नेताजी ने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि मुझे मूर्ख का पार्ट अदा करना है नाटक में, तुम मुझे बताओ कि किस भांति से यह पार्ट कुशलता से अदा किया जा सकता है?

नसरुद्दीन ने नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि आप जैसे हो, बस ऐसे ही स्टेज पर चले जाओ; इसमें जरा भी फर्क की जरूरत नहीं है। फर्क करने से गड़बड़ हो जाएगी।

नेता तो बहुत नाराज हो गया। उसने कहा कि मुझे पता है और तुम गांव में भी अफवाह करते हो, लोगों को बात करते हो कि मैं नंबर एक का मूर्ख हूं। अब आज मेरे सामने ही बात जाहिर हो गई। धमकाया बहुत।

नसरुद्दीन ने कहा, आपसे सच कहता हूं, अल्लाह की कसम, नंबर पहला मैंने कभी नहीं कहा। मूर्ख कहा हो भला, नंबर पहला मैंने कभी नहीं कहा। क्योंकि तुम तो, नंबर पहला अगर वहां भी होने का मौका हो, तो चूकोगे नहीं।

नंबर पहला--वही तो नेता की दौड़ है।

तुम में सारी दुनिया जो देख ले, वह भी तुम स्वयं नहीं देख पाते! आंख के अंधे! सबको जो पहचान में आ जाए, वह भी तुम्हारी पहचान में नहीं आता। इससे बड़ी मूढ़ता और क्या हो सकती है इस संसार में कि जिन-जिन अनुभवों से तुम हजारों बार गुजर चुके हो और एक भी बार सुख नहीं पाया, उन्हीं-उन्हीं की फिर आकांक्षा करने लगते हो! कब जागोगे? क्योंकि काम में जो सोया है, वही सोया है। और जो काम से जागा है, वही जागा है। और काम से जागो तो ही ध्यान की यात्रा शुरू होती है; क्योंकि ध्यान का अर्थ है, स्वयं में है सुख। दूसरे में हारो, बहुत खोज चुके--पछताओ; वापस घर आओ।

"काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्याग कर स्वयं पर ध्यान करो।"

शंकर जान कर कहते हैं, इन चार को छोड़ दो तो ही स्वयं पर ध्यान हो सकेगा।

काम अगर छूट जाए--दूसरे में सुख है, यह बात अगर छूट जाए--बस इतनी सी ही बात है, इतने पर सब दारोमदार है, इतना दिख जाए कि दूसरे में सुख नहीं है, सब हो गया। क्रांति घटित हो गई। क्योंकि जैसे ही दूसरे में सुख नहीं है, तुम दूसरे का मोह न करोगे। अब मोह क्या करना है? मोह तो हम उस चीज का करते हैं, जिसमें सुख की आशा है; उसको सम्हालते हैं, बचाते हैं, सुरक्षा करते हैं, कहीं खो न जाए, कहीं मिट न जाए, कहीं कोई छीन न ले। मोह तो हम उसी का करते हैं जहां हमें आशा है--कल सुख मिलेगा। कल तक नहीं मिला, आज तक नहीं मिला--कल मिलेगा। इसलिए कल के लिए बचा कर रखते हैं। आज तक का अनुभव विपरीत है, लेकिन उस अनुभव से हम जागते नहीं। हम कहते हैंः कल की कौन देख आया! शायद कल मिले।

और अगर मोह न हो तो लोभ का क्या सवाल है? लोभ का अर्थ हैः जिसमें सुख मिलने की तुम्हारी प्रतीति है, उसमें और-और सुख मिले। अगर दस रुपये तुम्हारे पास हैं, तो हजार रुपये हों--यह लोभ है। अगर एक मकान तुम्हारे पास है, तो दस मकान हों--यह लोभ है। लोभ का अर्थ हैः जिसमें सुख मिला, उसमें गुणनफल करने की आकांक्षा। मोह का अर्थ हैः जिसमें मिला, उसे पकड़ लेने की, परिग्रह करने की, आसक्ति बांधने की। लोभ का अर्थ हैः उसमें गुणनफल कर लेने की आकांक्षा। लेकिन जिसमें मिला ही नहीं, उसका तुम गुणनफल क्यों करना चाहोगे? कोई कारण नहीं है।

और क्रोध का क्या अर्थ है? जिसमें तुम्हें दिखाई पड़ता है सुख मिलेगा, उसमें अगर कोई बाधा डालता हो तो क्रोध पैदा होता है। तुम धन कमाने जा रहे हो, कोई बीच में आड़े आ जाए, तो क्रोध पैदा होता है। तुम एक स्त्री से विवाह करने जा रहे हो और दूसरा आदमी अड़ंगे डालने लगे, तो क्रोध पैदा होता है। तुम चुनाव जीतने के

करीब थे कि एक दूसरे सज्जन खड़े हो गए झंडा लेकर, तो क्रोध पैदा होता है। क्रोध का अर्थ हैः तुम्हारी कामना में जब भी कोई अवरोध डालता है।

तो क्रोध, लोभ और मोह--छायाएं हैं काम की।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, क्रोध छोड़ना है! मैं कहता हूं, यह तुम पूछो ही मत; यह बात ही गलत है। कोई पूछता है, लोभ छोड़ना है! कोई पूछता है, मोह कैसे छूटे? लेकिन मुश्किल से ही कोई पूछता है कि काम से कैसे मुक्ति हो। इसका अर्थ है कि तुमने अभी जीवन की ठीक समस्या भी नहीं पकड़ी; समाधान तो बहुत दूर है, अभी निदान भी नहीं हुआ।

क्रोध दूर करने को बहुत लोग आते हैं, क्योंकि क्रोध से कष्ट मिलता है। कष्ट भी मिलता है, झगड़ा-झांसा खड़ा होता है, दुश्मन पैदा हो जाते हैं, मुसीबतें और बढ़ती हैं। क्रोध से उपद्रव होता है, साफ दिखाई पड़ता है। लेकिन यह तो ऐसे है, जैसे कोई छाया को मिटाना चाहे। तुम चलोगे धूप में तो छाया कैसे मिटेगी? तुम मुझसे आकर पूछते हो--चलें तो धूप में, लेकिन छाया कैसे मिटे?

मैं क्या करूं? कोई भी कुछ नहीं कर सकता। हम कहेंगे, धूप में मत चलो; तुम कहोगे, यह तो असंभव है। कोई ऐसी तरकीब बताएं कि चलें तो धूप में, और छाया मिट जाए। जीएं तो संसार में और कामना में, और क्रोध न हो। क्योंकि क्रोध से कई दफे बनती कामना में बिगाड़ पड़ जाता है; पास आता सुख दूर हट जाता है। कई दफे क्रोध के कारण तुम अपना बना-बनाया घर गिरा लेते हो; जरा सी बात गलत निकल जाती है मुंह से, सब गड़बड़ हो जाता है। तो तुम चाहते हो कि क्रोध से छुटकारा मिल जाए! वह भी तुम इसीलिए चाहते हो, ताकि कामवासना को पूरा करने में और भी ज्यादा कुशलता आ जाए।

लेकिन क्रोध तो केवल काम की छाया है। इसलिए शंकर ने पहले कहा, काम; नंबर दो पर कहा, क्रोध। क्योंकि जिसके भीतर काम है, उसके भीतर क्रोध तैयार होने लगा, छाया बनने लगी। जहां तुम्हारे भीतर काम उठा, प्रतिस्पर्धा उठी, प्रतियोगिता उठी, शत्रु पैदा हो गए।

तुम धन पाना चाहते हो, सारी दुनिया धन पाना चाहती है। तुमने जिस दिन धन पाने की आकांक्षा की, उन सबके तुम दुश्मन हो गए उसी दिन--उन सबके--जो सब धन पाने की आकांक्षा करते हैं। चाहे देर लगे फल आने में, लेकिन दुश्मनी का बीज आरोपित हो गया। काम के पीछे ही है क्रोध, तत्क्षण। चाहे क्रोध आने में वर्षों लग जाएं, लेकिन यात्रा शुरू हो गई। तुमने कुछ मांगा, तुमने कुछ चाहा, क्रोध आ गया।

तुम कहोगे, अभी तो पता भी नहीं चलता क्रोध का कुछ। अभी तो हम बिल्कुल प्रसन्नचित्त बैठे हैं। राह से एक कार निकली और हमने सोचा कि यह कार हमें मिल जाए। अभी कौन सी गड़बड़ है? न कोई झगड़ा, न झांसा, न किसी से कहा। अभी क्रोध कैसे आ गया?

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, क्रोध आ गया। क्योंकि वे सब जो तुम्हारे मार्ग में अवरोध बनेंगे, उनके प्रति क्रोध की शुरुआत हो गई; तुम्हारे अचेतन में क्रोध की छाया बनने लगी। जल्दी ही चेतन तक प्रवेश करेगी। क्योंकि यह कार पाने के लिए प्रतिस्पर्धा करनी होगी, संघर्ष करना होगा, दुश्मनी मोल लेनी होगी; दुश्मनी तुमने ले ही ली।

जीवन में अगर तुमने कोई ऐसी चीज चाही, जिसको चाहने से दूसरों के जीवन से वह छिनेगी, तो क्रोध पैदा हो गया।

अगर तुमने कोई ऐसी चीज जीवन में चाही, जिसको चाहने से और तुम्हें मिलने से किसी का कुछ भी न छिनेगा, तो क्रोध पैदा न हुआ।

लेकिन वैसी तो सिर्फ एक ही चीज है--वही परमात्मा है--भज गोविन्दम्। उसको तुम कितना ही पा लो, तुम किसी का छीनते नहीं। मैं गोविन्द को पा लूं, तो तुम्हारे गोविन्द के पाने में कोई कमी नहीं होगी। बल्कि बड़े मजे की बात है कि मैं गोविन्द को पा लूं, तो तुम्हारे गोविन्द के पाने में सहारा और साथ मिलेगा। मैं गोविन्द को पा लूं, तो तुम जल्दी गोविन्द को पा सकोगे; क्योंकि एक ने भी पा लिया, तो द्वार खुल गया; एक ने भी पा लिया, तो सीढ़ी लग गई; एक ने भी पा लिया, तो तुमने भी पा ही लिया--थोड़े से प्रयास की बात है--भरोसा आ गया, श्रद्धा आ गई, आश्वासन आ गया। और अगर एक ने भी पा लिया, तो वह तुम्हें भी मार्ग दे सकेगा। उसको ही तो हम गुरु कहते हैं जिसने पा लिया। वह तुम्हें भी कह सकेगा, यह रहा मार्ग। वह तुम्हें भी थोड़े इशारे दे सकेगा।

एक परमात्मा ही ऐसा है, जिसे पाने से उसकी मात्रा में कोई कमी नहीं पड़ती, बल्कि मात्रा ज्यादा उपलब्ध हो जाती है। एक परमात्मा ही ऐसा है, जो अर्थशास्त्र का विषय नहीं है। एक परमात्मा ही ऐसा है, जिसे कोई पा ले, तो उसके कारण कोई गरीब नहीं होता, बल्कि एक के पाने के कारण सभी समृद्ध हो जाते हैं। एक के पाने में जैसे सभी को मिल जाता है।

जब बुद्ध ने पाया, शंकर ने पाया, कृष्ण ने पाया, क्राइस्ट ने पाया, तो उस दिन सारी जमीन पर वर्षा हुई। अब जो अपने घड़ों को उलटा रखे बैठे थे, उनका तो क्या किया जाए? लेकिन जिनके घड़े भी सीधे थे, भर गए। पाया कृष्ण ने, भर गए हजारों घड़े। पाया बुद्ध ने, भर गए हजारों घड़े। पाया शंकर ने, नाच उठीं हजारों आत्माएं। शंकर का यह आनंद-उत्सव अकेले का नहीं था।

इसे थोड़ा समझो! वही सुख है, जो बांटा जा सके; वही सुख है, जो अपने आप बंटता है, फैलता है; वही सुख है, जो तुम्हारे पाने से किसी का छिने न, बल्कि तुम्हारे पाने से अनंत को मिल जाए। उसको ही हमने महासुख कहा है, आनंद कहा है।

जिसे तुम सुख कहते हो, तो वह तो बड़ी छीछालेदर है। वह तो ऐसा है, जैसी पुरानी पुराण में कथा हैः एक चील एक कचरेघर से एक मरे चूहे को ले उड़ी। जैसे ही उसने मरे चूहे को पकड़ा, पच्चीसों चीलें उसके पीछे चक्कर काटने लगीं, छीना-झपटी शुरू हो गई, हमला शुरू हो गया। वह जो चील, जो मरे चूहे को अपने मुंह में लटकाए थी, जगह-जगह उसके पंखों में चोंचें मारी गईं, घाव हो गए, खून गिरने लगा। वह बड़ी हैरान हुई कि अभी तक कुछ भी न था, और अब अचानक! लेकिन उसने भी मरा चूहा छोड़ा नहीं। वह तो ऐसा हुआ कि तीव्र झपट्टे में उसके मुंह से चीत्कार निकली और चूहा छूट गया। जैसे ही चूहा छूटा, वे चीलें जो इर्द-गिर्द मंडराती थीं, सब चूहे के पीछे चली गईं, वह चील अकेली रह गई। वह एक वृक्ष पर बैठ गई। वह सोचने लगी।

वह चील तुमसे ज्यादा समझदार रही होगी; उसकोशंकर मूढ़ नहीं कह सकते थे। वह सोचने लगी। वह सोचने लगी--पहले तो मैं समझती थी कि ये चीलें मेरी दुश्मन हैं। वह बात गलत थी। क्योंकि चूहे के छूटते ही सारी चीलें चली गईं; किसी से कोई दुश्मनी न रही; अब कोई हमला करने को नहीं है, कोई पास ही नहीं है। तो मुझसे कुछ वास्ता न था, मुझसे कोई दुश्मनी न थी, मुझसे कोई निजी बैर न था--चूहा था जड़। और चीलें चूहे के कारण मेरे पीछे थीं। भूल मेरी ही थी कि मैंने चूहा पकड़ा था, वह मैं पहले भी छोड़ सकती थी। लेकिन मैं नासमझ यही समझती रही कि उनकी दुश्मनी मुझसे है।

रामकृष्ण इस पुराण की कथा को बहुत बार कहते थे। और वे कहते थे कि काम को जो मुंह में दबाए है, वह मरे चूहे को मुंह में दबाए है।

सब तरफ क्रोध पैदा होगा, दुश्मनी पैदा होगी। हालांकि तुम कहोगेः मैंने किसी का भी कुछ नहीं बिगाड़ा; मैं अपना चुपचाप अपने घर में रहता हूं, अपनी घर-गृहस्थी की फिक्र करता हूं; मैं किसी के लेन-देन में नहीं आता। फिर क्यों लोग मेरे दुश्मन हैं? लेकिन तुम लेन-देन में आ ही गए। एक सुंदर स्त्री से तुमने विवाह कर लिया। पूरा गांव उत्सुक था। अब तुम कहते होः मैं अपनी घर-गृहस्थी में रह रहा हूं! तुम रहो भला घर-गृहस्थी में, लेकिन पूरे गांव से तुमने झगड़ा मोल ले लिया।

हिंदुस्तान में पुराने दिनों में ऐसा रिवाज था, बुद्ध के समय तक जारी रहा, कि जो सुंदरतम लड़की होती गांव की, उसको विवाह नहीं करने देते थे। क्योंकि उससे बहुत कलह मच जाएगी। उसको नगरवधू बना देते थे; उसको वेश्या बना देते थे। वह गांव के लोगों कोशांत रखने का उपाय था। आम्रपाली का तुमने नाम सुना होगा, वह नगरवधू थी। नगरवधू का मतलब यह था, वह सबकी पत्नी। जो बहुत सुंदर स्त्री होती गांव में, युवती होती, उसको फिर एक की स्त्री नहीं बनने देते थे; क्योंकि एक का बनाना बहुत संघर्ष का कारण होगा--तलवारें खिंच जाएंगी, झंझट मचेगी। उसको सभी का बना देना उचित है, झगड़ा-झांसा नहीं होगा।

मगर, वहां जहां कामवासना का जगत है, वहां तुम कितने ही उपाय करो, झंझट-झगड़ा तो बना ही रहेगा। आम्रपाली के द्वार पर भी झगड़े हो जाते थे। क्योंकि आम्रपाली भी एक रात किसी एक को ही मिल सकती थी। पूरा गांव--गांव ही नहीं, आस-पास के गांव, दूर-दूर के नगर के लोग उत्सुक थे। अब एक स्त्री कितनों को उपलब्ध हो सकती थी, भला तुम नगरवधू बना दो! यह भी बड़ा अमानवीय है। लेकिन एक रास्ता निकाला था, किसी तरह सुलझ, समझ रखने का, शांति बनाए रखने का। लेकिन फिर भी कुछ हल नहीं होता था। फिर गरीब थे, अमीर थे, सम्राट थे। जब सम्राट नगरवधू के द्वार पर होता, तो बाकी लोगों का तो क्यू में खड़े होने का उपाय न था। तो वे जलते, मरते, बुझते।

जब चूहा मुंह में हो मरा, तो बाकी सब तरफ चीलें हमला करेंगी ही, यह स्वाभाविक है। थोड़ा चूहे को छोड़ कर देखो! अचानक तुम पाते हो--सारा जगत मित्र हो गया। कामवासना के जाते ही सारा जगत मित्र मालूम होने लगता है। कोई शत्रु न रहा। शत्रु कोई था ही नहीं, मरे चूहे के कारण उपद्रव था। तुमने नाहक निजी दुश्मनी समझ ली थी, निज से कोई लेना-देना न था, वह मरा चूहा तुम्हारे मुंह में था। फिर चील बैठी है अकेले वृक्ष पर। उस दिन उस चील को ध्यान हो गया होगा। एक बात समझ में आ गई कि उस चूहे में सुख न था, दुख का सारा उपाय था; उसमें सारे बीज थे वैमनस्य के।

काम न जाए तो क्रोध कभी नहीं जा सकता। लोग मुझसे पूछते हैं, क्रोध कैसे जाए? उनको मैं कहता हूं, मुश्किल है; तुम बात ही गलत पूछते हो। बीज को बचाना चाहते हो, पत्तों को काटना चाहते हो! जड़ को बचाना चाहते हो, शाखाओं को काटना चाहते हो! उससे तो उलटी कलम हो जाएगी। एक शाखा काटो, तीन निकल आती हैं। जड़ को ही काटना होगा।

इसलिए शंकर पहले कहते हैं काम--वह है जड़; फिर क्रोध--उसकी छाया; फिर लोभ--उसका अनुषंग; फिर मोह--उसकी आखिरी निष्पत्ति। इनको जो छोड़ दे, स्वयं पर ध्यान करे।

इनको जो छोड़ दे, वही स्वयं पर ध्यान कर सकता है। क्योंकि तब दूसरों पर से ध्यान हट गया--न काम रहा, तो काम के जो विषय थे उनसे ध्यान हट गया; न क्रोध रहा, तो जो क्रोध के विषय थे उनसे ध्यान हट गया; न लोभ रहा, तो लोभ में जो चिंतना उलझती थी वह भी छूट गई; न मोह रहा, तो मोह में जो ऊर्जा लगती थी, वह भी मुक्त हो गई। सब तरफ से मुक्त अब तुम अपनी यात्रा पर निकले; अंतर्यात्रा शुरू हुई। और

अंतर्यात्रा ही एकमात्र तीर्थयात्रा है, बाकी सब तीर्थ के धोखे हैं। भीतर जो गया, वही तीर्थ पहुंचा; बाहर जो भटके, उन्होंने ऐसे ही अपने मन को समझाया, खेल-खिलौनों में उलझे रहे।

"ऐसी चित्त-दशा में पूछो स्वयं से--मैं कौन हूं? क्योंकि आत्मज्ञान से विहीन मूढ़जन यहां भी घोर नरक की यातना पाते हैं।"

आत्मज्ञानविहीना मूढ़ाः।

वे जो आत्मज्ञान से रहित हैं, उन्हें कोई नरक में जाकर पीड़ा मिलेगी, ऐसा मत सोचना। ये भी धोखेबाज आदमी की तरकीबें हैं कि वह कहता है--नरक में जाएंगे, तब दुख मिलेगा। जैसे यहां सुख मिल रहा है! नरक में जाएंगे, तब दुख मिलेगा! यहां क्या मिल रहा है?

मैंने तो सुना है कि कुछ दिनों से नरक में जब लोग पहुंचते हैं, तोशैतान उनसे पूछता है--कहां से आ रहे? वे कहते हैं, पृथ्वी से। तो वह कहता है, अब तुम स्वर्ग चले जाओ, नरक तो तुम भोग ही चुके, अब यहां किसलिए आए हो?

अब तो कुछ दिनों से ऐसी भी खबरें आने लगी हैं कि नरक में जो पाप करते हैं, उनको कष्ट देने के लिए पृथ्वी पर भेज देते हैं। क्योंकि अब उनको भी तो कहीं दंड देने के लिए जगह चाहिए! उनको कहां भेजो? नरक में लोग समझाते हैं कि अगर पाप किया, पृथ्वी पर चले जाओगे।

शंकर कहते हैं, यहीं घोर नरक की यातना तुम पा रहो हो। किस नरक पर छोड़ रहे हो यह कि भविष्य में मिलेगा?

यह भी तरकीब है। आज जो मौजूद है, उसे न देखने का उपाय है। अंधे होने की तुम कितनी व्यवस्थाएं करते हो! खुद को धोखा देने के तुम कितने तर्क खोजते हो! नरक में मिलेगा दुख। यहां क्या मिल रहा है? सिवाय दुख के कुछ भी नहीं पाया है। दुख ही दुख है। दुख ही दुख से तुम भरे हो।

"स्वयं से पूछो--मैं कौन हूं?"

लेकिन यह पूछा ही तब जा सकता है, जब चारों गिर गए हों। तब एक बार पूछना भी कि मैं कौन हूं? और उत्तर आना शुरू हो जाता है। वस्तुतः पूछने की जरूरत भी नहीं रह जाती। तुम आंख बंद करते हो... पूछते नहीं कि मैं कौन हूं, शब्द नहीं बनाने पड़ते। क्योंकि वहां कोई दूसरा थोड़े ही है, जिसके लिए शब्द बनाने हों; वहां तो तुम ही हो--किससे पूछना है मैं कौन हूं? तुम ही अपने आमने-सामने हो, देख लो, पहचान लो। पूछना क्या है! लेकिन कहने के लिए शंकर कहते हैं।

शंकर को बहुत पसंद थी एक कहानी कि एक शिष्य गुरु से बार-बार पूछता कि मैं आत्मज्ञान पाने के लिए क्या करूं? और गुरु अचानक जैसे इस प्रश्न को सुनते ही बहरा हो जाता। और सब समय वह उत्तर देता, सब समय लगता कि उसके भी कान सजग हैं, छोटी-छोटी बात सुन लेता। लेकिन जब भी वह शिष्य कभी पूछता कि आत्मज्ञान पाने के लिए क्या करूं कि बस गुरु अचानक बहरा हो जाता--किसी दूसरे काम में लग जाता, उत्तर न देता।

आखिर एक दिन शिष्य ने उसे हिलाया पकड़ कर कि यह मामला क्या है? तुम हमेशा ठीक होते हो; हजार बात पूछता हूं, जवाब देते हो। सिर्फ यही बात... ।

गुरु ने कहा, मैं जवाब देता हूं, तू सुनता नहीं। क्योंकि आत्मज्ञान को पाने का यही उपाय है, चुप रह जाना। इसलिए मैं चुप रह जाता हूं--कि तू सुन, कि तू समझ।

बस इतनी ही कीमिया है कि भीतर अगर कोई चुप हो जाए। और जब मरा चूहा मुंह से गिर जाता है, तो भीतर चुप्पी स्वाभाविक आ जाती है। उस घड़ी में बोध होता है, मैं कौन हूं।

"गीता और सहस्रनाम ही गाने योग्य हैं; विष्णु का रूप ही अखंड ध्यान के योग्य है; सज्जनों की संगति में ही चित्त लगाना चाहिए; दीन जनों को ही धन देना चाहिए। और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

जब तक यह न हो जाए कि ये चारों गिर जाएं और तुम अपने भीतर के आकाश में पूछ सको बिना शब्द बनाए--मैं कौन हूं? तब तक गीता और सहस्रनाम गाने योग्य हैं। तब तक गाओ गीता, भजो परमात्मा के हजार नाम हैं उनको; विष्णु का रूप, उस पर ध्यान करो; सज्जनों की संगति करो; दीन जनों को धन दो। बांटो, जितना बांट सको; सत्य की खबर सुनो, जितनी सुन सको; गीत गाओ परमात्मा के।

"हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

जब तक वह घड़ी न आ जाए, तब तक ऐसे तैयारी करो।

"सुख के लिए स्त्री-भोग किया जाता है, लेकिन खेद कि अंत में शरीर रोगी हो जाता है।"

चलते हो सुख खोजने, केवल रोग लेकर घर लौट आते हो। जाते हो जीवन की तलाश में, मौत से मिलन होता है।

"यद्यपि इस संसार में मृत्यु निश्चित है, तो भी लोग पाप करना नहीं छोड़ते।"

मृत्यु बिल्कुल सुनिश्चित है। और सब अनिश्चित हो, मृत्यु अनिश्चित नहीं है। एक ही बात तय है यहां कि मरना है, फिर भी पाप करना नहीं छोड़ते। मरना है, तो भी कौड़ी-कौड़ी के लिए पाप करने को तत्पर होते हैं। जैसे सदा यहां रहना हो; जैसे एक कौड़ी कम हो जाएगी तो अनंत काल में बड़ी रहने में असुविधा होगी! लोग रेलवे स्टेशन के विश्रामालय को अपना घर समझ लेते हैं और इस भांति रहने लगते हैं डेरा-डंगल जमा कर, जैसे सदा यहां रहना है!

आती ही होगी ट्रेन, बजती ही होगी घंटी, जल्दी ही बोरिया-बिस्तर बांध सवार हो जाना है। तुमने देखा--विश्रामालय में रेलवे स्टेशन के, लोग अपना बिस्तर भी नहीं खोलते, पेटी भी नहीं खोलते, बांध कर ही बैठे रहते हैं। जब अभी जाना ही है, तो खोलना क्या?

इस जीवन को विश्रामगृह से ज्यादा मत समझो; रात भर का बसेरा है, रैन-बसेरा। सुबह हुई, पक्षी उड़ जाएंगे अपनी-अपनी यात्राओं पर। अगर ऐसा दिखाई पड़ जाए तो पाप करना असंभव हो जाता है। किसलिए करना है? किसके लिए करना है? सब यहीं पड़ा रह जाएगा। फिर पाप करने योग्य मालूम भी नहीं होता। जब सभी पड़ा रह जाएगा तो क्या प्रयोजन है?

तुम जीते तो ऐसे हो, जैसे सदा यहां रहना है, इसलिए पाप कर लेते हो। पाप करने के लिए, स्वयं को मरणधर्मा न मानना जरूरी है। यह मान्यता मन में रखनी जरूरी है कि सदा रहना है, तभी पाप कर सकते हो। जितनी तुम्हें याद आने लगे मौत की, उतना ही पाप गिरने लगेगा। इसलिए मौत के स्मरण को मैं महानतम पुण्य कहता हूं; क्योंकि जिसको मौत की याद आ गई, उसके जीवन से पाप असंभव हो जाता है।

"धन अनर्थ है, इस पर निरंतर विचार करो। सच यह है कि धन में लेशमात्र सुख नहीं है। यह बात सर्वत्र देखी गई कि धनवान अपने पुत्रों से भी भय खाते हैं। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"प्राणायाम और प्रत्याहार, नित्य और अनित्य का विवेक-विचार और जप सहित समाधि की साधना, इन्हें सावधानी के साथ साधो, महा सावधानी के साथ साधो।"

"प्राणायाम और प्रत्याहार... "

प्राणायाम का अर्थ है कि तुम अपने को संकुचित प्राण मत समझो; प्राण को फैलाओ, उसके आयाम को बड़ा करो। तुम बड़े हो, विराट हो। तुमने मान रखा है, छोटे हो। वह छोटा होना सिर्फ तुम्हारी मान्यता है।

जरा गौर से देखो--कहां तुम शुरू होते हो? कहां तुम अंत होते हो? शरीर पर तुम अंत नहीं होते। क्योंकि करोड़ों मील दूर जो सूरज है, अगर वह बुझ जाए तो तुम यहां बुझ जाओगे; तुम उससे जुड़े हो। अरबों-खरबों मील दूर जो चांद-तारे हैं, उनसे भी रोशनी के तार तुमसे बंधे हैं।

चारों तरफ पृथ्वी के भरा हुआ जो वायुमंडल है, उसके बिना तुम न रह सकोगे; तुम उसी में श्वास ले रहे हो। जो जानते हैं, वे कहते हैं, हम उसमें श्वास ले रहे हैं, ऐसा कहना कठिन है; वही हममें श्वास ले रहा है, ऐसा कहना ज्यादा उचित है। अभी जोश्वास मेरी थी, क्षण भर बाद तुम्हारी हो गई; कह भी नहीं पाऊंगा कि तुम्हारी न रह जाएगी, किसी और की हो जाएगी।

जोशरीर आज तुम्हारा है, कभी वृक्षों में था, कभी पशुओं में था, कभी पक्षियों में था। मरोगे--फिर नदी में बह जाएगा जल, मिट्टी में मिल जाएगी मिट्टी; फिर पौधे उठेंगे, फिर वृक्ष बनेंगे। हो सकता है, तुम्हारे बेटे उन फलों को खाएं, जिनमें तुम्हारी मिट्टी खो गई हो।

सब जुड़ा है, सब संयुक्त है; यहां कोई अलग-थलग नहीं है। हम कोई छोटे-छोटे द्वीप नहीं हैं; एक महाद्वीप है, उसके ही हम सब अंग हैं।

प्राणायाम का अर्थ हैः फैलाओ अपने को। प्राणायाम से जिस प्रक्रिया को योग में जाना जाता है, वह केवल तरकीब है फैलाने की। गहरी श्वास लो, कि छिद्र-छिद्र तुम्हारे फेफड़ों का भर जाए; फिर गहरी श्वास उलीचो, कि पूरी श्वास उलिच जाए। जैसे ही तुम इस प्रक्रिया को गहरा करने लगोगे, एक दिन तुम अचानक पाओगे--तुम श्वास नहीं ले रहे, परमात्मा तुममें श्वास ले रहा है।

यह तो केवल विधि है। इस विधि से प्राणायाम होता है; इस विधि से प्राण का विस्तार होता है और प्रतीत होता है कि हम एक महान चैतन्य के छोटे-छोटे अंश हैं, बड़े सागर की बूंदें हैं। बूंद भी गरिमा से भर जाती है फिर। कण भी परमात्मा के प्रसाद से लबालब हो जाता है। तुम्हारी छोटी प्याली में भी सागर लहराने लगते हैं।

"प्राणायाम और प्रत्याहार... "

प्राणायाम है प्राण का फैलाना और प्रत्याहार है घर की तरफ वापसी--लौटना, भीतर आना। प्रत्याहार। अपने में वापस जाना, जहां से आए हैं। जैसे वृक्ष अगर सिकुड़ सके, सिकुड़ कर छोटा पौधा हो जाए; पौधा सिकुड़ सके, बीज हो जाए--तो प्रत्याहार। तुम जो दिखाई पड़ रहे हो, उससे पीछे सरको--भीतर... भीतर... भीतर--उस बीज को, मूल स्रोत को पा लो, जहां से तुम आए हो। गंगा अगर वापस लौट जाए और गंगोत्री में फिर समा जाए, गोमुख में, तो प्रत्याहार। प्रत्याहार का अर्थ हैः अपने मूल को फिर पा लेना।

झेन फकीर कहते हैं, ओरिजिनल फेस, अपने मूल चेहरे को जान लेना।

जो तुम जन्मे न थे, तब तुम्हारा था; जब तुम पैदा न हुए थे, तब तुम्हारी जो मुखाकृति थी; उसको पहचान लेना प्रत्याहार है।

"प्राणायाम और प्रत्याहार, नित्य और अनित्य का विवेक-विचार... "

और प्रतिपल जानते रहना, सोचते रहना, देखते रहना--क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है। इसे क्षण भर को भी भूलना नहीं। क्योंकि भूलते ही व्यर्थ को पकड़ लेते हो, सार्थक को छोड़ देते हो। मरे चूहे को पकड़ने में देर नहीं लगती; जरा ही भूले कि पकड़ा। होश आया तो छूट जाता है।

"जप सहित समाधि की साधना... "

यह शंकर बड़ी मीठी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, जप सहित समाधि की साधना। पतंजलि कहते हैंः अंततः समाधि जपरहित हो जानी चाहिए। नानक कहते हैंः अजपा-जाप। जाप खो जाना चाहिए। बुद्ध, महावीर, वे भी यही कहते हैं--सब खो जाना चाहिए, बस शून्य रह जाना चाहिए। लेकिन शंकर कह रहे हैं, जप-समाधि! जप सहित समाधि की साधना!

वे यह कह रहे हैंः शून्य तो हो, लेकिन पूर्ण का नाच न खोए; शून्य में पूर्ण विराजमान रहे। विचार तो खो जाएं, भाव न खो जाए।

क्योंकि भाव अगर खो गया तो तुम शुष्क हो जाओगे। तुम शांत तो होओगे, लेकिन तुम्हारी शांति से गीत की धारा न बहेगी। मीरा न नाचेगी फिर, चैतन्य का भजन न फूटेगा फिर। तुम मौन तो हो जाओगे, तुम पा लोगे, लेकिन अभिव्यक्ति न होगी, अभिव्यंजना न होगी। तुम्हारा गीत बिना अंकुरित हुए तुम्हारे भीतर रह जाएगा; कोई उसे सुन न पाएगा। तुम्हारा आनंद बह न पाएगा--किनारे छोड़ कर बाढ़ की भांति। उसकी उत्तुंग तरंगें दूसरों को डुबा न पाएंगी।

इसलिए शंकर कहते हैं, निर्विचार तो होना है, निर्भाव नहीं; ज्ञान तो आए, भक्ति न खो जाए। यह बड़ा अनूठा संयोग है। घटता है। बड़ी असंभव घटना है, पर घटती है। विचार खो जाते हैं, भाव नहीं खोता; चिंतन चला जाता है, चिंता चली जाती है, हृदय गदगद होकर नाचता है।

"जप सहित समाधि की साधना, इन्हें सावधानी के साथ साधो।"

फिर दोहराते हैंः "महा सावधानी के साथ साधो।"

"और हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

"गुरु के चरण-कमल में पूर्णतः समर्पित होकर, संसार के बंधनों से मुक्त होकर, इंद्रिय सहित मन को संयमित कर तुम अपने हृदय में स्थित प्रभु को देख लोगे।"

प्रभु कहीं दूर नहीं है, प्रभु तुम्हारे हृदय में ही स्थित है। उसे कहीं खोजने नहीं जाना है, अपने घर वापस आना है। उसे तुमने कभी खोया भी नहीं है, सिर्फ भूल गए हो, विस्मरण हो गया है। विस्मरण में भी वह मौजूद है सतत, तुम भूल गए हो, उसकी तरफ पीठ कर ली है, फिर भी वह मौजूद है। वस्तुतः तुम हो ही कौन, वही है। उसे भूल गए, इसलिए तुम सोचते हो, मैं हूं। वह याद आ जाएगा, तुम मिट जाओगे, वही रह जाएगा।

"तुम अपने हृदय में स्थित प्रभु कोदेख लोगे। अतः हे मूढ़, सदा गोविन्द को भजो।"

शंकर का जोर है कि ध्यान और भजन के बीच एक समन्वय सध जाए, ध्यान और भजन के बीच एक संगीत बज उठे, ध्यान और भजन के बीच असंभव का सेतु निर्मित हो जाए।

भक्त भी बहुत हुए हैं, लेकिन तब उनके भीतर शून्य-समाधि नहीं होती; तब भगवान की प्रतिमा से भरे रहते हैं, द्वैत बना रहता है। ज्ञानी बहुत हुए हैं, उनके भीतर द्वैत मिट जाता है, अद्वैत हो जाता है; लेकिन द्वैत के मिटते ही रसधार सूख जाती है।

शंकर कह रहे हैं, किसी भांति ऐसी घड़ी लाओ--जो आ सकती है, जो कभी-कभी आई भी है--ऐसी किरण को अपने भीतर उतारो कि तुम ज्ञानियों जैसे शून्य और भक्तों जैसे पूर्ण! ज्ञान और भक्ति का संबंध जुड़ जाए तो

सोने में सुगंध आ जाती है। यह आत्यंतिक घटना है। यह आखिरी घटना है, इसके ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं--जहां भक्ति और ज्ञान संयुक्त हो जाते हैं; जहां भक्ति ज्ञान बन जाती है, ज्ञान भक्ति हो जाता है; जहां समाधि गीत गाती है; जहां समाधि में फूल खिलते हैं; जहां समाधि रूखा-सूखा मरुस्थल नहीं होती, हरियाली-हरियाली हो जाती है; जहां मन तो परिपूर्ण मिट गया होता है और हृदय उसे भर देता है। वहीं परमात्मा का मंदिर है।

"उस प्रभु को तुम अपने ही भीतर पा लोगे।"

भक्त भगवान से अलग नहीं है; भक्त, जिस दिन जान लेगा, उस दिन भगवान है। लेकिन बहुतों ने जाना भगवान को, तब उनके भीतर का भक्त समाप्त हो जाता है, भगवान ही बचता है। और बहुतों ने अपने भक्त को बचाना चाहा; तो भगवान भी बचता है, भक्त भी बचता है, लेकिन एक द्वैत बना रहता है, फासला बना रहता है।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम भक्त भी हो जाओ और भगवान भी--एक ही साथ? कि तुम्हारा कीर्तन अपने ही सामने चलने लगे? कि तुम्हीं नाचो भी और तुम्हीं देखो भी?

ऐसा हो सकता है। और वही शंकर की परिकल्पना है। शंकर में स्वयं ऐसा ही अनूठा व्यक्तित्व फला कि ज्ञान की ऐसी पराकाष्ठा, और फिर भक्ति का ऐसा अनूठा मेल। स्वर्ण में अगर कभी सुगंध आई है, तोशंकर में आई थी।

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

एक क्षण पर्याप्त है

पहला प्रश्नः कल आपने समझाया कि प्राणायाम का अर्थ हैः ऐसी विधि जिससे प्राणों का विस्तार हो; और प्रत्याहार हैः मूल स्रोत की ओर वापस लौटना। पहले विस्तार, फिर वापसी--ऐसा क्यों?

क्योंकि जीवन विरोध से निर्मित है; और जीवन के होने का और कोई ढंग नहीं। श्वास बाहर जाती है, फिर भीतर वापस लौटती है। पूछा कभी--ऐसा क्यों? जब भीतर ही जाना है श्वास को तो बाहर ले जाने की जरूरत क्या? लेकिन अगर श्वास भीतर ही रह जाए, बाहर न जाए, तो मौत घटेगी, जीवन नहीं। श्वास अगर बाहर ही रह जाए, भीतर न आए, तो भी मौत घटेगी, जीवन नहीं। जीवन गति है--दो विरोधों के बीच गति है; दो तटों के बीच सरिता का प्रवाह है। श्वास बाहर जाती है, भीतर आती है; भीतर आती है, बाहर जाती है--प्रतिपल प्राणायाम भी हो रहा है, प्रत्याहार भी हो रहा है।

श्वास का बाहर जाना प्राणायाम है, श्वास का भीतर आना प्रत्याहार है। और ऐसी ही लयबद्धता तुम्हारी चेतना में भी सध जाए, ऐसी ही गति तुम्हारी चेतना में भी थिर हो जाए, ऐसे ही तुम बाहर अनंत तक फैल जाओ और ऐसे ही तुम भीतर शून्य तक पहुंच जाओ--भीतर हो शून्य, बाहर हो अनंत--ये दोनों तुम्हारे कूल-किनारे हो जाएं, इनके बीच तुम सतत प्रवाहित होओ, तो ही तुम भगवत-स्वरूप हो पाओगे। क्योंकि भगवान का यही स्वरूप है--भीतर शून्य, बाहर पूर्ण।

यह सारा अस्तित्व परमात्मा का प्राणायाम है। सृष्टि है प्राणायाम, प्रलय है प्रत्याहार। एक श्वास बाहर गई, सृष्टि हुई; श्वास भीतर लौटी, प्रलय हुआ।

इसे तुम अगर ठीक से समझ पाओ तो जीवन में सब जगह दिखाई पड़ेगा। जन्म है प्राणायाम, मृत्यु है प्रत्याहार; जन्म में तुम फैलते हो, मृत्यु में सिकुड़ जाते हो, वापस लौट जाते हो। और जीवन जन्म और मृत्यु के किनारों के बीच है। जन्म जीवन नहीं; मृत्यु भी जीवन नहीं। जन्म और मृत्यु के बीच जो प्रवाहित है, जो अज्ञात नृत्य कर रहा है छंद में, लय में लीन है--वही है जीवन।

मन की आकांक्षा है तर्कयुक्त होने की और जीवन है विरोधयुक्त, इसलिए जीवन अतर्क्य है। और जिन्होंने तर्क से जानना चाहा वे भटके और कभी पहुंचे नहीं।

तर्क तो यही कहेगाः प्राणायाम और प्रत्याहार तो विरोध हो गया--कुछ एक कहें! ज्ञान और भक्ति तो विरोध हो गया--कुछ एक कहें! शून्य और पूर्ण तो विरोध हो गया--कुछ एक कहें!

ध्यान रखना, जीवन सदा ही विरोधी है; क्योंकि जीवन विरोधों से बड़ा है; जीवन विरोधों को आत्मसात कर लेता है। तर्क बड़ा छोटा है; छोटी बुद्धि का उपाय है; वह एक को ही समा पाता है, तो विपरीत बाहर छूट जाता है।

इसलिए बुद्ध ने अगर शून्य कहा, तो यह अर्थ न था कि पूर्ण उसमें समाया नहीं है। लेकिन बुद्ध को मानने वालों ने कहा कि जब शून्य है तो पूर्ण नहीं हो सकता। और जब शंकर ने कहा पूर्ण, तो यह अर्थ न था कि शून्य उसमें समाया नहीं है। लेकिन शंकर के मानने वालों ने कहा, जब पूर्ण है तो शून्य कैसे हो सकता है।

यहीं तो अनुयायी भटक जाता है। अनुयायी जीता है तर्क से और बुद्धि से। और जो जानते हैं, उन्होंने विरोध को एक साथ जाना है। लेकिन वे भी विरोध को एक साथ कहने में अड़चन अनुभव करते हैं, क्योंकि समझाना है तुम्हें। अगर विरोध एक साथ कहे जाएं, तो तुम्हें लगता है बड़ी असंगति हो गई। तुम्हारा मन चेष्टा ही करता रहता है तर्कबद्ध, सरणीबद्ध गणित की। और जीवन किसी गणित को मानता नहीं; जीवन सब गणित की सीमाओं को तोड़ कर बहता है। जीवन तो बाढ़ है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने अकाम की सूक्ष्म विवेचना की। स्वप्न-अवस्था में भी अकाम आ जाए, इसकी कीमिया पर कुछ उपदेश दें।

तुम स्वप्न की चिंता न करो, तुम जाग्रत में ही साध लो। जाग्रत में जो सध जाएगा, वह स्वप्न में अपने आप उतरने लगता है। क्योंकि तुम्हारे स्वप्न तुम्हारे जाग्रत की प्रतिध्वनियां हैं। तुमने जाग्रत में जो किया है, वही स्वप्न में तुम फिर-फिर अनुगूंज सुन लेते हो उसकी। उसी की प्रतिध्वनि है। स्वप्न कुछ नया तो देता नहीं। स्वप्न भी क्या नया देगा?

दिन भर धन इकट्ठा करते हो, तो रात रुपये गिनते रहते हो। दिन भर मन में कामवासना तिरती है, तो रात काम के स्वप्न चलते हैं। जिनके जीवन में भजन है, उनकी निद्रा में भी भजन प्रविष्ट हो जाता है; और जिनका दिन शांत और शून्य है, उनकी रात भी शांत और शून्य हो जाती है। रात तो पीछा करती है दिन का; वह दिन की छाया है। रात को बदलने की फिक्र ही मत करो।

अगर रात के स्वप्नों में कामवासना परेशान करती है, तो यही समझो कि जाग्रत में कहीं धोखा हो रहा है। इशारा समझो। स्वप्न तो इंगित करते हैं--दिन में भी तुम जिन्हें समझने से चूक जाते हो, स्वप्न उन्हें स्पष्ट इशारा कर देते हैं। हो सकता है कि दिन में तुम बड़े साधु बने बैठे होओ। लेकिन वह साधुता बगुले जैसी है। एक टांग पर खड़ा है! उसको देख कर तो ऐसा ही लगेगा कि कोई तपस्वी है। और कितना शुभ्र है! अब बगुले से ज्यादा और सफेदी कहां खोजोगे? और कैसा खड़ा है! कौन योगी खड़ा होगा! हिलता भी नहीं! ऐसा बाहर को देख कर मत भूल में पड़ जाना। भीतर वह मछलियों का चिंतन कर रहा है, भीतर वह मछलियों की राह देख रहा है। यह सब आसन, यह सब सिद्धासन, मछलियों की आकांक्षा में साधा है।

खैर बगुला दूसरे को धोखा दे दे, अपने को कैसे धोखा देगा? खुद तो जानता है कि किसलिए खड़ा है। यह श्वास साधे किसलिए खड़ा है--उसे पता है।

लेकिन आदमी बगुले से भी ज्यादा बेईमान है। वह दूसरों को ही धोखा नहीं देता, दूसरों को धोखा देते-देते अपने को भी धोखा दे लेता है। जब दूसरे मानने लगते हैं उसकी बात, तो धीरे-धीरे खुद भी अपनी बात मानने लगता है। तब तुम्हें पता लगेगा कि तुम्हारे जाग्रत और स्वप्न में विरोध हो गया। तब तुम्हें जाग्रत में तो कोई कामवासना की तरंग उठती नहीं मालूम होती। क्योंकि तुमने बहुत बुरी तरह दबाया है; तुम उसकी छाती पर चढ़ बैठे हो; तुम उसे उठने नहीं देते। नहीं कि वह समाप्त हो गई है; बस तुम उठने नहीं देते। नहीं कि वह मिट गई है; तुम सिर्फ उसे प्रकट नहीं होने देते। उसे तुम दबाए हो छाती के कोनों में। रात जब तुम शिथिल हो जाते हो, दबाने वाला सो जाता है, तब जो लहर दिन भर दबाई थी, वह मुक्त होकर विचरण करने लगती है; वही तुम्हारे स्वप्न में कामवासना बन जाती है। जिन्होंने दमन किया है, स्वप्न में उसे पाएंगे।

स्वप्न को इशारा समझो; स्वप्न तुम्हारा मित्र है। वह यही कह रहा है कि दबाने से कुछ भी न होगा, रात हम प्रकट हो जाएंगे। दिन भर दबाओगे, रात हम फिर मौजूद हो जाएंगे। किसी तरह दूसरों को धोखा दे लोगे, अपने को भी धोखा दे लोगे, लेकिन हमसे छुटकारा ऐसे नहीं होगा।

अब तुम पूछते हो कि स्वप्न में भी कामवासना से मुक्त होने के लिए क्या करें?

इससे ऐसा लगता है कि जाग्रत में तो तुम मुक्त हो ही गए हो, अब रह गई है स्वप्न से मुक्त होने की बात। यहीं भ्रांति है। स्वप्न इतना ही कह रहा है कि जाग्रत में भी तुम मुक्त नहीं हुए हो। क्योंकि जिस दिन जाग्रत में मुक्त हो जाओगे, उस दिन स्वप्न में कुछ बचता ही नहीं। स्वप्न तो तुम्हारी ही सूक्ष्म कथा है।

तुम मुझसे यह पूछ रहे हो कि जैसे हमने जाग्रत में दबा लिया, ऐसी कोई तरकीब हमें बता दें कि स्वप्न में भी दबा लें। फिर तो तुम्हारी मुक्ति का कोई उपाय न रह जाएगा। क्योंकि जो दबा है, वह सदा मौजूद रहेगा और कभी न कभी प्रकट होगा। वह तो धधकता हुआ ज्वालामुखी है। बाहर लपटें न आएं, इससे क्या होता है! भीतर तो तुम जलोगे और सड़ोगे; भीतर तो तुम गलोगे। कैंसर की तरह बढ़ेगा रोग; तुम्हारे रोएं-रोएं में फैल जाएगा।

नहीं, स्वप्न को समझो। स्वप्न की समझ इतना ही कह रही है कि दिन में तुमने कुछ चालबाजी की है, दिन में तुमने कुछ धोखा किया है। अब दिन को अपने समझने की कोशिश करो कि कहां तुम धोखा किए हो? कहां तुमने दबाया है? और जहां तुमने दबाया हो, वहां उसे उघाड़ो।

मन का एक गहरा सूत्र समझ लो कि जैसे वृक्षों की जड़ें अगर अंधेरी भूमि में दबी रहें, तो ही अंकुरण जारी रहता है--पत्ते आते हैं, फूल लगते हैं, फल लगते हैं। अगर तुम वृक्ष की जड़ों को उखाड़ लो भूमि के बाहर--अंधेरे गर्त के बाहर निकाल लो, रोशनी में रख लो--वृक्ष मर जाता है। ठीक यही मन का सूत्र हैः मन में जो भी रोग हों, उन्हें निकालो बाहर, रोशनी में लाओ। रोशनी मौत है रोग की।

तुम उलटा करते रहे हो; और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु तुम्हें उलटा ही समझाते रहे हैं। वे कहते रहे हैंः और दबा दो! बिल्कुल दबा दो; जड़ का पता ही न चले!

लेकिन जड़ जितनी गहरी जम जाएगी, जितनी गहरी दबा दी जाएगी, उतना ही खतरा हो रहा है; उतना ही तुम्हारे जीवन में विष फैल जाएगा।

उघाड़ो! अपने को अपनी आंखों के सामने लाओ! छिपो मत, भागो मत--जागो! तो दिन में भी खोदो अपनी जड़ों को। लाओ रोशनी में, देखो।

इसे ही मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान कोई विधि थोड़े ही है कि तुमने कर ली और छुटकारा हुआ। ध्यान एक सतत प्रक्रिया है होश की। चौबीस घंटे, उठते, बैठते ध्यान रखो।

राह पर तुम जा रहे हो। एक सुंदर स्त्री पास से गुजर गई या सुंदर पुरुष पास से गुजर गया। जिसको तुम लुच्चा कहते हो, वह ठिठक कर खड़ा हो गया, देखने लगा। इसीलिए लुच्चा कहते हैं। लुच्चा आता है लोचन शब्द से। जो आंख गड़ा कर देखता है, वह लुच्चा। उसी से आलोचक भी आता है। वे दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। वह खड़ा हो गया ठिठक कर, देखने लगा।

तुम साधु हो, तुम कोई लुच्चे नहीं हो। तुम चोरी-छिपे देखते हो; तुम ठिठक कर नहीं देखते, तुम दूसरे बहाने देखते हो; तुम पास की दुकान में देखने लगते हो। देखते दुकान में हो, देखना चाहते हो सुंदर स्त्री को। या हो सकता है कि तुमने और भी गहरा दमन कर लिया है। तुमने इतना दमन कर लिया है कि तुम आंखें नीची

करके, देखते ही नहीं स्त्री को--न दुकान, न किसी बहाने से--तुम सिर्फ आंखें नीची किए अपने बाजार की तरफ चले जाते हो। तब रात सपने में तुम देखोगे; क्योंकि देखना तो तुमने चाहा था।

और यह भी हो सकता है कि यह आंख झुका कर चलने की आदत तुम्हारी गहरी बन गई हो कि तुम्हें पता भी न चलता हो, कब तुम आंख झुका लेते हो। यह झुक ही जाती हो आदतवश; स्त्री की भनक पड़ती हो और आंख झुक जाती हो। ऐसा तुमने शील और आचरण तय कर लिया हो। ऐसा तुमने चरित्र निर्मित कर लिया हो। तब तुम आंख झुका कर चले जाते हो, तुम्हें झुकानी भी नहीं पड़ती। यह तो सिर्फ यांत्रिक कुशलता से हो जाता है। तुम्हें शायद पता भी न चले कि स्त्री पास से गुजरी थी। लेकिन आंख का झुकना बताता है कि तुम्हें चाहे ऊपर से पता न चला हो, भीतर तुम्हारे प्राणों में कोई कंपा, कोई हवा का झोंका भीतर गया, कोई तरंग उठी; उसी तरंग ने आंखें झुका दीं। आंखें झुकाना बचने की तरकीब है। तुम गुजर गए।

दुनिया तुम्हें संत कहेगी, सज्जन कहेगी, साधु कहेगी। इससे अहंकार को मजा भी आएगा, रस भी मिलेगा--रिस्पेक्टबिलिटी; आदर मिलता है। तुम और भी धार्मिक होने लगोगे। आंख भी फोड़ सकते हो। अहंकार ऐसा है कि आदमी कुछ भी कर सकता है।

लेकिन इससे तुम किसे धोखा दोगे? तुम्हारे अंतरतम को तुम धोखा न दे पाओगे। रात के अंधेरे में, गहरी तंद्रा में, बेहोशी में जब तुम पड़े होओगे, तब तुम्हारा सज्जन तो सोया है, संत तो गहरी नींद में पड़ा है--तब मन में वे सब राग उठने शुरू होंगे जो तुमने दबाए; वे गीत गूंजने लगेंगे जो तुमने अनसुने किए; उन्हीं से स्वप्न निर्मित होगा।

स्वप्न जब निर्मित हो, तो यह मत सोचना कि स्वप्न में कुछ खराबी है। स्वप्न तो मित्र है, वह तो यह कह रहा है कि तुमने खूब गहरा धोखा दे दिया। अभी भी चेतो! इस धोखे से कुछ सार नहीं, मैं भीतर मौजूद हूं। ऐसे कामवासना न जाएगी। जाग कर पहचानो अपनी वृत्ति को, होश को सम्हालो।

असली सवाल पास से गुजरी स्त्री को देखने या न देखने का नहीं है, तुम्हारे भीतर जो देखने की तरंग उठी, उसको देखने या न देखने का है। स्त्री देखी तो, स्त्री न देखी तो, कोई बड़ा सवाल नहीं है। तुम्हारे भीतर जो तरंग देखने की उठी थी, जो वासना उठी थी, उसे देखा कि नहीं? अगर उसे नहीं देखा तो स्वप्न में आएगा; अगर उसे देख लिया तो स्वप्न में आने की कोई जरूरत न रही। अगर तुम ऐसे प्रतिपल अपने भीतर की उठती वासना को देखते रहो, तुम पाओगे स्वप्न शून्य हो गए।

कल मैं एक गीत पढ़ रहा था। मेरे एक मित्र हैं, खुमार बाराबंकवी। उर्दू के कवि हैं। उनकी पंक्ति हैः

हो न हो अब आ गई मंजिल करीब

रास्ते सुनसान नजर आते हैं

जैसे-जैसे मंजिल करीब आने लगेगी, मन के रास्ते सुनसान नजर आने लगेंगे, वीरान होने लगेंगे। वहां स्वप्न से भी मिलना न होगा। बाजार तो खो ही जाएंगे, बाजारों की प्रतिछवियां भी खो जाएंगी। मित्र और शत्रु तो विदा हो ही जाएंगे, उनकी डोलती छायाएं भी विदा हो जाएंगी।

हो न हो अब आ गई मंजिल करीब

रास्ते सुनसान नजर आते हैं

जब तुम्हारे भीतर रास्ते सब सुनसान नजर आने लगें, तब पहचान लेना कि अब मंजिल बहुत दूर नहीं है, करीब है। जब तक तुम अपने भीतर के रास्तों को स्वप्नों से भरा हुआ पाओ, तब तक धोखे में मत पड़ना, तुम बाजार में ही हो। दुनिया तुम्हें साधु कहती होगी, तुमने अपने को साधु मान लिया होगा, लेकिन संसारी मरा

नहीं है, केवल छिप गया है। और छिपा संसारी और भी खतरनाक है; क्योंकि छिपा संसारी वैसे ही है, जैसे कोई छिपा रोग। प्रकट हो तो इलाज भी हो जाए; छिपा हो तो इलाज भी मुश्किल। और रोगी अगर इनकार करता हो कि मैं रोगी हूं ही नहीं, तो चिकित्सक भी क्या करे? कम से कम रोगी स्वीकार करे कि मैं रोगी हूं, तो कुछ हो सकता है।

और यह कोई छोटे-छोटे लोगों के जीवन की घटना नहीं है, जिनको तुम बड़े-बड़े महात्मा कहते हो, उनके जीवन में भी यही उपद्रव है। महात्मा गांधी को भी, जीवन के आखिरी दिनों में भी कामवासना के स्वप्न आते रहे, स्वप्नदोष होता रहा। मगर वे आदमी ईमानदार थे, यद्यपि गलत रास्ते पर थे। क्योंकि अगर जीवन भर की चेष्टा के बाद भी और स्वप्न में कामवासना पकड़ती हो, तो उसका अर्थ है कि चेष्टा गलत रास्ते पर होती रही। चेष्टा में कोई कमी न थी। उन जैसा चेष्टारत आदमी तुम न पा सकोगे। बड़ी निष्ठा से उन्होंने मेहनत की थी। लेकिन निष्ठा से थोड़े ही मंजिल पास आती है। अकेली निष्ठा से अगर मंजिल पास आती होती, तब तो कोई भी पहुंच जाता।

न अकेली निष्ठा से मंजिल आती है पास, न अकेली ठीक राह से मंजिल आती है पास; जब ठीक राह से निष्ठा का मिलन होता है, तब मंजिल पास आती है।

तुम कितनी ही ईमानदारी से रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश करो--तुम्हारी ईमानदारी थोड़े ही पर्याप्त है, रेत में तेल होना भी तो चाहिए। तुम कहो कि मैं कितनी निष्ठा, कितनी श्रद्धा से निचोड़ रहा हूं! अटूट है, अखंड है मेरी निष्ठा! पर इससे क्या होगा? रेत में तेल होना भी तो चाहिए। और दूसरा आदमी तुमसे कम निष्ठा से भी निचोड़े, लेकिन अगर तिल के दानों से निचोड़ता हो तो शायद मिल जाए, क्योंकि तेल वहां है। यह भी हो सकता है कि कोई तिल के दाने भी रखे बैठा रहे, लेकिन आस्था ही न हो, तो निचोड़ेगा कैसे?

इसलिए जब निष्ठा और ठीक मार्ग का मिलन होता है, तब जीवन में क्रांति घटती है।

जीवन के अंत तक गांधी को स्वप्न पीड़ित करते रहे। मगर मैं कहता हूं, वे ईमानदार आदमी थे, तुम्हारे दूसरे साधु-संतों की तरह नहीं कि स्वप्न तो सताते रहे और उन्होंने कभी बाहर उनकी चर्चा न की। उन्होंने तो खुली चर्चा की। उनके शिष्य इससे परेशान थे। शिष्य चाहते थे, इसकी खुली चर्चा मत करो। क्योंकि शिष्यों को चोट लगती कि हमारे गुरु को और ऐसे सपने आते हैं! शिष्यों का जो गुरु के प्रति महात्मा का भाव था वह और शिष्यों के अहंकार को पीड़ा होती कि लोग क्या कहेंगे! वे गांधी को कहते, यह चर्चा खुली मत करो।

गांधी ने अंतिम दिनों में एक युवा स्त्री के साथ नग्न, बिस्तर पर सोना शुरू किया। कई शिष्य तो भाग गए। उनमें से कई अब बड़े गांधीवादी हैं जो भाग गए थे। अब वही ठेकेदार हो गए हैं; अब वे कहते हैं, वही वसीयतदार हैं! वही थे जो भाग गए थे गांधी के खिलाफ और गांधी के विरोध में हो गए थे कि यह क्या गड़बड़ है! ऐसा कहीं सुना, देखा? लेकिन गांधी की पीड़ा को कोई भी न समझा।

गांधी की पीड़ा यह थी। आखिर-आखिर में उनका तंत्र-शास्त्रों से संबंध जुड़ा। जीवन भर उन्होंने ब्रह्मचर्य की व्यर्थ चेष्टा में गंवाया। अंत में उन्हें तंत्र-शास्त्रों का पता चला कि अगर वासना से मुक्त होना हो तो जागना जरूरी है। और जागना हो तो परिस्थिति चाहिए, भागने से कुछ भी न होगा। तो परिस्थिति पैदा करने के लिए एक नग्न युवती के साथ रात सोते थे एक वर्ष तक--ताकि परिस्थिति पूरी रहे और उनके मन में कोई वासना उठे तो वे देख सकें, पहचान सकें। जिंदगी भर दबाया था, अब उघाड़ने के लिए भी बड़ी अथक चेष्टा करनी पड़ी। यह नग्न युवती के साथ सोना, उसे जगाने की अथक चेष्टा थी, जिसको अपने ही हाथों दबाया था।

जीवन भगोड़ेपन से हल नहीं होता, जीवन तो साक्षात्कार करने से हल होता है। जीवन की सभी समस्याओं का साक्षात्कार करना होगा। मत पूछो कि स्वप्न में कामवासना से मुक्त होने के लिए क्या करो। इतना ही जानो कि स्वप्न में जो वासना आ रही है, वह तुम्हारे जागरण में दबाई गई है। जागरण में मत दबाओ, जागरण में जागो और देखो! उघाड़ो!

तुम्हें तकलीफ होगी, क्योंकि तुम्हारे अहंकार को बड़ा बुरा लगेगा कि मैं ब्रह्मचारी, संन्यासी, त्यागी, और कामवासना मेरे भीतर है!

मगर ऐसे झूठे मोह को छोड़ना पड़े, ऐसे झूठे दंभ का कोई सार नहीं। वह तो है ही, तुम देखो या न देखो, इससे भेद न पड़ेगा। देख लो तो शायद मुक्ति भी हो जाए। और यही समझ लेने की बात है कि सिर्फ दर्शन से भी मुक्ति हो जाती है।

तुम एक चेष्टा करो कुछ महीनों के लिए--कुछ भी दबाओ मत; जो भी भीतर आता हो, उसे आंख के पर्दे पर पूरा का पूरा भीतर आ जाने दो। किंचित भी निंदा मत करना, क्योंकि जरा सी भी निंदा दबाने का कारण हो जाती है।

समझो कि एक कामवासना का विचार आया और तुमने कहा--बुरा है, पाप है। दमन शुरू हो गया। तुमने नहीं भी कहा बुरा है, पाप है; तुमने ऐसे देखा कि मजबूरी में देख रहे हो कि न देखते तो अच्छा था। तुमने भगवान से कहा, भगवान, यह क्या दिखला रहा है! बस दमन शुरू हो गया। निर्णय तुमने लिया--अच्छा कहा, बुरा कहा; शिकायत की, पश्चात्ताप किया, अपराध का भाव अनुभव किया--किसी तरह का मूल्यांकन किया और दमन शुरू हो गया।

तुम ऐसे ही देखो, जैसे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। जैसे तुम वृक्ष में लगे फूलों को देखते हो, या आकाश में उड़ते बादलों को देखते हो, या राह से चलते लोगों को देखते हो; कोई प्रयोजन नहीं है, चुपचाप देखते हो; जैसे तुम्हारा कुछ लेन-देन नहीं है--निष्पक्ष, दूर खड़े, साक्षी-भाव से--तब वृत्तियां अपने पूरे रूप में उभरती हैं।

घबड़ा मत जाना, क्योंकि जन्मों-जन्मों दबाया है। जब वे पूरे रूप में उभरेंगी तो तुम्हें ऐसा लगेगा--क्या मैं पागल हुआ जा रहा हूं? यह क्या हो रहा है? क्या सब मेरा नीति-धर्म नष्ट हो जाएगा? क्या मेरा सब चरित्र टूट जाएगा, खंडित हो जाएगा? क्या मैंने इतनी मुश्किल से, कठिनाई से अपनी जो प्रतिष्ठा बनाई है, वह सब धूल-धूसरित हो जाएगी?

घबड़ाना मत। यही साहस है। इसी साहस को मैं तपश्चर्या कहता हूं। धूप में खड़े होने में कोई साहस नहीं है, नग्न बर्फ में खड़े होने में भी कोई साहस नहीं है। सब शरीर की कसरतें हैं, थोड़े अभ्यास से आ जाती हैं। बड़े से बड़ा साहस--मैं भीतर जैसा हूं, वैसा ही देख लेने में है। और उसी से रूपांतरण हो जाता है, उसी से क्रांति घट जाती है।

तुम जरा देखो। यहां तुम देखना शुरू करोगे, अचानक तुम पाओगे कि स्वप्न के रास्ते खाली होने लगे। क्योंकि जो-जो तुम जागने में देख लोगे, फिर तुम्हारी आत्मा को स्वप्न में दिखाने का कोई प्रयोजन न रहा। जो तुमने ही देख लिया, उसे दिखाने की क्या जरूरत रही? स्वप्न खाली हो जाएंगे।

और काश, तुम्हारी रात स्वप्नों से खाली हो जाए, तो समाधि हो जाएगी। पतंजलि ने कहा है, सुषुप्ति और समाधि में जरा सा ही भेद है--बड़ा जरा सा भेद है--वह भेद इतना ही है कि सुषुप्ति मूर्च्छित है और समाधि जाग्रत है। जब सब स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं...

अभी तुमने ख्याल किया--सुबह तुम उठ कर याद कर सकते हो, कोई स्वप्न आया; यह भी याद कर सकते हो कि रात, पूरी रात सपनों ही सपनों से भरी रही। तो तुम्हारे भीतर कोई होश तो है--जो सपने देखता है; जो सपनों को पहचानता है; जो सपनों की याद रखता है। अब तुम ऐसा सोचो कि सब सपने खो गए, तब तुम्हारा यह होश जो सपनों में अटक जाता था, सपनों को देखता था, अब समाधि को देखेगा। क्योंकि सपने तो रहे नहीं, रास्ते पर राहगीर तो रहे नहीं, सुनसान रास्ता रह गया; अब सुनसान रास्ता दिखाई पड़ेगा। सुबह जब तुम उठोगे, तो तुम कहोगे--सुषुप्ति देखी, स्वप्न नहीं देखा।

सुषुप्ति को देख लेना समाधि है।

रास्ता खाली था, भीड़ न थी। लोग थे ही नहीं देखने को, तो राह देखी। आकाश बादलों से न घिरा था, बदलियां थी ही नहीं; आकाश देख लिया। बदलियों के कारण आकाश पर पर्दा पड़ जाता है। सपनों के कारण सुषुप्ति पर पर्दा पड़ जाता है। और सुषुप्ति समाधि है।

रोज रात तुम वहीं पहुंचते हो, जहां बुद्ध पहुंचते हैं; रोज रात तुम वहीं पहुंचते हो, जहां शंकर जीते हैं। लेकिन तुम्हारे बीच और समाधि में बड़ी भीड़ है; समाधि और तुम्हारे बीच बड़ा मेला लगा है। और वह मेला तुमने ही जुटाया है। गलत ढंग से जीवन के साथ व्यवहार करने से तुम कूड़ा-करकट इकट्ठा करते जाते हो।

क्षण-क्षण निपटारा कर लो। जो सामने आए, उसे भरपूर देख लो, उसे पूरा-पूरा देख लो, उसमें जरा भी ना-नुच मत करना। फिर तो कोई प्रयोजन न रहा। सपने में इसीलिए आता था कि तुमने ठीक से न देखा दिन में, लौट-लौट आना पड़ा।

तुमने कभी ख्याल किया, अगर किसी भी बात को तुम ठीक से भोग लो, तो उसकी याद आनी बंद हो जाती है। अगर किसी को भी तुम गौर से देख लो, तो छुटकारा हो जाता है। गौर से जी लो, तो फिर कोई राग-रंग बंधे नहीं रह जाते। अधूरे अनुभव अटके रह जाते हैं और मन की आकांक्षा उन्हें पूरे करने की होती है। तो जो-जो तुम अधूरा जीए हो, वह तुम्हारे पास इकट्ठा हो गया है, उसकी भीड़ इकट्ठी हो गई है। अब कृपा करो, ऐसा मत करो। और सपने में मत पूछो मुझसे कि कैसे उसको रोकें; सपने से इतना ही पहचानो कि जागरण में रोका है। जागरण में भी मत रोको।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जाओ और जो भी तुम्हारे मन में वासना उठे, उसे पूरा कर गुजरो; मैं यह नहीं कह रहा हूं। क्योंकि उस तरह तो तुम पूरा करने की चेष्टा भी कर लिए हो, वह भी पूरा नहीं हुआ है। जन्मों-जन्मों आदमी वही करता रहा है। क्रोध करने से कहीं क्रोध गया है? काम करने से कहीं काम गया है? लोभ करने से कहीं लोभ गया है?

यही द्वंद्व है। करो तो मजबूत होता है, क्योंकि अभ्यास बनता है। आज क्रोध किया, कल क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया था, तो क्रोध कीशृंखला मजबूत होती चली जाती है; अभ्यस्त क्रोधी हो जाते हो तुम। फिर जरा सी चिनगारी मिली कि क्रोध आदतवश उभर आता है। करो तो अभ्यास बनता है, दबाओ तो भीतर घाव बनते हैं।

दोनों के मध्य में मार्ग है--न तो करो, न दबाओ--सिर्फ देखो। यही साक्षी का सूत्र है--सिर्फ द्रष्टा बनो, कर्ता मत बनो।

दोनों हालत में तुम कुछ करते हो। अगर क्रोध आ गया, तो या तो तुम दूसरे पर क्रोध को फेंकते हो या अपने भीतर दबाते हो। दोनों गलत हैं। कामवासना उठी, तो या तो दूसरे पर उलीचते हो या अपने ही भीतर दबाते हो। दोनों गलत हैं। न तो उलीचो किसी पर। क्योंकि किसी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है! और तुम्हारी

वासना के द्वारा दूसरे पर उलीच कर तुम दूसरे को भी वासना के कीचड़-कबाड़ में घसीट रहे हो। उसकी वैसे ही समस्याएं कुछ कम न थीं, और आप मिल गए। वह अपनी ही उलझनों में उलझा था, और आपने और उलझा दिया। नहीं, उलीचो मत किसी पर। क्योंकि जिस पर भी तुम उलीचोगे, वह भी तुम पर वापस में उलीचेगा। आज तुम किसी पर वासना आरोपित करोगे, तो उसकी भी वासना है, वह तुम पर आरोपित करेगा।

इसीलिए तो वासना में बंधन मालूम पड़ता है। तुम जिसे बांधते हो, वह तुम्हें बांध लेता है; तुम जिसे भोगते हो, वह तुम्हें भोगने लगता है; तुम जिसे पकड़ते हो, वह तुम्हें पकड़ लेता है। किसी पर उलीचो मत--न काम, न क्रोध, न कुछ और। और अपने भीतर भी मत दबाओ; जब दूसरे पर इतनी कृपा की, तो अपने पर भी कृपा करो। तुमने भी तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? दबाओ भी मत।

और दोनों के मध्य में बड़ी बारीक, बड़ी सूक्ष्म यात्रा है। देखो! भरपूर देखो! क्योंकि देखने से किसी का कोई नुकसान नहीं हो रहा है। और जैसे-जैसे तुम देखोगे, तुम पाओगे--देखते-देखते ही एक जागरण आया। देखते-देखते ही होश उठा। और होश ही सब कुछ है।

माइले-दैरो-हरम तूने यह सोचा भी कभी

जिंदगी खुद ही इबादत है अगर होश रहे

माइले-दैरो-हरम...

ओ मंदिर और मस्जिद की तरफ झुकने वाले!

... तूने यह सोचा भी कभीजिंदगी खुद ही इबादत है अगर होश रहे

फिर कोई और प्रार्थना नहीं, कोई पूजा नहीं, फिर कोई और ध्यान ही नहीं।

जिंदगी खुद ही इबादत है अगर होश रहे

तीसरा प्रवचनः आपने कहा, कामना अनिवार्यतः दुख में ले जाती है। तो क्या पुण्य की कामना, धर्म की कामना, भगवान की कामना भी दुख में ही ले जाएगी?

कामना मात्र दुख में ले जाती है; इससे कुछ भी भेद नहीं पड़ता कि कामना किसकी है। कामना के विषय से कामना का स्वरूप नहीं बदलता। धन चाहो, तो भी चाह वही है; धर्म चाहो, तो भी चाह वही है; चाह का स्वरूप वही है। चाह का अर्थ है कि तुम जहां हो, जैसे हो, वहां तृप्त नहीं--धन चाहिए तो तृप्त होओगे; धर्म चाहिए तो तृप्त होओगे। चाह का अर्थ हैः तुम असंतुष्ट हो, अतृप्त हो। चाह, असंतोष से उठी हुई आह है। फिर असंतोष किस बात का है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। असंतोष है; संतोष नहीं है। कामना तुमने किसकी की है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कुछ लोग जमीन पर अच्छा मकान बना रहे हैं, कुछ लोग स्वर्ग में अच्छा मकान बना रहे हैं!

मैं एक दिन राह से निकल रहा था, एक महिला मेरे पास आई और उसने मुझे एक पैंफ्लेट दिया। पैंफ्लेट में एक बड़ा सुंदर भवन बना हुआ था--बगीचा, फूल, झरने बह रहे हैं--और ऊपर लिखा हैः क्या आपको एक अच्छे बंगले की तलाश है? मैंने सोचा, यह क्या मामला है! उसको उलट कर देखा, तो वह बंगला यहां का नहीं है, वह ईसाई मिशनरियों का प्रचार था। स्वर्ग में--जहां चश्मे बह रहे हैं, फूल लगे हैं, वृक्ष हैं--सुंदर बंगले बने हैं! अंदर लिखा था कि यदि ऐसे भवन आपको स्वर्ग में चाहिए, तो सिवाय जीसस के और कोई मार्ग नहीं।

तुम स्वर्ग की भी कामना करोगे, तुम ही करोगे न? वह तुम्हारे ही मन का विस्तार होगा; तुम्हारी ही भाषा होगी; तुम्हारे ही रंग होंगे। तुम थोड़ा सोचो एक दिन बैठ कर कि स्वर्ग में तुम क्या-क्या चाहोगे। तुम जरा फेहरिस्त बनाओ। तुम बड़े हैरान होओगे, यह फेहरिस्त यहीं की है। रॉल्स रॉयस कार चाहोगे? क्या करोगे क्या? स्वर्ग में चाहोगे क्या? कौन सी फिल्म अभिनेत्री चाहोगे? ताजमहल चाहोगे वहां? थोड़ा फेहरिस्त बनाओ अपने स्वर्ग की। डरना मत, फाड़ देना; किसी को दिखाना थोड़े ही है, खुद ही बनाना है। लेकिन उससे यह जाहिर हो जाएगा कि तुम चाहोगे क्या।

अगर स्वर्ग देने को परमात्मा राजी हो और कहे कि लो, क्या मांगते हो--तुम क्या मांगोगे? वे मांगें बता देंगी कि तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे संसार का ही विस्तार है। थोड़ा साफ-सुथरा होगा यहां से, थोड़ा परिष्कृत होगा; यहां क्षणभंगुर है, वहां स्थायी होगा। मगर ये सब तो विस्तार के फासले हैं, इनमें कोई फर्क नहीं है। यहां अभिनेत्री थोड़े दिन में बूढ़ी हो जाएगी, वहां कभी न होगी। वहां कहते हैं, सोलह साल के बाद उम्र बढ़ती ही नहीं स्त्रियों की स्वर्ग में! सोलह पर ही रुक गई है! उर्वशी लाखों साल पहले भी सोलह की थी, अभी भी सोलह की है! तुम जब भी जाओगे, तभी सोलह की पाओगे।

इससे कुछ उर्वशी के संबंध में पता नहीं चलता, इससे मनुष्य की कामना का पता चलता है कि वह चाहता है स्त्री सोलह पर रुक जाए।

स्वर्ग में चश्मे बह रहे हैं शराब के! यहां पाबंदी लगाओ, क्या होगा? स्वर्ग में बोतलों में नहीं बिकती, झरने बह रहे हैं! मछलियों की तरह तैरो शराब में, जितना पीना हो पीयो, क्योंकि स्वर्ग में कोई पाबंदी हो सकती है? अगर वहां भी पाबंदी रही--नियम, विधि-विधान रहा और लाइसेंस लेना पड़ा--तो यह भी कोई स्वतंत्रता हुई, यह तो परतंत्रता ही रही। नहीं, वहां कोई पुलिसवाला भी खड़ा नहीं मिलता चौरस्ते पर।

स्वर्ग तुम्हारे ही सपनों का जाल है। तुम भगवान को भी चाहते हो--किसलिए? दुख के कारण? पीड़ा के कारण? अशांति के कारण? तो उसी कारण तो लोग धन को भी चाहते हैं; और उसी कारण तो लोग यश को भी चाहते हैं; और उसी कारण तो लोग पद को भी चाहते हैं। तो परमात्मा तुम्हारा समझो परम-पद हुआ। ऐसा तो कहते भी हैं तुम्हारे साधु-संन्यासी कि परमात्मा यानी परम-पद।

साधु-संन्यासियों की भाषा थोड़ी तुम समझो, तो तुम बड़े हैरान होओगे। उनकी भाषा का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण करना जरूरी है। वे कहते हैं, इस धन में क्या रखा है--आज छिन जाएगा, कल छिन जाएगा। अरे, उस धन को खोजो जो कभी न छिनेगा। लेकिन खोजो धन को ही।

तो यह तो बड़े मजे की बात हुई। जो इस धन को खोज रहे हैं, जो छिन जाएगा--ये भोगी, ये भ्रष्ट, ये पापी, ये नरक में पड़ेंगे; क्योंकि ये क्षणभंगुर धन को खोज रहे हैं। और जो शाश्वत धन को खोज रहे हैं--ये पुण्यात्मा, ये महात्मा! इन दोनों में फर्क क्या है?

इतना ही फर्क समझ में आता है कि क्षणभंगुर को खोजने वाला थोड़ा कम चालाक, शाश्वत को खोजने वाला ज्यादा होशियार, कुशल; ज्यादा बेईमान। जैसे छोटे बच्चे कंकड़-पत्थर बीन रहे हैं, तुम उनसे कहते हो--छोड़ो भी नासमझो, क्या कंकड़-पत्थर बीन रहे हो! अरे, अगर बीनना ही हो तो हीरे-जवाहरात। ये क्या कंकड़-पत्थर बीन रहे हो! तुम इतना ही बता रहे हो कि तुम जरा ज्यादा चालाक, तुम जरा सांसारिक हिसाब-किताब में ज्यादा होशियार हो गए हो; यह बच्चा अभी भोला-भाला है।

तुम जिनको सांसारिक कहते हो, उनको मैं देखता हूं तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों से ज्यादा भोले-भाले हैं। बस इतना ही फर्क है। तुम्हारे साधु-संन्यासी ज्यादा बेईमान, ज्यादा चालाक। शाश्वत, अमृत, अनंत की खोज चल रही है। कामना? कामना वही है।

जो मैं कह रहा हूं, वह बड़ी भिन्न बात है; जो शंकर कह रहे हैं, वह बड़ी भिन्न बात है; जो बुद्ध कह रहे हैं, वह बड़ी भिन्न बात है। वे तुमसे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम सत्य की कामना करो, कि तुम परमात्मा की कामना करो। वे यह कह रहे हैं कि जब सब कामना छूट जाती है तो परमात्मा मिलता है।

यह बड़ी अलग बात है। जब सब कामना छूट जाती है तो परमात्मा मिलता है। इसलिए परमात्मा को पाने की कामना तो की ही नहीं जा सकती, क्योंकि तब तो वही बाधा हो जाएगी। जब सब कामना--बेशर्त रूप से सब कामना छूट जाती है--जब कामना नहीं रह जाती मन में, जब काम नहीं रह जाता, तब जो शेष बचता है वही राम है। इसलिए राम को कोई चाह नहीं सकता। चाह छोड़ सकता है, राम को पा सकता है, लेकिन राम को चाह नहीं सकता। चाहा कि भूल हो गई।

सौदागरी नहीं, ये इबादत खुदा की है

ऐ बेखबर, जजा की तमन्ना भी छोड़ दे

यह कोई सौदा नहीं है, यह कोई सौदागरी नहीं है, इबादत खुदा की है। ऐ बेखबर, ऐ बेहोश आदमी, जजा की तमन्ना भी छोड़ दे। इसके प्रतिकार में कुछ मिलेगा, यह आशा छोड़ दे। क्योंकि इसके प्रतिकार में कुछ मिले, प्रत्युत्तर में कुछ मिले, जजा की तमन्ना रहे, तो कुछ भी न मिलेगा। क्योंकि फिर तो तू परमात्मा को समझ ही न पाया।

कामना छूट जाने का परिणाम है परमात्मा। कामना छोड़ने से मिलता नहीं, मिल जाता है। इसलिए तुम पाने के लिए भी अगर इस तरह सब कामना छोड़ो... तुम यह भी कर सकते हो कि अच्छा, परमात्मा की भी कामना छोड़ देंगे; अगर इसी तरह मिलता है, तो यह कामना भी छोड़ देंगे, मगर पाकर रहेंगे। तो तुम्हें न मिलेगा; तो तुम चूक जाओगे। तुम समझे ही नहीं बात। तुम इसे आधार नहीं बना सकते दावे का; तुम दावेदार नहीं हो सकते। यह कोई सौदागरी नहीं है, इबादत है खुदा की।

इसे समझो। जैसे ही तुम्हारे भीतर कोई कामना नहीं रह जाती, तुम कहते हो--मैं तृप्त हूं, जैसा हूं; मुझे इंच भर भी अन्यथा नहीं चाहिए, रत्ती भर भी भिन्न नहीं चाहिए; यही होना पर्याप्त है; अहोभागी हूं। और तुम नाचते हो, गाते हो; क्योंकि जैसे हो, परमसुख है। कोई कामना न रही; तुम सम्राट हो गए, तुम भिखारी न रहे। इसी सम्राट से उस परम सम्राट का मिलन होता है। सम्राट से मिलना हो तो सम्राट हो जाना जरूरी है। समान ही समान से मिल पाता है।

अगर तुमने ईश्वर की भी कामना की, वह भी दुख में ले जाएगी। इसलिए तुम अपने मंदिर-मस्जिदों में अनेक बैठे फकीरों को दुखी पाओगे। तुम दूसरे कारण से दुखी हो कि धन नहीं मिला, यश नहीं मिला, पद नहीं मिला; वे दुखी हैं कि अभी परमात्मा नहीं मिला। मगर दुख जारी है। जहां कामना है, वहां विषाद होगा; क्योंकि कामना कोई भी पूरी नहीं होती; कामना का स्वभाव ही दुष्पूर है।

बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुष्पूर है। ऐसा नहीं है कि तुम्हारी सामर्थ्य की कमी है, इसलिए तुम उसे नहीं भर पाते; न भरना उसका स्वभाव है। तुम कितना ही कुछ करो, भरती नहीं। भर सकती नहीं। भरना उसने जाना ही नहीं। वह उसकी नियति नहीं है। जिस दिन कोई व्यक्ति कामना का यह दुष्पूर स्वभाव समझ लेता है, उस दिन वह परमात्मा को चाहने की कामना नहीं करता; वह सारी कामना को छोड़ देता है, गिरा देता है। उस गिरने के

क्षण में ही वह अचानक पाता है, अरे! जिसे मैं खोजता था, वह घर में रहा! जिसे मैं तलाशता था, वह भीतर मौजूद है! मेरी कामना के अंधेपन के कारण उसे देख न पाया।

इसलिए शंकर कहते हैं कि वह प्रभु तेरे भीतर मौजूद है। जिस दिन भी तू सारी दौड़-धूप को छोड़ कर, आपाधापी को छोड़ कर, कामना को छोड़ कर अपने घर वापस लौट आएगा, अपने घर में बैठेगा--निश्चिंत, विश्राम में, अहोभाव में--कुछ पाना नहीं, कहीं जाना नहीं, उसी दिन अचानक तू पाएगाः एक नया संगीत भीतर बजने लगा। वह बज तो सदा से रहा था, लेकिन कामना के शोरगुल के कारण सुनाई न पड़ता था। वह बड़ी धीमी आवाज थी, वह बड़ी सूक्ष्म आवाज थी, अहर्निश उसका नाद था। लेकिन सुने कौन? तुम घर पर न थे और परमात्मा तुम्हारे घर में था।

तुम अपने घर कभी आते ही नहीं! तुम्हें फुरसत कहां घर लौटने की। इतना विस्तार है कामनाओं का--कभी एक के पीछे, कभी दूसरे के पीछे; तुम्हें फुरसत कहां है कि तुम अपने घर आओ और उसे देख लो जो तुम्हारे घर सदा से ही ठहरा हुआ है।

परमात्मा को खोजने कहीं जाना नहीं, अपने घर लौट आना है। वही है प्रत्याहार।

चौथा प्रश्नः यह प्रत्याहार तो असंभव प्रयोग मालूम होता है। गंगा का गंगोत्री में लौट जाना और वृक्ष का लौट कर पौधे और बीज में समाना क्या संभव है? और शंकर और आप भी यही साधने को कह रहे हैं!

गंगा का गंगोत्री में लौटना या वृक्ष का वापस बीज में समाना तुम्हें असंभव मालूम पड़ता है? यही रोज घट रहा है! बीज रोज फिर वृक्ष बन जाता है। वह पास लगे हुए गुलमोहर में लटके हुए बीज देखो--सारा वृक्ष बीज बन गया है। और गंगा रोज गंगोत्री लौटती है--चढ़ कर बादलों में, घटाओं में--फिर बरसती है हिमालय पर, फिर गंगोत्री में लौट आती है। यह रोज ही घट रहा है।

फिर तुम कहोगे, फिर करने की क्या बात है?

करने की बात इतनी है, इस घटती घटना को जाग कर देखना है। यह सोते-सोते घट रहा है। अनेक बार तुम अपने घर लौट आते हो, लेकिन तुम्हें होश नहीं है। तुम सरायों में ठहरने के इतने आदी हो गए हो कि तुम घर भी लौट आते हो तो उसे भी सराय समझते हो।

मेरे एक मित्र हैं, उनका धंधा ऐसा है कि उन्हें दिन-रात यात्रा करनी पड़ती है; महीने में चार-पांच दिन ही घर लौटते हैं। घर लौटते हैं तो उन्हें नींद नहीं आती, क्योंकि रेल की खड़बड़ में उनकी सोने की आदत हो गई है; जब तक वे ट्रेन में न सोएं, उन्हें नींद नहीं आती। वे मुझसे कहने लगे, बड़ी मुसीबत है। कोई बीस साल से यही काम करते हैं। तो जब तक शोरगुल न मचता हो, और हर घड़ी, आधा घड़ी के बाद फिर स्टेशन न आता हो, और फिर आवाजें और फिर धूम-धक्का--उन्हें नींद नहीं आती! तो मैंने उन्हें कहा, तुम एक काम करो, तुम रेलवे लाइन के पास क्यों नहीं मकान किराए से ले लेते? उन्होंने कहा, यह बात जंची; मैं बड़े-बड़े डाक्टरों के पास हो आया!

अब उन्होंने रेलवे लाइन के पास मकान ले लिया है। अब वे बड़े मजे में हैं। अब वे घर में भी सो जाते हैं, क्योंकि फिर ट्रेन निकली, हर दस-पंद्रह मिनट में ट्रेन निकल रही है। वे बड़े प्रसन्न हैं।

तुम्हें कठिनाई लगेगी उनकी सोचने में, क्योंकि तुम जब पहली दफा ट्रेन में जाओगे तो नींद न आएगी। आदत! सभी आदतें बांधने वाली हो जाती हैं।

तुम अपने घर के बाहर इतने रहे हो कि जब तुम घर भी आते हो, तो तुम घर नहीं आते; पहचान ही नहीं होती; प्रतिभिज्ञा नहीं होती। लगता है, यह भी कोई सराय है--ठहरे रात, सुबह चल पड़े।

गंगोत्री में रोज गंगा लौटती है, और तुम पूछते हो कठिन! तुम अपने मूल स्रोत पर बने ही हो, और तुम पूछते हो कठिन! तुम अपने मूल स्रोत से दूर जाओगे भी कैसे? जाओगे भी कहां? ख्यालों में गए होओगे, असलियत में नहीं जा सकते। ऐसे ही, जैसे रात तुम पूना में सो जाओ और सपना देखो कलकत्ते का। तो क्या सुबह उठ कर फिर ट्रेन पकड़ कर पूना वापस लौटना पड़ेगा? सपने में कलकत्ते में थे, तो सुबह उठ कर क्या भागोगे कि अब ट्रेन पकड़ें, घर जाएं! न, सुबह तुम जाग कर पाओगे कि पूना में ही सो रहे हो। अपने से दूर जाना सिर्फ एक ख्याल है, सिर्फ एक विचार है।

अगर तुम मुझसे पूछो, और तुम्हें अड़चन न हो, तो मैं कहना चाहूंगाः गंगा गंगोत्री से कभी गई ही नहीं; बीज कभी वृक्ष बना ही नहीं--एक सपना देखा है कि वृक्ष हो गए; एक सपना देखा है कि गंगोत्री से गंगा निकल आई, सागर की तरफ चली। क्योंकि अपने स्वभाव से बाहर जाने का उपाय कहां? तुम मुझसे पूछते हो कि स्वभाव में लौटना बड़ा कठिन है! मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि स्वभाव से बाहर जाना कठिन ही नहीं, असंभव है; कोई कभी गया नहीं। तुम इसी क्षण बुद्ध हो, इसी क्षण जिन हो, इसी क्षण परमात्मा हो। लेकिन तुम्हारे ख्याल! तुम्हारे ख्याल कुछ और हैं। तुम कहते हो, यह बात जंचती नहीं; मैं तो पान की दुकान करता हूं--कैसे बुद्ध हो सकता हूं?

पान की दुकान करने से कुछ बाधा है? कोई बोधिवृक्ष के नीचे बैठने से ही बुद्ध होता है? पान की दुकान पर बैठे भी तुम बुद्ध हो, मैं कह रहा हूं। क्योंकि तुम कुछ भी करो--पान की दुकान करो, कि बूचड़खाना चलाओ--तुम कुछ भी करो, तुम बुद्धत्व के बाहर जा नहीं सकते।

मछली तो शायद कभी सागर के बाहर आ भी जाए, तुम परमात्मा के बाहर कैसे जाओगे? क्योंकि सागर की कोई सीमा है, किनारा है; परमात्मा का तो कोई किनारा नहीं और कोई सीमा नहीं। तो यह तुम्हारा ख्याल है कि तुम पान की दुकान कर रहे हो--करो मजे से, मगर इससे तुम यह मत सोच लेना कि तुम बुद्ध न रहे। बस इतना ही होश आ जाए, तो गंगा लौट गई गंगोत्री। होश का आ जाना...

हजार उपद्रव आएंगे रास्ते पर। संसार रोकेगा तुम्हें पहले--दुकान रोकेगी, धन रोकेगा, पद रोकेगा। किसी तरह इनसे छूटे तो मंदिर-मस्जिद रोकेंगे, वेद-पुराण रोकेंगे, गीता-कुरान रोकेंगे। अगर तुम सबसे बच कर निकल आए, तो ही तुम आ पाओगे।

दैरो-हरम भी मंजिले-जानां में आए थे

उस प्यारे की खोज में मंदिर और मस्जिद भी बीच में आ गए थे।

पर शुक्र है कि बढ़ गए दामन बचा के हम

पर हम अपना दामन बचाए और बढ़ गए।

बहुत कुछ आएगा राह में, बस जरा सा दामन बचा कर--उसी को मैं होश कह रहा हूं। शंकर ने सावधानी कहा, महा सावधानी कहा। जागे हुए! फिर तुम्हें कोई भी न रोक पाएगा। दुकान बेचारी बहुत कमजोर है; मंदिर-मस्जिद भी न रोक पाएंगे। किताबें, बही-खाते ना-कुछ हैं; वेद-कुरान भी न रोक पाएंगे।

दैरो-हरम भी मंजिले-जानां में आए थे

उस प्यारे के रास्ते पर बहुत कुछ बाधाएं आईं। मंदिर और मस्जिद तक बाधाएं बन कर खड़े हो गए।

पर शुक्र है कि बढ़ गए दामन बचा के हम

पांचवां प्रश्नः आप जो ध्यान प्रयोग कराते हैं, उसमें योग और भक्ति का समावेश है। तो क्या प्रत्याहार के लिए दोनों आवश्यक हैं?

जीवन दो ढंग का हो सकता हैः एक जीवन होता है जो केवल आवश्यक के आधार पर निर्मित होता है; और एक जीवन होता है जो अतिशय के आधार पर निर्मित होता है।

मोर को नाचते हुए देखो। क्या पंखों में जो इंद्रधनुषों के रंगों का फैलाव है वह आवश्यक है? पंख अगर काट दो तो मोर के जीवन में क्या कोई कठिनाई और अड़चन आ जाएगी? मोर फिर भी जी लेगा। क्योंकि पंखों से न तो कोई जीवन की धारा का संबंध है, न भोजन का संबंध है, न बच्चे पैदा करने में कोई बाधा पड़ेगी। पंख तो अतिरेक हैं; वे तो जरूरत से ज्यादा की खबर हैं, जरूरत की खबर नहीं हैं।

ये पक्षी गीत गा रहे हैं, इनके ओंठ सी दो, कुछ हर्ज हो जाएगा? क्या फर्क पड़ेगा? पक्षी फिर भी जी लेंगे। गीत बंद हो जाएंगे, क्योंकि गीत आवश्यक थोड़े ही थे--बाढ़ थी; अतिरेक था।

तुम नाचते हो, मत नाचो; दुकान करो, घर आ जाओ। गीत गाते हो, मत गाओ। कोई बाधा आ जाएगी? प्रेम करते हो, मत करो; दुकान करना काफी है। प्रेम न करोगे तो क्या अड़चन आ जाएगी? क्या मर जाओगे? नहीं जो प्रेम करते, वे भी जी रहे हैं; नहीं जो गीत गाते, वे भी जी रहे हैं। बल्कि शायद थोड़ी ज्यादा ही अच्छी तरह से जी रहे हैं; क्योंकि वह उपद्रव भी बचा; उतनी शक्ति बचती है, वह भी धन कमाने में लगा देते हैं। लेकिन तुम्हारे जीवन की गरिमा खो जाएगी।

आवश्यक से जीने का मामला कंजूस का है। मैं तुम्हें यहां आवश्यक से जीना नहीं सिखा रहा हूं, मैं तुम्हें यहां आवश्यक के पार जाना सिखा रहा हूं। ऐसे जीओ अतिरेक से। मैं भी जानता हूं, अकेले ज्ञान से भी परमात्मा मिल जाता है, कोई भक्ति की जरूरत नहीं है। अकेली भक्ति से भी परमात्मा मिल जाता है, कोई ज्ञान की जरूरत नहीं है। लेकिन तब परमात्मा पाना भी तुम्हारा बड़ा सौदे जैसा हिसाब हुआ। बिल्कुल जरूरी-जरूरी चलते हो। दो पैसे से जहां काम चल जाए, वहां तीन पैसा भी खर्च करने में घबड़ाते हो। बड़ी कृपणता हुई, परमात्मा के रास्ते पर भी तुम कंजूस रहे।

मैं तुम्हें जरा दिलफेंक होना सिखा रहा हूं। काम तो चल जाएगा; मुझे भी पता है कि लोग ज्ञान से भी पहुंच गए हैं, भक्ति की कोई जरूरत न थी। कोई मीरा जैसे नाचे तंबूरा लेकर, इसकी कोई जरूरत न थी। लेकिन फिर भी मैं कहूंगाः अगर तुम नाच सको, तो परमात्मा के एक-दूसरे ही रूप का तुम्हारे सामने आविर्भाव होगा। वह गणित का नहीं है, वह काव्य का है। मिलने को तो मिल जाएगा परमात्मा--ज्ञान से भी, शुष्कता से भी, गणित से भी। लेकिन परमात्मा के भी पास गए और आवश्यकता से गए! वह संबंध भी जरूरत का संबंध रहा! उस संबंध में भी उछले न, कूदे न, बहे न, पिघले न! उस संबंध में भी भोग की परम घड़ी न आई! वह भी व्यवसाय रहा!

भक्ति से भी लोग पहुंच गए हैं, कोई ज्ञान जरूरी नहीं है। लेकिन पहुंच तो गए, लेकिन जहां पहुंचे हैं उसका बोध? वह आवश्यक नहीं है पहुंचने के लिए, छोड़ा जा सकता है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जब अतिशय मिलता हो तो आवश्यक के लिए क्यों चेष्टा करनी? जब अतिशय मिल सकता हो और जब जीवन परम विलास बन सकता हो, परम भोग बन सकता हो, तो क्या कंजूस की तरह चलना? क्या कदम फूंक-फूंक कर रखना?

जहां नाचना हो, वहां कदम फूंक-फूंक कर नहीं रखे जाते। और कदम फूंक-फूंक कर रखने वाला आदमी नाचने में कुशल नहीं हो सकता।

तुम कब अपनी कृपणता तोड़ोगे? तुम कब बहोगे निर्बाध? क्योंकि मेरे देखे जीवन का जो परम सौभाग्य है, वह अतिशय में है। देखो मोर को--पंखों पर परमात्मा ने इतने रंग भरे हैं! इतनी मेहनत की है! अगर कोई वैज्ञानिक मोर को बनाए, तो एक बात पक्की समझना, पंख नहीं होंगे। बिल्कुल फिजूल हैं, क्या जरूरत है इनकी! भोजन की नलिका होगी, पेट पचाने को होगा, जननेंद्रिय होगी, क्योंकि बच्चे पैदा करने होंगे--पंख नहीं होंगे। बस काव्य भर नहीं होगा, गीत भर नहीं होगा, नाच भर नहीं होगा। इन्हीं नासमझों की वजह से तो जिंदगी में से सब रंग खो गया; क्योंकि वे हर जगह बता रहे हैं कि क्या जरूरी है, बस उतना ही करो; जरूरी से इंच भर आगे मत बढ़ो।

और तुम प्रकृति को देखोः परमात्मा जरूरत से बिल्कुल राजी नहीं है; जरूरी पर बिल्कुल नहीं रुकता, गैर-जरूरी पर बहा जाता है। पक्षी गीत गा रहे हैं, कोई आवश्यक नहीं है; वृक्षों में फूल खिल रहे हैं, जरा भी आवश्यक नहीं है; फूलों से गंध बह रही है, जरा भी आवश्यक नहीं है; नदियां भागी जाती हैं कलकल नाद करती सागर की तरफ; सागर अपना तुमुल घोष करता रहता है, टकराता रहता है तटों से--जरा भी जरूरी नहीं है। क्या जरूरी है? थोड़ा सोचो तुमः अगर परमात्मा भी कहीं कोई अर्थशास्त्री होता, कोई इकोनामिस्ट होता और दुनिया को जरूरत से बनाता, तो यह दुनिया रहने योग्य न होती, सिर्फ आत्महत्या करने योग्य होती; यहां रह कर भी क्या करते, बस जरूरत ही जरूरत होती।

ज्ञान से भी पहुंच जाओगे, भक्ति से भी पहुंच जाओगे। लेकिन ज्ञान, भक्ति से, दोनों से जिस ढंग से पहुंचोगे, वह पहुंचना और है, वह मजा और है। फिर तुम्हारी मर्जी। तुम्हें अगर छोटे-छोटे आंगन में रहने का रस लग गया है, खुला आकाश डराता है, तो ठीक है, छोटे घर-घूलों में रहो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, खुला आकाश भी इतने में ही उपलब्ध है, इतने ही श्रम से विराट उपलब्ध है। तुम छोटे और जरूरत की बात क्यों करते हो?

तुम्हारे ज्ञान को इतना बढ़ने दो कि भक्ति हो जाए। तुम्हारी भक्ति को इतना गहराने दो कि ज्ञान हो जाए। तुम दोनों छोर छू लो, ताकि कुछ अछूता न रह जाए। इस जगत में जो भी मिल सकता था, तुम पूरे को ही पा लो, तो ही धन्यता है।

छठवां प्रश्नः आपको रोज सुन रहा हूं। समझ में भी बात उतरती है; आंखों से आंसू टपकते हैं; भूचाल की भांति हृदय डोलता है--और लगता है कि आत्मज्ञान का दिन है यह, लेकिन वह आता नहीं। यद्यपि दूसरे दिन के प्रवचन में फिर यही अनुभव दोहरता है। पता नहीं, इस धूप-छांव का क्या प्रयोजन है?

कहीं कोई धूप-छांव नहीं है, सिर्फ तुम्हारे मन की भ्रांति है। हम राजी नहीं होते, कुछ भी मिले। मन ज्यादा की मांग कर देता है। और मन तो सदा ही ज्यादा की मांग कर सकता है। क्या तुम ऐसी कोई घड़ी सोच सकते हो तुम्हारे जीवन में, जिससे ज्यादा की तुम कल्पना न कर सको?

रोज मिलता है, क्योंकि आत्मज्ञान ही मैं बांट रहा हूं। रोज तुम पर बरसता है। तुम्हारी आंखें ठीक कहती हैं, क्योंकि आंसू बहाती हैं। वे ज्यादा पहचान लेती हैं; तुम्हारी बुद्धि से ज्यादा समझदार हैं। और तुम्हारा हृदय ठीक खबर देता है, क्योंकि डोलने लगता है। मगर तुम्हारी खोपड़ी मजबूत है, ठोस है। वह खोपड़ी सोचे जाती है कि हां, कुछ तो हो रहा है, लेकिन अभी पूरा नहीं हुआ, अभी आत्मज्ञान तो हुआ ही नहीं।

आत्मज्ञान है क्या? कब होगा, जब तुम मानोगे कि अब हुआ! क्या हो जाएगा, जब तुम मानोगे कि अब हुआ! कोई कसौटी है तुम्हारे पास?

नहीं, मन तुम्हें धोखा दे रहा है। आंसुओं की सुनो, हृदय की गुनो, विचार तो सदा ही तुम्हें धोखा देगा। विचार तो कहेगा, हां हुआ, पर अभी पूरा नहीं हुआ।

क्या है पूरा? कब होगा पूरा? तुम अगर परमात्मा के सामने भी पहुंच गए, तुम कहोगे--हां पाया, लेकिन अभी पूरा नहीं पाया। क्योंकि परमात्मा में भी तुम कुछ न कुछ विस्तार तो कर ही सकते हो--कि नाक थोड़ी लंबी होती; कि और तो सब ठीक लगते हैं, जरा कान कंधों को छूते, जैसे बुद्ध-महावीर के छूते हैं; कान जरा छोटे हैं; कि अजानबाहु नहीं है। क्या तुम सोच सकते हो कि परमात्मा अगर तुम्हें मिल जाए, तो तुम एकदम राजी हो जाओगे कि पूरा पाया?

मन कभी कहता ही नहीं कि पूरा पाया। मन की आदत ही नहीं है। वह मन का हिसाब नहीं है। मन कहता है, हां मिला, मगर अभी और मिल सकता है। यह मन तो तुम्हें सब जगह भटकाएगा। इसे छोड़ो, आंसुओं का भरोसा करो। श्रद्धा करो आंसुओं पर, वे ज्यादा सरल हैं, ज्यादा स्वाभाविक हैं, ज्यादा आंतरिक हैं, ज्यादा हार्दिक हैं, ज्यादा प्राथमिक हैं। भरोसा करो हृदय की धड़कन का, क्योंकि वहीं नृत्य पहली दफा उतरता है। और बुद्धि? बुद्धि आदमी की है, सभ्यता की है, समाज की है; शास्त्रों से आई है, उधार है। आंसू तुम्हारे हैं, बुद्धि तुम्हारी नहीं। बुद्धि तुम्हें किसी ने दी है, आंसू किसी ने नहीं--तुम लेकर आए थे। हृदय तुम्हारा है, हृदय में उठते कंपन तुम्हारे हैं, हृदय में उठते संवेदन तुम्हारे हैं। वे तुम्हें किसी ने दिए नहीं। यद्यपि दूसरों ने उनको छीन लिया है; सब तरह के अवरोध खड़े कर दिए हैं।

और अगर तुम हृदय और आंखों की सुन सको, अगर तुम अपने प्राणों की सुन सको, तो कौन फिक्र करता है कल की! और कौन चिंता करता है आत्मज्ञान की! आनंद का यह क्षण तुम्हें अहोभागी बना जाएगा। तुम धन्यवाद से भरोगे--एक गहरी इबादत, एक गहरी प्रार्थना तुम्हारे भीतर उतर आएगी। तुम परमात्मा को धन्यवाद दोगे कि मेरी पात्रता से ज्यादा मुझे तूने दिया। आज दिया, जब कि कोई भरोसा ही न था। फिर धूप-छांव का खेल मालूम न पड़ेगा। आज का निपटारा आज हो गया। कल जब फिर देगा, फिर धन्यवाद दे देंगे।

और आज और कल को तौलना भी मत, क्योंकि सब तुलना मन की है, बुद्धि की है। जीवन में प्रत्येक क्षण अनूठा है। कल फिर सुबह होगी, कल फिर उसकी वर्षा होगी, कल फिर धन्यवाद दे देना। और दो दिनों को कभी तौलना मत, और दो क्षणों को कभी तौलना मत; क्योंकि एक साथ दो क्षण तो मिलते ही नहीं, एक ही क्षण मिलता है। सब तौल मानसिक है। अस्तित्व में तो कोई तौल संभव नहीं है। और अगर ऐसे तुम बढ़ते जाओ--धन्यभागी, अहोभागी, कृतार्थ, गहन कृतज्ञता से भरे--तो आत्मज्ञान कहीं कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि एकदम अचानक तुम्हें मिल जाएगी। ऐसे ही ऐसे बढ़ता जाता है; ऐसे ही ऐसे गहन होता जाता है। आत्मज्ञान कोई वस्तु थोड़े ही है, प्रक्रिया है। आत्मज्ञान कोई चीज थोड़े ही है कि कहीं रखी है, एकदम झपट्टा मार दोगे तो तुम्हें मिल जाएगी। आत्मज्ञान तुम्हारा रूपांतरण है, तुम्हारा विकास है।

और आत्मज्ञान का कोई अंत नहीं है; इसलिए तो हम आत्मा को अनंत कहते हैं--बढ़ता ही जाता है; सदा बढ़ता ही जाता है। कभी कोई ऐसी घड़ी नहीं आती, जब तुम कह दो--बस अब चुक गया। अनंत है। परमात्मा के जितने दर्शन करोगे, उतना ही पाओगे--बड़ा होता जा रहा है, विस्तीर्ण होता जा रहा है; नये-नये द्वार खुलते जाते हैं; नये फूल खिलते जाते हैं; हजार-हजार कमल हैं उसकी चेतना के; एक-एक कमल में हजार-हजार

पंखुड़ियां हैं; एक-एक पंखुड़ी के हजार-हजार रंग हैं--तुम देखते जाओगे, तुम उतरते जाओगे, रोज बढ़ता जाएगा।

न पीछे का हिसाब रखना; क्योंकि उस हिसाब में तुम्हारी बुद्धि भर गई, तो जो अभी मिल रहा था, उससे चूक जाओगे। न आगे की चिंता करना; क्योंकि जिसने आज दिया है, वह कल भी देगा; जिसने आज दिया है, वह कल क्यों न देगा? कल की भी फिक्र मत करना। बीते कल को भी जाने दो; आने वाले कल को भी मत सोचो; आज काफी है। और अगर तुम्हारे मन में यह भाव गहन हो जाएः आज काफी है, यह क्षण पर्याप्त है; तो यही क्षण भजन का हो गया।

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम मूढ़मते।

आज इतना ही।